आचार्य रामदेव

डॉ. धर्मपाल

वैदिक प्रकाशन

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

आचार्य रामदेव

आदर्शवाद के ज्योति स्तम्भ

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

सम्पादक

डॉ० धर्मपाल

वैदिक प्रकाशन

15, हनुमान रोड, नई दिल्ली—110001

प्रकाशक :

वैदिक प्रकाशन,
15, हनुमान रोड
नई दिल्ली-110001

सम्पादक :

डॉ॰ धर्मपाल

मूल्य : 30.00

प्रथम संस्करण
2047 वि॰
1991 ईस्वी

मुद्रक : ट्रिगल आर्ट कम्पोजिंग एजेंसी, 185/13, कृष्णा गली नं॰3, मौजपुर, दिल्ली-53

प्राक्कथन

आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के लिए कार्य करते हुए, अनेक बार गुरुकुल ड़ी तथा सम्बद्ध संस्थाओं में जाने का सुअवसर प्राप्त होता रहा है। आर्यसमाज इतिहास का जब जब अवलोकन किया, आर्यसमाज के लिए समर्पण एवं निष्ठाभाव से कार्य करने वाले इन महान पुरुषों ने सदैव ही मुझे अभिभूत किया। जब भी मैं गुरुकुल काँगड़ी की भूमि पर होता हूं,स्वामी श्रद्धानन्द मूर्तिमान खड़े दृष्टिगत होते हैं। उस हुतात्मा ने आर्यजाति को संस्कारित करने के लिए, सुप्तात्मा को जागृत करने के लिए इस शिक्षण संस्था की स्थापना की। इस संस्था से निकले स्नातकों ने राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न आयामों को सुदृढ़ करने में अपना अपूर्व और महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

दो वर्ष पूर्व मैंने स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में लिखा था। संयोग वर्ष 1989 पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति का जन्मशती वर्ष था। हमने पं. इन्द्र जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को पत्र पत्रिकाओं, पुस्तकों व्याख्यानमालाओं तथा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के माध्यम से सुधी विद्वानों एवं आर्यजनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। इन महापुरुषों के जीवन का अध्ययन करने से एक विशिष्ट ऊर्जा प्राप्त होती है। इस वर्ष विद्वज्जनों के समुख आचार्य रामदेव जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को व्याख्यायित करने वाली एक पुस्तक प्रस्तुत करने की भावना मन में जागृत हुई। उसी का सुपरिणाम यह पुस्तक है। इसे तैयार करने में, आर्यजगत् के नेताओं एवं विद्वानों का मुझे सहयोग प्राप्त हुआ, मैं उनका आभारी हूँ।

आचार्य रामदेव जी की सुपुत्री श्रीमती दमयन्ती कपूर ने इस ग्रंथ को तैयार करने में मुझे विशेष प्रेरणा दी। मैं आदरणीया माताजी का इस स्नेह भाव के लिए ऋणी हूं। यह कृति उन्हीं को ससम्मान समर्पित है।

—डॉ. धर्मपाल

अनुक्रम

आचार्य रामदेव

डॉ. धर्मपाल,
प्रधान, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

आधुनिक भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण के इतिहास में राष्ट्रीय शिक्षा, सामाजिक सुधार एवं धार्मिक नव चेतना के क्षेत्र में जिन कर्मवीरों ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया; उन तपस्वी साधकों में ज्ञानयोगी आचार्य प्रवर रामदेव जी का नाम सदैव समादर एवं श्रद्धा से स्मरण किया जाएगा। उन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज के प्रचार प्रसार में स्वनामधन्य महात्मा मुंशीराम का अनुसरण किया। उन्होंने नगाधिराज हिमालय के आंचल में पुण्यसलिला भागीरथी के तट पर स्थापित गुरुकुल कांगड़ी के संचालन में अपना सहयोग प्रदान किया। महान् शिक्षा शास्त्री, प्रकाण्ड इतिहास वेत्ता, प्रखर व्याख्याता, आर्यसमाज एवं गुरुकुल के चलते फिरते विश्वकोश, आर्यसंस्कृति के मेधावी प्रतिनिधि आचार्य रामदेव समस्त आर्य जाति के पूज्य हैं। आर्यसंस्कृति एवं आर्यशिक्षा प्रणाली के प्रति आपके मन में अपार श्रद्धा और आस्था विद्यमान थी। अपने इस विश्वास को आपने जीवन पर्यन्त सर्वत्र गंभीरता, सहृदयता और तत्परता के साथ प्रचारित किया। आपकी वाग्धारा हिमालय की गर्जन लिए गंगा के निर्झर प्रवाह की तरह थी, जिसमें श्रोता आत्मविभोर हो जाया करते थे।

आचार्य जी स्त्री शिक्षा के लिए विशेष रूप से आग्रही थे। स्त्री शिक्षा ही मृतप्राय आर्यजाति के लिए संजीवनी का कार्य कर सकती थी। यह विश्वास उनके आग्रह को और भी अधिक पुष्ट करता था। वे रहते तो गुरुकुल कांगड़ी में थे, परन्तु उनका मन सदा ही कन्या गुरुकुल देहरादून में लगा रहता था। आचार्य जी चाहते थे कि भारतीय नारी प्राचीन वैदिक देवियों की तरह आत्मिक सामाजिक, शारीरिक और मानसिक उच्चता को प्राप्त करे तथा वह विश्व के कीर्तिमन्दिर में अपना स्थान बनाए। वह गार्गी और भारती के समान विदुषी होकर याज्ञवल्क्य और जगद्‌गुरु-शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित करे, लोपामुद्रा और राजकुमारी घोषा के समान ऋषिका बने, गृह में साम्राज्ञी का पद प्राप्त करे, गौतम पातंजलि, दयानन्द, शिवाजी जैसे महापुरुषों की जननी बने, समाज कल्याण के क्षेत्रों में वह समान स्थान प्राप्त करे, गृहस्थ जीवन को सरस तथा मधुर बनाए। यही कारण था कि वे कन्या गुरुकुल के लिए समर्पित थे। कन्या गुरुकुल आचार्य जी के जीवन की पुण्यतम आकांक्षा थी। कन्या गुरुकुल को उच्चतर सोपान पर ले जाने के लिए वे सतत् प्रयत्नशील रहते थे। मृत्यु से कुछ दिनों पूर्व भी वे कन्या गुरुकुल के लिए धन संग्रहार्थ देहली गये थे। गुरुकुल को उन्नत करने की उनकी ऐसी धुन थी कि उन्होंने अपना सर्वस्व—अपना सुख, आराम, स्वास्थ्य इस पर न्योछावर कर दिया था। सत्यानुराग, धर्मपरायणता, अथक परिश्रम, निःस्वार्थ सेवा तथा अनुपम त्याग के वे ऊँचे आदर्श थे—वे इन्हीं के लिए जीवित रहे।

आचार्य रामदेव जी की विद्वत्ता सर्वप्रसिद्ध थी। Vedic Magazine और The detractors of Arya Samaj उनके उच्च ज्ञान के प्रमाण है। आचार्य जी समर्थ पत्रकार और हिन्दी तथा अंग्रेजी के उच्च कोटि के लेखक थे। उनका वैदिक मैगजीन उस युग के उच्च कोटि के मासिक पत्रों में अपना विशिष्ट स्थान रखता था। भारत वर्ष के गणमान्य विद्वान लेखक उसमें लेख लिखने में अपना गौरव समझते थे। श्रीमती एनी बेसेन्ट, डाक्टर डाक्टर भगवानदास, साधुवासवानी, विनय कुमार सत्कार, डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी, डाक्टर अविनाश चन्द्र दास, लाला हरदयाल, प्रोफेसर फणीन्द्र नाथ, श्री गंगा प्रसाद, डाक्टर बालकृष्ण, प्रोफेसर ताराचन्द, प्रो. विनायक गणेश साठे आदि विद्वानों के मौलिक एवं अनुसन्धान परक लेख उस पत्र में प्रकाशित हुआ करते थे। आर्य जगत् के विश्रुत विद्वान गंगा प्रसाद की 'धर्म का मूल स्रोत' इसी पत्र के माध्यम से विद्वान समाज के सामने आयी थी। इस पत्र का आचार्य जी ने बड़ी योग्यता, कुशलता और साधना के साथ संपादन किया था। इस पत्र में दीनबन्धु एण्ड्र्यूज, मायरन फेल्पस (अमेरिका), फ्रेंच विद्वान पाल रिचर्ड, प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट एफ.टी.ब्रुक जेम्स कॉलिन्स आदि अपने लेख भेजा करते थे। महात्मा टॉलस्टाय, उनके पाठकों में से थे। आचार्य जी के साथ उनका पत्राचार इसी के माध्यम से हुआ था।

आचार्य जी के जीवन का मुख्य लक्ष्य वैदिक आदर्शों की दृष्टि से आर्य जनता का पुनरुत्थान था। उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया।

वाणी और लेखनी के माध्यम से उन्होंने ऋषि के आदर्शवाद को कोने कोने तक फैलाया। उनके द्वारा स्थापित आदर्श, आर्यजगत् की अमूल्य सम्पदा है।

(ए/एच-16, शालीमार बाग, दिल्ली-52)

मेरे चाचा जी आचार्य रामदेव जी

लेखक—श्री वीरेन्द्र प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

आर्यसमाज की जिन विभूतियों के चरणों में बैठकर उनका आशीर्वाद प्राप्त करने का मुझे सौभाग्य मिला था, श्री आचार्य रामदेव उनमें एक थे।

1919 में पंजाब में मारशल ला लागू कर दिया गया था। मेरे पिता श्री महाशय कृष्ण जी को जेल में बन्द कर दिया गया था। मेरी बहिन का उन दिनों विवाह होना था। घर में विवाह की व्यवस्था करने वाला कोई न था। मैं बहुत छोटा था और गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में पढ़ता था। मेरा छोटा भाई नरेन्द्र अभी स्कूल में पढ़ता था। पिता जी की गिरफ्तारी के बाद प्रश्न उठा कि उनकी बेटी का विवाह कौन कराएगा। आर्यसमाज की तीन विभूतियाँ लाहौर पहुँच गईं—उन्होंने कहा—महाशय कृष्ण की बेटी—हमारी बेटी है—सारे आर्य समाज की बेटी है। उसका विवाह हम करायेंगे—यह तीन विभूतियाँ थी—श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज, श्री पण्डित विश्वंभरनाथ जी और आचार्य रामदेव जी। इन तीनों के लाहौर पहुँचने पर पंजाब के दूसरे प्रमुख आर्य समाजी भी वहाँ पहुँचने लगे—और जिस समय मेरी बहिन का विवाह हुआ पिता जी तो वहाँ न थे—परन्तु पंजाब की सारी आर्यसमाज वहाँ थी।

सोचता हूँ कि दुनिया कितनी बदल गई है न वह पुराना आर्य समाज रहा है, न पुराने आर्य समाजी रहे हैं। मुझे पुरानी आर्य समाज को बहुत ही समीप से देखने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। लाहौर में हमारा घर आर्य समाजियों का आश्रम होता था। जो लोग लाहौर आते थे, वहीं ठहरा करते थे। इसलिए हमारे लिए वह, या तो ताया जी होते थे, या चाचा जी। जो पिताजी से बड़े होते थे वह सब ताया जी—जो बराबर या उनसे छोटे होते थे उन सबको हम चाचा जी कहते थे। पण्डित विश्वम्भरनाथ जी—और देहली के लाला नारायण दत्त जी हमारे ताया जी थे—आचार्य रामदेव जी—पण्डित चमूपति जी और दूसरे कई हमारे चाचा जी थे। परन्तु इनमें से दो के साथ मेरे पिता जी के अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध थे। वह थे पण्डित विश्वम्भर नाथ जी और आचार्य रामदेव जी। पं० विश्वम्भरनाथ जी, आचार्य रामदेव जी और महाशय कृष्ण जी यह त्रिमूर्त्ति बहुत देर तक पंजाब की आर्य समाज के कर्णधार समझे जाते रहे हैं। इनके आपस के सगे भाइयों से भी अधिक गहरे सम्बन्ध थे। हम भी जब कोई बात अपने पिता जी से न कर सकते थे, तो या तो ताया जी—पण्डित विम्श्वभरनाथ जी से कर लेते थे—या चाचा जी—आचार्य रामदेव से कर लिया करते थे।

1928 में मेरे कालिज में तीन मास का ग्रीष्म-अवकाश हुआ—पिता जी ने मुझे तीन मास के लिए आचार्य रामदेव जी के पास गुरुकुल काँगड़ी में भेज दिया। वह मुझे प्रतिदिन स्वयं पढ़ाया करते थे। मैं अपने माता-पिता को भूल कर—अपने चाचा जी और चाची जी के पास ऐसे रहा जैसे अपने घर में रह रहा हूँ। जो प्यार इन दोनों से मुझे उस समय मिला, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता।

—आचार्य जी जब कभी पंजाब में आर्य समाज के प्रचार के लिए आते तो हमारे घर में ही रहा करते थे। उस समय उन्हें बहुत समीप से देखने का मुझे अवसर मिलता रहता था। एक व्यक्ति किसी संस्था के लिए अपने आपको पूर्णतया समर्पित कर सकता है यह मैंने उस समय देखा था। उनकी दो बातें मुझे विशेष रूप से आज भी याद है। कई बार वह प्रातः ही बाहर चले जाते थे। जाने से पहले थोड़ा-सा दूध

पी लेते, कुछ फलादि खा लेते और घर से पैदल ही चल पड़ते। सर्दियों में वह एक लम्बा गर्म कोट पहन लिया करते थे। उसके दोनों जेब मूंगफली से भर लेते। सारा दिन उसी से गुजारा करते—सायंकाल घर आकर फिर दूध पी लेते। उन्हें किसी वस्तु की कमी न थी। जहाँ जाते लोग उनकी सेवा करने में अपना सौभाग्य समझते थे—परन्तु वह आर्य समाज के दिवाने—एक फकीर का जीवन व्यतीत करते थे—उन्हें कई बार खाने-पीने का ध्यान भी न रहता था।

—उन्हें स्वाध्याय का भी बड़ा शौक था। जितना वह पढ़ते थे—मैंने आर्य समाज में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं देखा जिसे पढ़ने पढ़ाने का इतना शौक हो—जो कुछ पढ़ते थे उसे केवल अपने पास ही न रखते थे। जनता को बताते थे कि किस पुस्तक में क्या लिखा है। कई बार जब किसी सार्वजनिक सभा में उनका व्याख्यान होता था तो एक ट्रंक भर कर उन किताबों का अपने साथ ले जाते थे जो उन्होंने पढ़ी होती थी। अपने व्याख्यान में उन पुस्तकों में से पढ़कर सुनाते थे कि हमारे देश—हमारे इतिहास और हमारी संस्कृति के विषय में पश्चिमी देशों के विद्वान क्या कहते हैं। आर्यसमाज के किसी दूसरे नेता ने इतिहास का इस प्रकार अध्ययन न किया होगा जैसे आचार्य रामदेव जी ने किया था।

—वरिष्ठ व्यक्तियों का व्यवहार भी कई बार सराहनीय होता था। मैंने जिन तीन विभूतियों का ऊपर जिकर किया है। पण्डित विश्वंम्भरनाथ जी—महाशय कृष्ण जी और आचार्य रामदेव जी—एक बार आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की व्यवस्था के विषय में इनमें कुछ मतभेद पैदा हो गए थे। जिनका उनके आपस के सम्बन्ध पर भी कुछ प्रभाव पड़ा था। परन्तु इनका यह प्रयत्न रहता था कि उनके आपस के मतभेद लोगों के सामने न आयें और आर्य समाज पर उसका किसी प्रकार से बुरा प्रभाव न पड़े—जब आचार्य रामदेव जी देहरादून में बीमार हो गए—महाशय जी को इसका पता लगा—वह उसी दिन देहरादून चले गए ताकि स्वयं जाकर वहाँ देखें कि आचार्य जी के इलाज का पूरा प्रबन्ध हुआ है या नहीं। उन्होंने यह भी कह दिया था कि आचार्य जी की पूरी सेवा की जाय—और उनके इलाज पर चाहे कितना व्यय हो—उसकी कोई चिन्ता न की जाय—उसका प्रबन्ध हो जाएगा।

—आचार्य रामदेव जी के दो स्मृति चिह्न—आर्य समाज के इतिहास में विशेष महत्त्व रखते हैं उनमें से एक देहरादून में स्थित कन्या गुरुकुल है। जिस प्रकार महात्मा मुंशीराम जी—जो बाद में स्वामी श्रद्धानन्द बन गए—गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक थे। आचार्य रामदेव जी कन्या गुरुकुल के जन्मदाता थे। पहले स्वामी श्रद्धानन्द ने और उनके पश्चात आचार्य रामदेव जी ने अपना खून पसीना एक करके यह दो संस्थाएं खड़ी की थीं। कन्या गुरुकुल पहले दिल्ली में शुरू किया गया था। कुछ समय के पश्चात् देहरादून में स्थानान्तरित कर दिया गया।

आचार्य जी अंग्रेजी की वैदिक मैगजीन नाम की एक पत्रिका के सम्पादक थे। यह एक ऐतिहासिक पत्रिका थी। उच्च कोटि के लेखक इसमें अपने लेख भेजा करते थे। इस स्तर की आर्य समाज की पत्रिका फिर देखने को नहीं मिली।

—सोचता हूँ कहाँ गए वो लोग। यह सब आर्य समाज के इतिहास के गौरवमय अध्याय के प्रवर्तक थे—आचार्य तो आज भी कई मिलते हैं परन्तु आचार्य रामदेव दूसरे पैदा नहीं हुए।

आचार्य रामदेव

(पं० रामगोपाल जी विद्यालंकार, सम्पादक, 'वीर अर्जुन')

बचपन

ठोस आर्यसमाजीपन का यदि कोई नमूना पेश करना हो तो आचार्य रामदेव जी से बढ़ कर नहीं किया जा सकता। उठते बैठते, सोते जागते, खाते पीते, बोलते चालते प्रति क्षण उनके सिर पर वैदिक धर्म के प्रचार, आर्य संस्कृति के महत्व और प्राचीन सभ्यता के पुनरुद्धार की धुन सवार रहती थी। आरम्भ से अन्त तक उनके जीवन का एकमात्र यही मिशन रहा।

उनका जन्म, पालन-पोषण और अन्त सब आर्यसमाज के वातावरण में हुआ। उनके पिता ला० चन्दूलाल तो आर्य समाजी थे ही, उनके परिवार के अन्य लोग भी आर्य समाजी ही थे। पिताजी पंजाब के प्रसिद्ध सिख परिवार मजीठिया के गृह-शिक्षक थे और उनके ही प्रभाव तथा उनके मित्रों की संगति के कारण इस सिख परिवार में भी बहुधा धार्मिक विषयों पर और वैदिक साहित्य पर चर्चा चलती रहती थी, जिस को बालक रामदास (आचार्य रामदेव जी का नाम बचपन में यही था) भी इतने ध्यान से सुना करता था कि कभी-कभी वह रात अधिक बीत जाने पर भी नींद का नाम तक नहीं लेता था।

बालक रामदास का जन्म ता० 31 जुलाई सन् 1881 ई० को ग्राम बजवाड़ा (जिला होशियारपुर) में हुआ था। परन्तु क्योंकि उसके पिता मजीठिया परिवार के शिक्षक थे और उनको अपने इस कार्य के लिये अधिकतर जालन्धर, लाहोर, मरी आदि रहना पड़ता था, इस कारण आचार्य रामदेव जी का सम्बन्ध इस ग्राम के साथ जन्म से अधिक नहीं रहा।

शिक्षण उनका अधिकतर लाहोर में हुआ। पहले सेन्ट्रल मॉडल स्कूल में और फिर डी० ए० वी० स्कूल में। वहीं से उन्होंने सन् 1895 में मिडल और बाद को मैट्रिक पास किया। उच्च शिक्षा के लिये वह डी० ए० वी० कालिज में दाखिल हुए परन्तु उसे वहां पूरा नहीं कर सके। क्यों नहीं कर सके, इसकी बड़ी मनोरंजक कहानी है, जो यथास्थान लिखी जायगी।

बस, बचपन की कहानी तो इतनी ही है। आयु की दृष्टि से यद्यपि 17, 18 वर्ष में और जब तक कोई पढ़ता रहे तब तक लड़कपन समाप्त नहीं होता, परन्तु संसार में प्रवेश कर लेने पर, आयु छोटी होने पर भी, लड़कपन समाप्त ही समझा

जाता है ! रामदेव जी 18, 19 वर्ष की आयु में ही सुख विद्यार्थी-जीवन छोड़कर अपने भावी जीवन के मार्ग पर पड़ गये थे, इसलिये उनका लड़कपन यहीं समाप्त हो गया। यों कुछ न कुछ अध्ययन करते रहने और ज्ञानोपार्जन करते जाने का तो उनको व्यसन था और यह मृत्यु-शैया पर पड़े हुए भी नहीं छूटा था।

अपने पांव पर

बहू के घर में आ जाने पर सास बहू में झगड़ा हो जाने का रिवाज है। कभी कभी बहू को लेकर बाप बेटे में भी खटक जाती है। परन्तु रामदेव जी का झगड़ा अपने पिता से बहू की तरफदारी करने के कारण नहीं, पिताजी द्वारा बहू के एक पुराने रिवाज की तरफदारी करने के कारण हुआ।

ला० चन्दूलाल जी थे तो आर्यसमाजी, परन्तु विचार मात्र में, आचार में नहीं। अमल वह पुराने रीति रिवाजों पर ही करते थे। उन्हीं के अनुसार उन्होंने अपने पुत्र का विवाह केवल 13 वर्ष की आयु में कर दिया। बारात जालन्धर गई थी और कन्या कुछ समय तक कन्या महाविद्यालय जालन्धर में पढ़ी थी, इस कारण कन्या-पक्ष की तरफ से विवाह में कन्या महाविद्यालय के प्रसिद्ध संचालक लाला देवराज जी और स्व० लाला मुन्शीराम जी (जो पीछे संन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानन्द हुए) भी शरीक हुए थे। दूल्हा महाशय डी० ए० वी० स्कूल लाहौर में पढ़ते थे और स्कूल के संचालकों की[1] पार्टी के जोशीले लड़कों में से थे। वह वहां के वातावरण में पूरी तरह रमे हुए थे। विवाह के समय उनको दूर से दिखाया गया कि महात्मा पार्टी के 'लीडर' ला० मुन्शीराम वह बैठे हैं। देखते ही दूल्हाजी ने जोर से कहा, 'अच्छा, आर्यसमाज के सब झगड़ों की जड़ यही हैं !'

विवाह के समय तो दूल्हाजी ने यह कह दिया, परन्तु जालन्धर-वालों का जमाई बन जाने के बाद यही 'आर्यसमाज के सब झगड़ों की जड़' ला० मुन्शीराम, 'कालिजपार्टी के जोशीले वर' का काया-पलट करने के मुख्य कारण बने।

विवाह के दस-पन्द्रह दिन पश्चात् ही नौजवान जमाई को लगातार पाँच-छः दिन अपनी ससुराल में रहना पड़ा। जमाई-साहब पं० गुरुदत्त के सम्पर्क में आने के कारण पुस्तकें पढ़ने के शौकीन बन चुके थे। ससुराल में खाली बैठे-बैठे उनका जी न लगा। उन्होंने सुना कि ला० मुन्शीराम के पुस्तकालय में अच्छी अच्छी पुस्तकों का संग्रह है। संकोच छोड़कर वहीं पहुंचे। वहाँ जाकर न केवल अच्छी पुस्तकें मिल गयीं, 'कालिज पार्टी के जोशीले वर' को जीवन का भावी मार्ग दिखाने वाला नेता भी मिल गया।

---

1. आर्यसमाज 1892 में ही दो पार्टियों में बँट चुका था। महात्मा पार्टी की प्रमुख संस्था तब कन्या महाविद्यालय जालन्धर और कालिज पार्टी की डी० ए० वी० स्कूल लाहौर था।

ला० मुन्शीराम ने बालक रामदेव को बड़े प्रेम से अपनाया। कहने की आवश्यकता नहीं कि बालक का यह भ्रम तो दूर हो ही गया कि ला० मुन्शीराम ही 'आर्यसमाज के सब झगड़ों की जड़ है, साथ ही उसे आर्यसमाज के वास्तविक आदर्शों का भी ज्ञान हो गया।

ला० मुन्शीराम जी के तथा जालन्धर कन्या-महाविद्यालय के अन्य प्रमुख व्यक्तियों के संसर्ग में आने से बालक रामदेव को स्त्री-शिक्षा का और स्त्रियों को स्वतन्त्रता देने का महत्व भली भांति ज्ञात हो गया। कालिज पार्टी के संचालक उन दिनों स्त्री-शिक्षा के विरोधी थे। परिणाम यह हुआ कि अब कालिज पार्टी का जोशीला वर जालन्धर-वालों के जोशीले जमाई में बदल गया। कालिज का वातावरण स्त्री-शिक्षा के पक्ष विपक्ष की बहस से गूंज गया।

कालिज के विद्यार्थी एक पत्र निकालते थे 'आर्य मैसेन्जर'।[1]

जालन्धर-वालों का जमाई ही उसका उत्साही सम्पादक था। उसने उसमें एक कहानी लिखी, जिसमें दिखाया गया था कि किस प्रकार कन्या-महाविद्यालय में शिक्षा पाने के कारण एक पत्नी अपने मार्ग-भ्रष्ट पति को मार्ग पर लाने में सफल हुई। कालिज पार्टी के अधिकारियों और आर्यसमाज की कालिज पार्टी के नेताओं ने स्वभावतः इस कहानी पर उज्र किया।

महात्मा-पार्टी के संसर्ग में आने के कारण 'कालिज के जोशीले लड़के' के दिमाग में यह समा गया कि ग्रेजुएट बनाने की मशीन तो सभी स्कूल कालिज हैं, आर्यसमाज के कालिज का लक्ष्य इससे कुछ भिन्न, वैदिक संस्कृति का पुनरुज्जीवन और वैदिक धर्म के मिशनरी तैयार करना, होना चाहिये। उसने अपने इस विचार को कालिज के विद्यार्थियों की बहस तक ही सीमित नहीं रखा। वक्त-बेवक्त और मौका बमौका, कालिज के अधिकारियों को भी इस विचार का उपदेश आरम्भ कर दिया। कालिज के प्रिन्सिपल ला० हंसराज थे। उनका 'डिसिप्लिन' का आदर्श इस बात की इजाजत नहीं देता था कि उनका कोई विद्यार्थी आकर उनको यह बतलावे कि कालिज किस मार्ग पर चलना चाहिये और किस मार्ग पर नहीं।

अब युवक रामदेव ने अपना लक्ष्य ही वैदिक संस्कृति का पुनरुद्धार और वैदिक धर्म का प्रचार बना लिया। वह महात्मा पार्टी के वेद-प्रचार फण्ड के लिये लाहौर में घूम घूम कर चन्दा भी जमा करने लगा। यह कालिज पार्टी के नेताओं

1. इसी "आर्य मैसेन्जर" पत्र में, वच्छोवाली आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में परदा उठा दिए जाने पर, उसका मजाक उड़ाते हुए लिखा गया था कि वच्छोवाली-वालों ने अपने अधिवेशनों की तरफ लोगों को आकृष्ट करने तथा जलसे की रौनक बढ़ाने के लिये स्त्रियों को सुन्दर 2 साड़ियाँ पहना कर पुरुषों के साथ बिठलाया।

और उनके कालिज के अधिकारियों को सह्य नहीं हो सका। उन्होंने रामदेव के विषय में अपना निर्णय कर लिया।

स्त्री-शिक्षा का पक्षपाती बन कर युवक रामदेव ने स्त्रियों के अधिकारों और स्त्रियों की स्वतन्त्रता के विषय में पुस्तकें पढ़ना शुरू किया। इन्हीं में एक पुस्तक थी अंग्रेजी के प्रसिद्ध दार्शनिक जान स्टुअर्ट मिल की 'सब्जेक्शन आव विमेन।' इसका उसके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वह परदे का कट्टर विरोधी हो गया। इस पर अमल भी अपने घर से ही शुरू किया। उसने अपनी पत्नी से न केवल परदा छुड़वा दिया, बल्कि दो-तीन मित्रों को घर बुलाकर उनसे पत्नी का परिचय भी करा दिया।

पुराने रीति-रिवाजों के उपासक ला० चन्दूलाल (पिताजी) यह कैसे बरदाश्त करते। उन्होंने उसी रात पुत्र को बुलाकर कहा, 'बेटा; तुमने तो वह काम कर डाला जो हमारे घर में कभी न हुआ था। तुमने तो हमारी नाक कटा दी।'

परन्तु पुत्र तो जो ठीक समझ चुका था उसे अमल में लाने-पर तुला हुआ था। पिताजी ने बहुतेरा समझाया। वह न माना। क्रुद्ध हो पिताजी ने कह दिया कि जो तेरे यही ढंग रहने हैं तो तेरे लिये इस घर में जगह नहीं है।

अगले दिन प्रातःकाल युवक रामदेव घर से यह निश्चय करके कालिज गया कि मुझे अब उस घर में नहीं लौटना। कालिज पहुँचा तो कालिज के अधिकारियों ने भी अपना निर्णय सुना दिया कि विद्रोही विद्यार्थी को कालिज में स्थान नहीं मिल सकता। इस प्रकार घर से और कालिज से एक-साथ जवाब मिल गया।

सम्भव है कि कालिज के प्रिन्सिपल ला० हंसराज जी से युवक विद्यार्थी का मेल हो जाता। परन्तु विद्यार्थी प्रिन्सिपल का रिश्तेदार[1] था और आयु में उनसे 15 वर्ष छोटा था। इस कारण प्रिन्सिपल सोच-विचार के पश्चात् भी इसी परिणाम पर पहुंचे कि उस विद्यार्थी को लेकर कालिज में 'डिसिप्लिन' कायम रखना सम्भव नहीं होगा।

युवक रामदेव, वह दिन-भर, कालिज के पास ही लाहौर के गोलबाग में एक पेड़ के नीचे बिताकर, शाम को अपने एक मित्र के घर चला गया और यहीं से उसके जीवन की दिशा बदल गई।

'रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन'

वेद-प्रचार के प्रेमी और जोशीले व उत्साही एक विद्यार्थी को डी० ए० वी० कालिज से निकाल दिया गया है और अब उसे अपने पिता का भी आश्रय नहीं रहा, यह समाचार जालन्धर भी पहुंचा। अगले ही दिन लाला मुन्शीराम जी लाहौर गये और उक्त मित्र के घर पर रामदेव से मिले। उन्होंने उसे सान्त्वना और आश्वासन

---

1. ला० 'हंसराज जी युवक रामदेव के मौसेरे भाई थे, और दोनों के दादा एक होने के नाते चचेरे भाई भी।

दिया कि तुमको न पिता की चिन्ता करनी चाहिए न कालिज की; आज से मैं तुम्हारा धर्म-पिता हुआ और मैं तुमको बी. ए. तक नहीं, एम. ए. तक अपने खर्च से पढ़ाऊंगा।

लाला मुन्शीराम जी ने युवक रामदेव को आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब के मुख-पत्र 'आर्य पत्रिका' के सम्पादकीय विभाग में रखवा दिया। कुछ दिन तक यहां काम करने के पश्चात् वह जालन्धर छावनी जाकर वहाँ के विक्टर हाई स्कूल के हैडमास्टर हो गये। स्कूल का काम करते हुए ही वह निज् रूप से बी० ए० परीक्षा की तैयारी करते रहे और दो वर्ष पश्चात् इस परीक्षा में सफल हो गये।

स्कूलों का इन्स्पैक्टर आपके काम और योग्यता से इतना प्रसन्न और प्रभावित हुआ कि उसने सिफारिश करके आपको लाहौर के ट्रेनिंग कालिज में एक छात्रवृत्ति दिलवा दी। कालिज में आपका शिक्षण-क्रम बड़ा विचित्र रहा। गणित सरीखे एकाध विषय में तो आप लगभग बिल्कुल नहीं चलते थे और अंग्रेजी साहित्य आदि कई विषयों में ऐसे तेज थे कि अध्यापक भी आपको सिखाने के अतिरिक्त आपसे थोड़ा-बहुत सीख भी लेते थे।

सन् 1905 ई० में ट्रेनिंग कालिज से निकलने पर आपको रियासत जींद में स्कूल इन्स्पैक्टर का स्थान मिल गया। आप वहाँ जाने के लिये अपना असबाब आदि बांध कर तैयार थे कि लाला मुन्शीराम का तार पाकर आप उनसे मिलने गये और जींद रियासत की स्कूल इन्स्पैक्टरी को लात मारकर, उनके अनुरोध से गुरुकुल कांगड़ी को अपना जीवन दान करके उसकी सेवा के लिये हरिद्वार के पास गंगापार के जंगल में चले गये।

जालंधर में स्कूल की हैडमास्टरी करते हुए और लाहौर ट्रेनिंग कालिज में पढ़ते हुए भी आप का वैदिक धर्म के प्रचार का और उस पर अमल का काम जारी रहा। जालन्धर में आपने एक आर्य-भ्रातृ-सभा कायम की, जिसका एक आवश्यक नियम यह था कि उसके सब सदस्य सत्संग में सपरिवार आया करें और उनके घरों की देवियां परदा न करें। इस नियम पर अमल करने में उन्हें स्वयं भी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उनकी पत्नी सुगमता से परदा छोड़ कर सभा में जाने को राजी न होती थीं परन्तु रामदेवजी अपने प्रयत्न में सफल हुए। पत्नी ने हिन्दू स्त्रियों के आदर्श पर चलते हुए पति की इच्छा पूर्ण करने के लिये पुराने रिवाजों को छोड़ना स्वीकार कर लिया।

डी०ए०वी० कालिज छोड़ने के पश्चात्, 'आर्य पत्रिका' की उप-सम्पादकी करते हुए, कालिज पार्टी की 'यंग्ङ मेन्स आर्यसमाज' के जवाब में युवक रामदेव ने अन्य कई मित्रों के साथ मिलकर सन् 1899 में 'आर्य कुमार सभा' की नींव डाली। सभा सोसाइटियों में भाग लेने का शौकीन और विशेष उत्साही होने के कारण इस सभा का प्रथम मन्त्री भी आपको ही चुना गया। आप इस पद को इतना सम्मानास्पद मानते थे कि आप जहां कहीं अपना नाम लिखते थे उसके साथ 'मन्त्री आर्य कुमार सभा' यह विशेषण अवश्य लगाते थे। आपने अपने जो 'लैटर फार्म' छपवाए उन पर भी उप-

सम्पादक 'आर्य पत्रिका' और मन्त्री आर्य कुमार सभा दर्ज था। इसी हैसियत से आप जगह जगह व्याख्यान देने भी जाया करते थे। वजीराबाद में एक बार इसी नाते व्याख्यान देने जाने पर आपका महाशय कृष्ण जी (तब राधाकृष्ण) से परिचय हुआ था, जो बाद को घनिष्ठ मित्रता में परिणत हो गया।

पूर्व और पश्चिम का मेल

कांगड़ी में गुरुकुल का आरम्भ विद्यार्थियों को डी०ए०वी० कालिज की बुराइयों से बचाने के लिये किया गया था। डी० ए० वी० कालिज में अन्य सब कालिजों की भांति प्राचीन वैदिक साहित्य और आर्य संस्कृति की उपेक्षा करके, अंग्रेजी की पढ़ाई पर जोर दिया जाता था। भूगोल, इतिहास, विज्ञान आदि विषयों की शिक्षा का अध्ययन भी वहां अंग्रेजी में होता था। गुरुकुल में अंग्रेजी की उपेक्षा करके संस्कृत और वैदिक साहित्य की पढ़ाई पर बल दिया गया। अध्यापक भी नये जमाने से सर्वथा अनभिज्ञ पुराने ढंग के पण्डित रखे गये। वे विद्यार्थियों को समय आदि के विषय में बिना किसी नियम की पाबन्दी के अपनी इच्छानुसार, पढ़ाते थे। शिक्षा के नवीन आदर्शों का न उनको परिचय था और न वे उनकी परवाह ही करते थे। नियन्त्रण या 'डिसिप्लिन' का उन्होंने नाम भी नहीं सुना था। इस प्रकार के पण्डित थे जिन पर गुरुकुल कांगड़ी में पहुंच कर अंग्रेजी वातावरण व शिक्षा पाये हुये युवक रामदेव ने 'हैडमास्टरी' करनी थी।

दो विरोधी स्वभाव के कार्यकर्ताओं को एक स्थान में रखने का जो स्वाभाविक परिणाम होना चाहिये, वही हुआ। रामदेव जी की पण्डितों से नहीं बनीं। पण्डित 'हैडमास्टर' का और 'हैडमास्टर' पण्डितों का विरोध करने लगे।

पण्डितों ने कहा कि हम बालकों को अंग्रेजी नहीं पढ़ाने देंगे। उन्होंने विद्यालय में नियमित समय-विभाग आदि बनाने का भी विरोध किया। गुरुकुल के संचालक महात्मा मुंशीराम जी विचित्र दुविधा में फंस गये। वह पण्डितों को भी नहीं छोड़ना चाहते थे—उनकी सहायता के बिना वैदिक तथा संस्कृत साहित्य के पठन-पाठन का पुनरुज्जीवन कैसे होता—और अपने 'हैडमास्टर' को भी नहीं; उसे तो वह विशेष रूप से गुरुकुल ले ही गये थे। अन्त को इस समस्या का हल स्वयं ही हो गया।

पण्डित एक परम्परा के लिये लड़ रहे थे, किसी आदर्श के लिये नहीं। रामदेव जी के सामने एक आदर्श था। वह सब व्यवस्थित विद्यालयों के नियमों का पालन करते हुये प्राचीन संस्कृत साहित्य का पठन-पाठन तो पुनरुज्जीवित करना चाहते ही थे, साथ ही नवीन विज्ञानों से भी अपने विद्यार्थियों को अनभिज्ञ नहीं रखना चाहते थे। पण्डितों ने दस-दस, पांच-पांच चेलों की मण्डलियां ही पढ़ायी थीं; रामदेव जी का सम्बन्ध कई व्यवस्थित विद्यालयों से रह चुका था। पण्डितों के सामने कोई योजना नहीं थी; रामदेव जी जो करना चाहते थे उसकी उनके पास पूरी योजना तैयार थी और सबसे बढ़कर उनको अपना आदर्श अमल में लाने की असीम धुन थी। परिणाम

यह हुआ कि पण्डित अपनी दाल गलती न देख कर अपना पोथी-पत्रा उठा कर भाग खड़े हुये।

अब मैदान रामदेव जी के हाथ था। उन्होंने महात्मा मुन्शीराम जी की सलाह और सहायता से एक निश्चित पाठ-विधि तैयार की, जिसमें संस्कृत का पठन-पाठन प्रमुख रखते हुये भूगोल इतिहास, विज्ञान और अंग्रेजी भाषा को भी उचित स्थान दिया गया। विद्यार्थियों के लिये आश्रम की नियमित दिनचर्या और विद्यालय का नियत समय-विभाग बना दिये गये। इस व्यवस्था पर अमल करने में उन पण्डितों ने भी सहयोग दिया जो हठी बड़े पण्डितों के साथ भाग नहीं गये थे।

आश्रम की दिनचर्या में, नियत समय पर और सम्मिलित होकर सब काम करने के नवीन आदर्श के अतिरिक्त, नित्य प्रातः सायं सन्ध्या, अग्निहोत्र, व्यायाम आदि करने के प्राचीन नियम के पालन पर भी ध्यान रखा गया। पठन-पाठन में विद्यार्थियों और अध्यापकों का सम्बन्ध विद्यालय के दो-एक घण्टों तक ही सीमित न रख कर, दिन-रात एक साथ रहने-सहने का रखा गया। सारांश यह कि गुरुकुल को वास्तविक अर्थों में 'गुरुकुल' बनाने का यत्न किया गया।

गुरुकुल के साथ रामदेव जी का सम्बन्ध साधारणतया इतना ही समझा जाता है कि महात्मा मुन्शीराम जी के संन्यास ले लेने के पश्चात् वह वहाँ के आचार्य और उनके उत्तराधिकारी बने। परन्तु पीछे जो लिखा गया है उससे ज्ञात होगा कि महात्मा मुन्शीराम जी के संन्यास लेने के समय गुरुकुल जो कुछ था उसको बनाने में भी रामदेव जी का कितना बड़ा हाथ था।

गुरुकुल में रामदेव जी केवल 'हैडमास्टर' बनकर रहने के लिये नहीं गये थे। वह वहाँ गुरुकुल के निर्माण में महात्मा मुन्शीराम जी का हाथ बँटाने के लिये गये थे। फलतः ज्यों-ज्यों गुरुकुल का विकास होता गया त्यों-त्यों उन पर भी अधिकाधिक उत्तरदायित्व आता गया। गुरुकुल में महाविद्यालय (कालिज) विभाग खुलने के पश्चात् उनकी योजना की पूर्ति का भार भी उनके ऊपर ही पड़ा। अब वह 'हैडमास्टर' रामदेव जी से प्रिन्सिपल रामदेव हो गये।

गुरुकुल महाविद्यालय विभाग का प्रिन्सिपल (आचार्य) होते ही उन्हें कुछ समय के लिये महात्मा मुन्शीराम जी की मूल्यवान सहायता से वंचित हो जाना पड़ा। महात्मा मुन्शीराम केवल गुरुकुल के संचालक नहीं थे, आर्यसमाज की गुरुकुल पार्टी के प्रधान नेता भी थे। उनको आर्यसमाज की हलचलों में भाग लेने के लिये भी समय निकालना ही पड़ता था। तिस पर सन् 1909 में आर्य समाज पर एक ऐसी बड़ी विपत्ति आ गई जिसका सामना करने के लिये महात्मा मुन्शीराम जी को अपना अधिकतर समय गुरुकुल से बाहर बिताना पड़ा। प्रिन्सिपल रामदेव जी ने उनके पीछे कुछ समय तक अकेले ही गुरुकुल का संचालन किया। परन्तु जिस कार्य के लिये महात्मा मुन्शीराम जी को गुरुकुल से बाहर जाना पड़ा था वह इतना जटिल निकला कि उसमें सहायता करने के लिये उन्होंने प्रिन्सिपल रामदेव जी को भी अपने पास

बुला लिया और उस कार्य में प्रिन्सिपल रामदेव जी ने जो कुछ किया उससे उनकी योग्यता की धाक दूर दूर तक बैठ गई।

आर्यसमाज का दुर्ग-रक्षक

सन् 1907 से सन् 1909 तक के दो-तीन वर्ष भारतवर्ष के सार्वजनिक जीवन में असाधारण हलचल के वर्ष थे। स्वदेशी और स्वराज्य का आन्दोलन इससे पूर्व देश में इतना गरम कभी नहीं हुआ था। बगाल में राजनीतिक क्रान्तिकारियों की टोलियों का संगठन इन्हीं दिनों हुआ। पंजाब पर भी उसका प्रभाव पड़ा। स्व० लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह ने स्वदेशी और स्वराज्य के आन्दोलन से पंजाब को भी हिला दिया।

इससे पहले तक पंजाब के सार्वजनिक जीवन में सब से प्रमुख हलचल आर्यसमाज की ही थी। बंगाल से उठकर स्वदेशी की लहर पंजाब में आने पर आर्यसमाज की गुरुकुल पार्टी ने भी उससे सहानुभूति प्रकट की और यह था भी सर्वथा स्वाभाविक। क्योंकि आर्यसमाज जिन कारणों से दो दलों में विभक्त हुआ उनमें से एक बड़ा कारण यह भी था कि कुछ प्रमुख आर्यसमाजियों को डी०ए०वी० कालिज के संचालकों से शिकायत थी कि वे कालिज को प्राचीन वैदिक तथा आर्य-संस्कृति के पुनरुद्धार का साधन न बनाकर उसे अन्य कालिजों की एक भद्दी नकल बनाये डाल रहे हैं। कालिज पार्टी के विपरीत, गुरुकुल पार्टी प्रारम्भ से ही ऐसी प्रत्येक हलचल का समर्थन करती थी जिसका आधार भारतीय संस्कृति का पुनरुज्जीवन हो। इस कारण यदि आर्यसमाज गुरुकुल पार्टी ने स्वदेशी आन्दोलन का साथ दिया तो आश्चर्य क्या? स्व० लाला लाजपतराय और भाई परमानन्द जी आदि अपने कई प्रमुख व्यक्तियों को, जिन कार्रवाइयों के कारण, आर्यसमाज की कालिज पार्टी ने पराया प्रकट करने का यत्न किया उन्हीं का गुरुकुल पार्टी के नेताओं ने अपने लेखों व भाषणों में समर्थन किया। परन्तु आर्यसमाज की यह कार्रवाई सर्वथा स्वाभाविक होते हुये भी इसका परिणाम बड़ा भयंकर हुआ।

भारत की विदेशी सरकार आर्यसमाज को (विशेषत: उसकी गुरुकुल पार्टी को) और उसकी प्रमुख संस्था गुरुकुल को अत्यन्त सन्देह की दृष्टि से देखने लगी। शासक-वर्ग आर्यसमाज को धार्मिक की बजाय राजनीतिक संस्था मानने लगा। उसके प्रत्येक कार्य पर और उसके सब सदस्यों पर तेज खुफिया नजर रखी जाने लगी। कुछ समय के लिये तो यहां तक सन्देह होने लगा था कि आर्यसमाज और उसकी संस्थाओं को शासक-वर्ग खिलाफ-कानून घोषित कर देगा और 'सत्यार्थप्रकाश' आदि उसकी धार्मिक पुस्तकों को जब्त कर लेगा। गुरुकुल-पार्टी के नेताओं ने — विशेषत: महात्मा मुन्शीराम जी ने और प्रिन्सिपल रामदेव जी ने—आर्यसमाज पर सरकार के इस सन्देह का उत्तर बड़े निधड़कपन से दिया।

गुरुकुल पार्टी ने सरकार के आक्षेपों से डरकर अपनी किसी भी हलचल को कम नहीं किया, बल्कि जनता पर उसका रूप अधिक स्पष्टता से प्रकट करके यह

सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि सरकार का सन्देह निराधार है। महा० मुन्शीराम जी और प्रिन्सिपल रामदेव जी, दोनों को हीं, आर्यसमाज-विरोधी इस आन्दोलन के विरुद्ध प्रत्यान्दोलन करने के लिये कुछ वर्ष तक गुरुकुल से बाहर चले जाना पड़ा। इस प्रत्यान्दोलन में संगठन का काम महात्मा मुन्शीराम जी के हिस्से और लेखन व भाषण का काम प्रिन्सिपल रामदेव जी के हिस्से पड़ा।

उन दिनों प्रिन्सिपल रामदेव जी ने लेखन और भाषण का जितना अधिक और अनथक काम किया उतना उनको अपने जीवन में शायद ही कभी करना पड़ा हो। देश और विदेश के अनेक पत्रों में उन्होंने आर्यसमाज पर किये गये आक्षेपों और सन्देहों के उत्तर में लेख लिखे। जहाँ कहीं भाषण देने का अवसर देखा वहीं जाकर भाषण दिया। भारतवर्ष का तो अंग्रेजी भाषा का शायद ही कोई प्रमुख पत्र ऐसा बचा हो जिसमें उन्होंने उन दिनों कोई न कोई लेख न लिखा हो। लाहौर के अंग्रेजी दैनिक 'पंजाबी' से उन्हें इस प्रत्यान्दोलन में बड़ी सहायता मिली थी।

सन् 1909 के नवम्बर में लाहौर की वच्छोवाली आर्यसमाज के सालाना जलसे पर भाषण करते हुये 'सत्यार्थ-प्रकाश' सरकार द्वारा जब्त कर लिये जाने के भय का उन्होंने बड़ा वीरता-पूर्ण उत्तर दिया था। उन्होंने कहा था कि भारतवर्ष पर आक्रमण करने वाले मुस्लिम राजाओं ने कई बार इस देश के बड़े-बड़े पुस्तकालयों को जला-जलाकर खाक में मिला दिया और सैकड़ों आर्य विद्वानों को मृत्यु के विकराल मुख में झोंक दिया तो भी हमारे पूर्वजों ने वेद-शास्त्र तथा अन्य वैदिक-साहित्य को नष्ट नहीं होने दिया था। उन्होंने वंश-परम्परा से वेदों को कण्ठ करके उनकी रक्षा की थी। हम उन्हीं आर्यों के वंशज हैं। हम भी 'सत्यार्थ-प्रकाश' की एक-एक पंक्ति कण्ठ कर लेंगे और उसे नष्ट नहीं होने देंगे। सरकार का कानून कागज पर छपी हुई पुस्तक को जब्त कर सकता है, आर्यों के हृदयों में सुरक्षित उसके ज्ञान को नहीं।

ब्रिटिश भारत में तो उन दिनों आर्यसमाज शासकवर्ग के सन्देह का और खुफिया पुलिस की तीखी नजरों का शिकार होकर ही रह गया, परन्तु रियासत पटियाला ने आर्यसमाजी-मात्र पर जिहाद ही बोल दिया था। ता० 9 अक्टूबर सन् 1909 को पटियाला के प्रमुख अधिकारी मि० बारबरटन ने तमाम आर्यसमाजियों को गिरफ्तार करवा लिया। महात्मा मुन्शीराम तब वकालत छोड़ चुके थे। उन्होंने पटियालवी आर्यों की कानूनी पैरवी करने के लिये वकालत की सनद पुनः प्राप्त की। वह तो इस कार्य में लग गये और प्रिन्सिपल रामदेव जी ने रात दिन एक करके लेखन व भाषण द्वारा प्रान्त भर में उन के पक्ष में आन्दोलन आरम्भ कर दिया। उन दिनों वह नित्य 18-18 घण्टे तक लेखन आदि का काम करते थे। "आर्यसमाज ऐण्ड इट्स डिट्रैक्टर्स" (आर्य समाज और उसके निन्दक) नामक लगभग 300 पृष्ठ की अंग्रेजी पुस्तक उन्हीं दिनों लिखी गयी थी।

साहित्यिक स्वयंपाक

पहले लिख चुके हैं कि गुरुकुल कांगड़ी में इतिहास, विज्ञान आदि विषय हिन्दी में पढ़ाये जाते थे। इन विषयों की न केवल हिन्दी में पाठय पुस्तकें थीं, बल्कि जो अंग्रेजी में भी थीं वे पक्षपात-पूर्ण दृष्टिकोण से लिखी हुई थी। इस कारण यह आवश्यकता अनुभव हुई कि गुरुकुल के विद्वान् अध्यापक विद्यार्थियों को पढ़ावें भी और साथ ही पढ़ाने के लिए पाठ्य पुस्तकें भी लिखें।

भारत का जो इतिहास उन दिनों स्कूलों कालिजों में पढ़ाया जाता था वह विद्यार्थियों को यही सिखलाता था कि प्राचीन आर्य असभ्य और जंगली थे, वेद गडरियों के गीत हैं, इत्यादि। प्राचीन वैदिक संस्कृति का जो महत्व है और आर्य-सभ्यता का जो गौरव है उस से विद्यार्थियों को सर्वथा अनभिज्ञ रखा जाता था। प्रिन्सिपल रामदेव जी विस्तृत स्वाध्याय के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचे कि यह सब ऐतिहासिक सच्चाई नहीं है। उन्होंने सैकड़ों प्राचीन और अर्वाचीन पुस्तकों का अध्ययन करके दो जिल्दों में एक नया "भारतवर्ष का इतिहास" लिखा। यह गुरुकुल कांगड़ी की पाठ-विधि में तो रखा ही गया, संयुक्त प्रान्तीय सरकार की रिपोर्ट के अनुसार, जिस वर्ष यह प्रकाशित हुआ उस वर्ष की सबसे अधिक बिकने वाली पुस्तकों में से एक यह भी था।

इतिहास के अतिरिक्त प्रिन्सिपल रामदेव जी के विशेष शौक का विषय पूर्वी तथा पश्चिमी दर्शन-शास्त्र और विविध धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन था। गुरुकुल महाविद्यालय में आर्य सिद्धान्त का अध्यापन आपने अपने ही जिम्मे लिया था। इससे पहले आर्य सिद्धान्त के विद्यार्थियों के लिए पठन-पाठन का कोई क्रम निश्चित नहीं था। आप स्वयं उनके अध्यापन के लिये खोज करते थे और उनको पढ़ाते थे। विविध धर्मों का तुलनात्मक अध्यापन करके आर्य वैदिक सिद्धान्तों का युक्ति, तर्क तथा प्रमाणपूर्वक खण्डन, उस श्रेणी के विद्यार्थियों को विशेष रूप से बतलाया जाता था।

जिन दिनों आपको इस श्रेणी के अध्यापन के लिए खोज पूर्वक अध्ययन करना पड़ता था, उन दिनों आपका निजी पुस्तकालय भी बहुत बड़ा हो गया था। पीछे सन् 1920 में अकस्मात् आपके मकान में आग लग जाने के कारण पुस्तकों का वह विशाल संग्रह भस्म हो गया।

मकान में जब आग लगी तब अन्य सब लोग तो घर गृहस्थ का आवश्यक सामान बचाने में लगे हुये थे, परन्तु आपका ध्यान केवल पुस्तकों की अलमारियों की तरफ था; और जब वे पुस्तकें बचायी नहीं जा सकीं, आग की लपटों ने लपक कर उन्हें अपनी गोद में ले ही लिया, तब आपने हंसते हुये आस-पास खड़े लोगों को दिखाकर कहा कि देखो, पाश्चात्य सभ्यता के समर्थक साहित्य की होली हो रही है।

आपने पाश्चात्य दर्शन, सभ्यता और धर्मों की आलोचना में जो विस्तृत सामग्री संग्रह की थी, प्रकाशित उसका अंश-मात्र ही हुआ है। यदि कहीं उस सब

सामग्री को प्रकाशित होने का अवसर मिलता तो आर्य जनता को उनके विशाल अध्ययन की कुछ कल्पना हो सकती थी। इसमें से जो थोड़ा-सा साहित्य प्रकाशित हुआ उसमें विकास-वाद के खण्डन में भी एक पुस्तिका है। पुराणों का गहरा पर्यालोचन करके भी आपने वैदिक साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार की सहायता से 'पुराण-विमर्श' नामक एकविशाल ग्रन्थ प्रकाशित करवाया था। पंजाब के प्रसिद्ध आर्य प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्स ने भी आपके व्याख्यानों और लेखों का एक संग्रह प्रकाशित किया था।

ये तथा आप की अन्य पुस्तकें, लिखने की इच्छा पूर्ति अथवा व्यवसाय की दृष्टि से नहीं, वरन् गुरुकुल कांगड़ी के विद्यार्थियों को पठन-पाठन में सहायता देने और वैदिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन की दृष्टि से ही लिखी गयी थीं।

आचार्य के आसन पर

सन् 1909-10 में आर्य समाज पर विपत्ति की जो घटा आयी थी, जिसका कुछ निर्देश पीछे किया गया है और जिसके निवारक आन्दोलन में काम करने के लिये प्रिन्सिपल रामदेव जी का गुरुकुल कांगड़ी की तरफ से कुछ समय के लिये अपना ध्यान जरा हटा लेना पड़ा था, उसके उड़ जाने के पश्चात् आपका पूरा समय अपनी प्यारी संस्था के काम में लगने लगा। अब आप गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग का आन्तरिक संगठन करने के अतिरिक्त सस्था के लिये धन-संग्रह के काम में भी महात्मा मुन्शीराम जी को योग देने लगे। सन् 1913-14 के पश्चात् आपने महात्मा मुन्शीराम जी को महाविद्यालय विभाग के प्रबन्ध से लगभग निश्चिन्त कर दिया था।

सन् 1917 में महात्मा मुन्शीराम जी संन्यास लेकर गुरुकुल कांगड़ी से विदा हो गये। उनके बाद गुरुकुल में आचार्य और मुख्याधिष्ठाता के पद अलग अलग कर दिये गये और आचार्य का काम आपके सुपुर्द किया गया। इस पद पर कार्य तो आप पहले भी करते रहे थे। भेद इतना था कि पहले आप पर केवल विद्यार्थियों को पढ़ाने की और पढ़ाने का प्रबन्ध करने की जिम्मेवारी थी, आश्रम से अर्थात् ब्रह्मचारियों की दिनचर्या से आपका उतना घनिष्ठ सम्बन्ध न था। अब इन दोनों ही विभागों की जिम्मेवारी आप पर आ गई।

आपने आश्रम में नियम-पालन पर बहुत अधिक बल दिया और अपना लक्ष्य यह बनाया कि महात्मा मुन्शीराम जी के समय से भी अधिक कठोरता से नियम-पालन हो। आपकी यह भी इच्छा थी कि ब्रह्मचारियों से आपका सम्बन्ध वास्तविक अर्थों में आचार्य का...पुत्र और पिता का...हो। आचार्य महात्मा मुन्शीराम भी थे, परन्तु उनके समय में यह शब्द व्यवहार में इतना अधिक नहीं आता था। आपने प्रिन्सिपल शब्द को समाप्त करके आचार्य शब्द का व्यवहार बढ़ाया। ब्रह्मचारियों को आप जो साप्ताहिक धर्मोपदेश करते थे उसमें प्रायः प्रति सप्ताह ही उनके साथ अपने पिता-पुत्र के सम्बन्ध की चर्चा करते थे।

इस दिशा में आपका मनोरथ अभी पूर्ण नहीं हो पाया था कि दो वर्ष पश्चात् आपको कुछ कारणों से गुरुकुल छोड़ देना पड़ा और गुरुकुल की स्वामिनी आर्य प्रति-निधि सभा (पंजाब) ने स्वामी श्रद्धानन्द जी से पुन: गुरुकुल के आचार्य तथा मुख्याधि-ष्ठाता पद सम्भालने की प्रार्थना की । स्वामी जी ने सभा की इस प्रार्थना को स्वीकार भी कर लिया था, परन्तु संन्यासी होकर वह देश के राजनीतिक जीवन से जो सम्बन्ध स्थापित कर चुके थे उसक कारण वह स्थिरता से गुरुकुल का काम नहीं कर सके और दो वर्ष पश्चात् स्वामिनी सभा को पुन: आचार्य का पद आपके ही सुपुर्द करना पड़ा।

इस बार आचार्य का पद सम्भालकर आपने अपने पिछले अनुभवों से बहुत लाभ उठाया और गुरुकुल के महाविद्यालय तथा आश्रम विभागों में जो परिवर्तन आप करना चाहते थे उन पर ब्रह्मचारियों से अमल कराने में जोश, उत्साह, तथा दृढ़ता के अतिरिक्त प्रेम और धैर्य से भी काम लिया । परिणाम यह हुआ कि स्वामिनी सभा के पदाधिकारियों के अतिरिक्त ब्रह्मचारियों में भी आपकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई और वास्तविक अर्थों में गुरुकुल का आचार्य बनने और कहलाने की आपकी जो इच्छा थी वह प्राय: पूर्ण हो गयी ।

कुछ समय पश्चात् आपने महाविद्यालय विभाग की पाठ-विधि में बड़ा महत्व-पूर्ण परिवर्तन कर दिया । गुरुकुल का एक मुख्य उद्देश्य प्राचीन वेद-वेदांग के साहित्य का पठन-पाठन सर्व साधारण में प्रचलित करना और उसके विद्वान् उत्पन्न करना भी था। गुरुकुल की पाठ-विधि में विषयों की बहुलता के कारण यह उद्देश्य जैसा चाहिये वैसा पूर्ण नहीं हो रहा था (आर्यसिद्धान्त, अन्य धर्मों और वेदों का अध्ययन अब तक केवल इतना महत्व प्राप्त कर सका था कि इन विषयों को वैकल्पिक विषयों में सम्मिलित कर दिया गया था। अंग्रेजी और लौकिक संस्कृत साहित्य आदि कुछेक विषय तो ऐसे थे जिनका पढ़ना महाविद्यालय के सब विद्यार्थियों के लिये अनिवार्य था; और पाश्चात्य-दर्शन, रसायन, ऊँची गणित, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि कुछ विषय ऐसे थे जो वैकल्पिक थे—अर्थात् सब अनिवार्य विषयों के साथ इन वैकल्पिक विषयों में से किसी एक को विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार ले सकता था। वेद और आर्यसिद्धान्त की गणना भी इन्हीं विषयों में थी ।

बाद को जब गुरुकुल में आयुर्वेद का अध्यापन आरम्भ किया गया तब आयु-र्वेद को भी इन्ही वैकल्पिक विषयों की सूची में सम्मिलित कर दिया । इस व्यवस्था में बड़ा भारी दोष यह अनुभव किया गया कि जिस विषय का विद्यार्थी को विद्वान बनाना चाहिये वह उस विषय पर आवश्यक ध्यान नहीं दे पाता था । वेद, आर्यसिद्धान्त और आयुर्वेद के विषय में यह बात विशेष रूप से अनुभव की गयी। ये विषय ऐसे थे जो भली भांति अध्ययन के लिये विशेष समय और श्रम की अपेक्षा रखते थे । अत: गुरु-कुल की उच्च शिक्षा को तीन महाविद्यालयों में—वेद, आयुर्वेद और साधारण महा-विद्यालयों में—विभक्त कर दिया गया ।

साधारण महाविद्यालय का पाठयक्रम तो लगभग यथापूर्व रहा। परन्तु वेद और आयुर्वेद महाविद्यालयों की पाठ्यविधि में विद्यार्थियों पर से अन्य विषयों के अध्ययन का भार कुछ कम करके वेद वेदांग और आयुर्वेद की पढ़ाई को बढ़ा दिया गया। वेद-वेदांग की पढ़ाई की तरफ विद्यार्थियों को अधिक संख्या में आकृष्ट करने के लिये इस महाविद्यालय का शुल्क भी माफ कर दिया गया और इस महाविद्यालय के विद्यार्थियों की पाठ विधि में अंग्रेजी साहित्य की पुस्तकें भी ऐसी ही रखी गयीं जिनसे वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिले। गुरुकुल की पाठ-विधि में आचार्य रामदेव जी द्वारा किया हुआ यह परिवर्तन गुरुकुल के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगा।

गुरुकुल के संचालकों ने जान-बूझकर उसका सम्बन्ध देश की किसी सरकारी यूनिवर्सिटी से नहीं किया। सरकारी अधिकारियों की तरफ से दो-एक बार ऐसा इशारा किया जाने पर भी वे इस प्रलोभन में नहीं फंसे। इस कारण वे अपना लक्ष्य और आदर्श स्वतन्त्रता-पूर्वक निर्धारित करने में तो अवश्य आजाद रहे, परन्तु उनकी आर्थिक कठिनाइयां बहुत बढ़ गयीं। उनको अपनी संस्था चलाने के लिये एकमात्र जनता के उदार दान पर ही आश्रित रहना पड़ा। इस कठिनाई के कारण कम से कम पठन-पाठन के क्रम में कोई विघ्न न हो, इस उद्देश्य से महात्मा मुन्शीराम जी ने यह योजना बनायी थी कि गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में प्रत्येक विषय के अध्यापन के लिये एक स्थिर निधि कायम कर दी जाय और उसका खर्च उस निधि के ब्याज से चलता रहे। एक-एक विषय की स्थिर-निधि 30-30 हजार रुपये की रखी गयी थी।

इस योजना की पूर्ति के लिये आन्दोलन तो महात्मा मुन्शीराम जी के सन्यास लेने से पहले ही आरम्भ हो गया था, परन्तु इसकी पूर्ति का श्रेय आचार्य रामदेवजी को ही प्राप्त हुआ। आपने निरन्तर कई वर्ष तक प्रयत्न करके गुरुकुल महाविद्यालय में जितने विषय पढ़ाये जाते थे उन सबके उपाध्यायों की गद्दी को, उनके लिये 30-30 हजार रुपये की स्थिर-निधि एकत्र करके, स्थिर कर दिया।

गुरुकुल के लिये धन एकत्र करने का काम, आप करते तो तब भी रहते थे जब आप केवल आचार्य थे, परन्तु जब पं. विश्वम्भरनाथ जी ने गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता का कार्य छोड़ दिया, तब आचार्य और मुख्याधिष्ठाता दोनों ही पदों का उत्तरदायित्व आपके सिर आ पड़ा और तब धन एकत्र करने में आपकी जो कुशलता और तत्परता प्रकट हुई वह सम्भवत: पं० मदनमोहन मालवीय और म० गांधी के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति में मिलनी दुर्लभ है। ये दोनों व्यक्ति तो इस कार्य में अपनी सामाजिक स्थिति तथा देश व्यापक ख्याति का भी लाभ उठा सकते हैं, परन्तु आचार्य रामदेव जी ने इस प्रकार की कोई सहूलियत न होते हुए भी, गुरुकुल कांगड़ी और कन्या गुरुकुल देहरादून के लिये धन एकत्र करने में जो असाधारण सफलता प्राप्त की वह आश्चर्यजनक है।

पं० विश्वम्भरनाथ जी के मुख्याधिष्ठाता का पद छोड़कर जाने से कुछ ही समय पश्चात्, गुरुकुल कांगड़ी गंगा-पार की भूमि में से उठकर ज्वालापुर और हरिद्वार के बीच गंगा-नहर के किनारे की भूमि पर आ गया था। गुरुकुल की सभी इमारतें नयी बन रही थीं। महाविद्यालय के उपाध्यायों की गद्दियां स्थिर करने की योजना भी अभी अपूर्ण ही पड़ी थी। कन्या गुरुकुल का कार्य प्रारम्भ हो चुका था। उसके लिये धन एकत्र करने में भी आपको बहुत बड़ा भाग लेना पड़ता था। गुरुकुल की आचार्यता और अध्यापन के काम के सिवा मुख्याधिष्ठाता की हैसियत से आपको प्रबन्ध का भी निरीक्षण करना पड़ता था। इसके साथ साथ, आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सव आदि पर व्याख्यानों के लिये जाना और 'वैदिक-मैगजीन' पत्रिका का सम्पादक तो थे ही। इतने सब कामों को पूरा करते हुए भी, मन एकत्र करने में आपकी लगन और सफलता का ही परिणाम था कि गुरुकुल कांगड़ी और कन्या गुरुकुल नयी भूमियों में कायम होकर पनप सके।

कन्या-गुरुकुल

यद्यपि आचार्य रामदेव जी के जीवन का सर्वोत्तम और सर्वाधिक भाग गुरुकुल कांगड़ी के निर्माण और सेवा में व्यतीत हुआ, परन्तु उनके जीवन का सबसे मुख्य काम देहरादून का कन्या गुरुकुल है। कन्या गुरुकुल का बीजारोपण उन द्वारा न होने पर भी, उसको बाल्यावस्था से पाल-पोस कर उसे उसकी वर्तमान अवस्था तक पहुँचाने में मुख्य हाथ आपका ही है। शरीर असमर्थ हो जाने पर भी आप अन्त तक कन्या-गुरुकुल के लिये काम करते रहे। मृत्यु-शय्या पर भी आपको यदि कोई चिन्ता थी तो कन्या गुरुकुल की। संक्षेप में, कन्या गुरुकुल आपके जीवन का सबसे प्रमुख काम है।

गृहस्थ जीवन की अगली मंजिल में पहुँचने पर अर्थात् पिता बनने पर, परदा-निवारण के सिवा आपने स्त्री-शिक्षा पर भी अमल करना आरम्भ किया। आपकी अपनी ही कई कन्यायें थीं। कुछ कन्यायें अपने अपने मित्रों की एकत्र कीं—आपकी मित्र मण्डली बहुत बड़ी थी—और अपने घर में ही एक छोटा-सा 'कन्या गुरुकुल' खोल दिया। यह सन् 1917 से भी पहले की बात है जबकि कन्या गुरुकुल की स्थापना के लिये प्रारम्भिक एक लाख की धन राशि देने की प्रतिज्ञा करने वाले सेठ रग्घूमल को दानवीर होने की ख्याति तक प्राप्त नहीं हुई थी। आचार्य रामदेव जी के इस प्राइवेट 'कन्या-गुरुकुल' में, कन्याओं का पठन-पाठन, रहन-सहन लगभग गुरुकुल के ही नियमों के अनुसार होता था। देहरादून के कन्या-गुरुकुल की पूर्व आचार्या श्रीमती विद्यावती सेठ भी उस प्राइवेट 'कन्या-गुरुकुल' की कन्याओं के अध्यापन में भाग लिया करती थीं। स्त्री-शिक्षा के प्रति आपका जो स्वभाविक प्रेम था, वह इस प्रकार आपकी निजी आवश्यकता द्वारा भी, कन्या-गुरुकुल खुलने से बहुत पहले ही जागृत और प्रस्फुटित हो चुका था।

महात्मा मुन्शीराम जी के संन्यास लेने से लगभग एक वर्ष पहले संभवतः सन् 1916-17 में — सेठ रग्घूमल जी ने गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिक उत्सव पर यह घोषणा करवायी की मैं कन्या-गुरुकुल खोलने के लिये एक लाख रुपया दान करना चाहता हूँ। इस घोषणा पर अमल होने से पहले ही महात्मा मुन्शीराम जी संन्यास लेकर गुरुकुल कांगड़ी के कार्य भार से मुक्त हो गये। कुछ बरस इसी विचार में बीत गये कि कन्या गुरुकुल आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के स्वामित्व में खोला जाय या आर्य सार्वदेशिक सभा के, और यह खोला कहां जाय। अन्त को सन् 923 में दिल्ली में एक कोठी किराये पर लेकर, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के स्वामित्व में, कन्या-गुरुकुल का आरम्भ कर दिया गया और आरम्भ से ही उसके संचालन का मुख्य भार आचार्य रामदेव जी पर पड़ा। इस गुरुकुल की आचार्या के पद पर श्रीमती विद्यावती जी सेठ को भी आप ने ही प्रतिष्ठापित करवाया था। दो तीन वर्ष दिल्ली में रहने के पश्चात् (कन्या गुरुकुल) देहरादून की अपनी भूमि में चला गया। कन्या-गुरुकुल के लिये देहरादून का चुनाव भी मुख्यतया आपका ही किया हुआ था।

देहरादून में कन्या-गुरुकुल के चले जाने से अन्य अनेक लाभों के अतिरिक्त एक बड़ा लाभ यह हुआ कि गुरुकुल कांगड़ी में रहते हुए भी आचार्य रामदेव जी उसके संचालन में सहायता कर सकते थे। कन्या-गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता का पद लगभग आरम्भ से ही आप ही सुशोभित करते रहे। कन्या-गुरुकुल के लिये धन-संग्रह का काम तो मुख्यतया सदा ही आपके कन्धों पर रहा।

सन् 1925 में आप धन-संग्रह के लिये अफ्रीका गये और वहां से लगभग 1 लाख रुपया गुरुकुल कांगड़ी के लिये एकत्र करके लाये और वहां से लौटने के पश्चात् आपने गुरुकुल कांगड़ी के प्रबन्ध में प्रायः भाग नहीं लिया और अपना सब समय कन्या-गुरुकुल को ही अर्पण कर दिया। आपने अपना निवास-स्थान भी गुरुकुल कांगड़ी से बदल कर कन्या-गुरुकुल देहरादून को बना लिया। वहाँ रह कर आप धन-संग्रह आदि के प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों को तो करते ही रहे, वहां की आंतरिक व्यवस्था में भी भाग लेते रहे।

आप का निरन्तर यह प्रयत्न रहता था कि विद्वान अथवा अन्य किसी कारण से प्रतिष्ठित स्त्रियों और पुरुषों को कन्या-गुरुकुल ले जावें और न केवल उनको गुरुकुल दिखा कर उनको पक्षपाती बनावें, बल्कि उनके व्याख्यान आदि से ब्रह्मचारियों को भी लाभ पहुँचावें, गुरुकुल कांगड़ी में रहते हुए आप यह कार्य उस संस्था के लिये भी करते रहते थे।

देहान्त से तीन वर्ष पहले उनका शरीर अर्धाङ्ग रोग के कारण कोई भी कार्य करने में — विशेषतः भ्रमणादि में असमर्थ हो गया था, तो भी कन्या-गुरुकुल के लिये प्रायः प्रतिवर्ष दौरों पर जाते ही रहे। जो काम वह व्यक्तिशः स्वयं नहीं कर सकते थे उसके लिये अपनी पत्नी को अपना प्रतिनिधि बना कर भेज कर करा लेते थे। उनका शरीर अशक्त और असमर्थ हो जाने पर भी कन्या-गुरुकुल उनके द्वारा होने वाले

लाभों से सर्वथा वंचित नहीं हुआ था। कन्या गुरुकुल के लिए उनकी लगन और धुन का ही यह परिणाम था।

वक्ता, लेखक और सम्पादक

कार्य के केन्द्र की दृष्टि से यद्यपि आचार्य रामदेव का जीवन प्रायः गुरुकुल कांगड़ी और कन्या-गुरुकुल देहरादून में ही व्यतीत हुआ परन्तु वस्तुतः उनका कार्य क्षेत्र सारा ही आर्य समाज था। उक्त दोनों संस्थाओं की सेवा भी वह इसी नाते करते थे कि ये दोनों आर्यसमाज की प्रमुख संस्थायें हैं और इन द्वारा आर्यसमाज का बहुत बड़ा कार्य होता है। इन संस्थाओं से उनका सम्बन्ध नौकरी का नहीं, एक 'मिशनरी का था। वह शिक्षा-शास्त्री, वक्ता, लेखक, सम्पादक आदि पीछे, और आर्य समाज के 'मिशनरी' पहले थे। आर्यसमाज के मिशन को पूर्ण करने के लिए ही उन्होंने लेखन, वक्तृत्व, अध्यापन आदि कार्यों को अपनाया था। यदि गुरुकुल कांगड़ी और कन्या-गुरुकुल की स्थापना आर्य-वैदिक संस्कृति के पुनरुज्जीवन के उद्देश्य से न की गई होती तो निश्चय है कि वह इन संस्थाओं से अपना नाता नहीं जोड़ते, या जोड़कर भी तोड़ देते।

गुरुकुल कांगड़ी और कन्या-गुरुकुल में अध्यापन, प्रबन्ध, धन-संग्रह आदि का काम करते हुए भी आचार्य रामदेव जी आर्यसमाजों के उत्सवों और वैदिक-धर्म प्रचार के अन्य कामों में निरन्तर भाग लेते रहते थे। लाहौर की वच्छोवाली आर्यसमाज आदि बड़ी समाजों के उत्सवों पर तो व्याख्यान देने जाते ही थे, अनेक अप्रसिद्ध और छोटी आर्यसमाजों में भी जाने में वह संकोच नहीं करते थे।

उनके व्याख्यानों को सुनने के लिये आर्य जनता उनकी उत्तम वक्तृत्व शक्ति के कारण तो उत्सुक रहती ही थी, साथ ही वह प्रायः अपने व्याख्या का विषय भी सर्वथा समयानुकूल चुनते थे। पीछे जिक्र आ चुका है कि किस प्रकार सन् 1909 में जब 'सत्यार्थ-प्रकाश जब्त हो जाने की अफवाहें उड़ रही थीं तब उन्होंने 'सत्यार्थ-प्रकाश की रक्षा पर ही व्याख्यान दिया था। सन् 1905 में जब डी०ए०वी० कालिज और गुरुकुल कांगड़ी को लेकर 'शिक्षा-प्रणाली कैसी हो' इस विषय पर आर्यसामाजिक क्षेत्रों में बहुत विवाद चल रहा था तब वच्छोवाली आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर आपने अपने व्याख्यान का विषय ही, ला० लाजपतराय की "हमारी तालीम की किस्ती मंवर में" नामक पुस्तिका का जवाब रखा था।

आपके व्याख्यानों की एक और विशेषता यह होती थी कि गम्भीर धार्मिक विषयों का प्रतिपादन करते हुए भी आप अपना व्याख्यान इतना गम्भीर और नीरस कभी नहीं होने देते थे कि साधारण श्रोता उसे सुनते सुनते ऊब जायें। व्याख्यान में मनोरंजक उदाहरणों, व्याख्यानों, और आप-बीती घटनाओं की भरमार रहती थी। बीच-बीच में हंसी की बातें भी अवश्य सुनाते थे। हंसने-हंसाने का आप का स्वभाव ही था।

और आप अपने इन व्याख्यानों में भी श्रोताओं को आर्य-वैदिक सभ्यता का ही सन्देश सुनाते थे।

व्याख्यान देने और सभा सोसायटियों में भाग लेने का आपको बचपन से ही शौक था। जिन दिनों आप डी.ए.वी. कलिज लाहौर में पढ़ते थे उन दिनों जिस किसी सभा की आपको सूचना मिलती; चाहे वह आर्यसमाज की हो, चाहे देव-समाज की, सिखों की, ईसाइयों की या राजनीतिक हो; आप उसमें अवश्य सम्मिलित होते। आपका मनोरंजन ही सभाओं में जाने और यत्न करके उनमें व्याख्यान देने का अवसर प्राप्त करने से होता था। पढ़ना-लिखना आरम्भ करने से पहले ही आप प्रभावशाली वक्ता बनने का संकल्प कर चुके थे। गुरुकुल कांगड़ी को अपना जीवन दान करने से पहले आप लाहौर और जालन्धर में बहुधा कहीं सड़क के किनारे खड़ा होकर व्याख्यान देना आरम्भ कर देते और बहुत-से श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित कर वहीं एक छोटी-सी सभा बना देते। जब कभी आपको किसी दूसरे नगर में जाना पड़ता तब आप बहुधा स्वयं वहाँ के आर्य-समाजियों से कहकर अपने व्याख्यान का प्रबन्ध करवा लिया करते थे। आपकी आयु जब 7-8 वर्ष की थी तभी पं. गुरुदत्त जी ने आपका ऐसा स्वभाव देखकर भविष्य-वाणी की थी कि यह बालक बड़ा वक्ता बनेगा और आर्यसमाज का बड़ा काम करेगा।

आपके साहित्यिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक लेखों के विषय में कुछ चर्चा पहले हो चुकी है। परन्तु आर्यसमाज के सामयिक आन्दोलनों पर तो आप बहुधा ही कुछ न कुछ लिखते रहते थे। जहां कहीं आप आर्यसमाज या वैदिक-संस्कृति के विरुद्ध कुछ लिखा हुआ पढ़ते या सुनते, उसका उत्तर पत्र उसी पत्र या पत्रिका में देने का यत्न करते। एक बार ब्रिटेन से प्रकाशित होने वाले किसी विश्वकोष में आपने प्राचीन वैदिक संस्कृति के विषय में कुछ भ्रान्त विचार छपे हुए पढ़े। आपने तुरन्त उक्त विश्वकोष के प्रकाशकों से पत्र-व्यवहार किया और उनको निश्चय करा दिया कि उन द्वारा प्रकाशित बातें गलत हैं। उन्होंने इस पर खेद प्रकाशित किया और अपने कोष के अगले संस्करण के लिए वह विषय आप से ही लिखवाया।

गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापन, प्रबन्ध और धन-संग्रह के कार्य करते हुए भी आपका लेखन-क्रम जारी ही रहता था। निरन्तर कुछ न कुछ पढ़ते रहने की तो आपको आदत थी ही। यह भी आपके अभ्यास में शामिल था कि पढ़ते-पढ़ते जो बात काम की मिल जाती उसे नोट कर लेते। यह आदत आपने आर्यसमाज के प्रसिद्ध प्रचारक (शहीद अकबर) पं. लेखरामजी से सीखी थी। इस प्रकार किए हुए नोटों का आपके पास बहुत बड़ा संग्रह था और आप अपने व्याख्यानों में भी उक्त नोटों का बहुधा उपयोग किया करते थे।

सम्पादन-कला के साथ भी आपका विद्यार्थी-जीवन से ही सम्बन्ध था। डी०ए०वी०कालिज के पत्र 'आर्य-मैसेन्जर' और आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब के मुखपत्र 'आर्य-पत्रिका' के आप द्वारा सम्पादन का यथा-प्रसंग जिक्र आ चुका है। जालन्धर चले जाने

पर आप कई वर्ष तक महात्मा मुंशीराम जी के 'सद्धर्म प्रचारक' के सम्पादन में और सन् 1904 में लाहौर से 'प्रकाश' प्रकाशित होने पर कुछ समय तक उसके सम्पादन में महाशय कृष्ण जी को भी योग देते रहे थे अंग्रेजी प्रसिद्ध मासिक पत्रिका "वैदिक-मैगजीन" के तो आदि के अन्त तक आप ही सम्पादक रहे। इस पत्रिका ने दूर-दूर तक अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। अंग्रेजी भाषा के अनेक प्रसिद्ध पत्र इसके लेखों को उद्धृत करके अपना कलेवर सुशोभित करते थे। अनेक प्रतिष्ठित भारतीय और यूरोपीयन सज्जन इसी पत्रिका को पढ़कर वैदिक-संस्कृति की तरफ आकृष्ट हुए थे और इसी द्वारा आचार्य रामदेव जी का परिचय पाकर उन्होंने उनसे पत्र व्यवहार रखने की आवश्यकता अनुभव की थी।

विशाल कार्य क्षेत्र में

गुरुकुल कांगड़ी की आचार्यता और मुख्याधिष्ठातृत्व की उत्तरदायिता से मुक्त होने के पश्चात् आर्यसमाज के प्रचार और संगठन के कार्य में आचार्य रामदेव जी स्वतन्त्रता पूर्वक विशेष समय दे सके। पहले लिखा जा चुका है कि शुद्ध राष्ट्रीय विचारों से आपकी पूर्ण सहानुभूति थी। सन् 1920 में जब महात्मा गांधी ने स्वदेशी और खादी का आन्दोलन आरम्भ ही किया था तब आप ने गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों को प्रेरणा की थी कि वे भी सदा शुद्ध खादी पहनने का ही व्रत लें। गुरुकुल में ब्रह्मचारियों को बाद-विवाद का अभ्यास करवाने के लिये आपने एक नकली पार्लियामेण्ट और नकली कांग्रेस की प्रथा डाली थी जिनमें विवाद के विषय प्रायः राजनीतिक हुआ करते थे।

सन् 1932-33 के सत्याग्रह आन्दोलन में आपको अपने उक्त विचारानुसार देश के राष्ट्रीय जीवन में प्रत्यक्ष भाग लेने का भी अवसर प्राप्त हुआ। आपको इस सत्याग्रह में पंजाब कांग्रेस के डिक्टेटर की हैसियत से एक वर्ष की जेल हुई थी। आपने अदालत में अभियुक्त की हैसियत से तब जो वक्तव्य दिया था वह राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और उसके साथ वैदिक आदर्शों के समन्वय का एक उत्कृष्ट निबंध था। सजा पाने के बाद आप पहले रावलपिंडी जेल में रखे गये और बाद को वहां स्वास्थ्य खराब रहने पर आपकी तबदीली मुलतान जेल में कर दी गयी थी। जेल में आपके साथ पहले 'बी' क्लास कैदियों का व्यवहार किया जाता था, परन्तु पंजाब सरकार के अधिकारियों को उनकी भूल बतलाये जाने पर उन्होंने आपको 'ए' क्लास में कर दिया था, इस जेल-वास का आपके स्वास्थ्य पर इतना खराब असर हुआ कि इसके पश्चात् आपका शरीर प्रायः निरन्तर ही रोगी रहने लगा था।

सन् 1933 में अजमेर में दयानन्द-निर्वाण-अर्ध-शताब्दी का उत्सव मनाया गया। उसके मुख्य सम्मेलन आर्य-सम्मेलन के आप प्रधान बनाये गये। (सन् 1925 में मथुरा की दयानन्द-जन्म-शताब्दी के उत्सव में आप सम्मिलित नहीं हो सके थे। आप तब गुरुकुल के लिये धन-संग्रहार्थ अफ्रीका गये हुए थे।) आर्य सम्मेलन में जो प्रस्ताव पास हुए उनमें से दो विशेष महत्वपूर्ण थे और वे दोनों आपकी ही प्रेरणा से

पास किये गये थे। एक यह कि आर्य-समाज की किसी संस्था का कोई पद एक ही व्यक्ति के अधिकार में निरन्तर तीन वर्ष से अधिक समय तक न रहे। यह प्रस्ताव इस कारण पास किया गया था कि उन दिनों अनेक आर्य-समाजें, कई-कई प्रमुख सदस्यों की प्रधान, मन्त्री आदि पदों पर आरूढ़ होने की इच्छा के कारण, दल-बन्दी और आपसी लडाई-झगड़ों का गढ़ बन रही थीं। जिन आर्य-समाजों ने इस प्रस्ताव पर आचरण किया उनको आपसी झगड़े समाप्त करने में सफलता भी हुई। दूसरे महत्त्व-पूर्ण प्रस्ताव द्वारा आर्य-समाज के उपनियमों में, सदाचार की व्याख्या करके, यह नियम शामिल कर दिया गया कि आर्य-समाज के प्रत्येक सदस्य का अनिवार्य रूप से सदाचारी होना आवश्यक है।

इसी दयानन्द-निर्वाण-अर्धशताब्दी के उत्सव पर स्वामी दयानन्द जी द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभा के नियमों में आपने यह परिवर्तन करवाया कि जो व्यक्ति वेदों को ईश्वरीय ज्ञान न मानता हो वह परोपकारिणी सभा का सदस्य नहीं हो सकेगा। इस परिवर्तन से प्रगट होता है कि आपका सिद्धान्त-प्रेम कितना गहरा और दृढ़ था।

सन् 1934 में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब आगामी वर्ष अपनी गोल्डन जुबिली (अर्ध शताब्दी उत्सव) मनाने का निश्चय कर चुकी थी। सन् 1935 में आप आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान चुने गए। आपको इस पद पर प्रतिष्ठित होकर असाधारण काम काम करना पड़ा और अर्ध शताब्दी उत्सव को सफल बनाने का सारा भार आपके ही कन्धों पर आ पड़ा। आपका यह भार इस कारण और भी बढ़ गया कि कुछ कारणों से आपको पंजाब प्रतिनिधि सभा के कई प्रमुख पुरुषों का सहयोग वैसा नहीं मिल सका जैसा मिलना चाहिये था। तो भी आपने दिन-रात लगकर इस उत्सव को जैसी सफलता से मनवा कर दिखलाया वैसी आपके मित्रों को भी आशा नहीं थी। उत्सव के दिनों में तो आपको सोने और भोजन करने तक की सुध नहीं रहती थी।

परन्तु इतना असाधारण परिश्रम करने का परिणाम आपके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा पड़ा। आपका पहले ही रोगी शरीर पक्षाघात के रोग से ग्रसित हो गया और यही रोग आपके देहान्त का कारण बना।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सन् 1936 के अधिवेशन के समय आप इतने रोगी थे कि प्रधान का कार्य स्वयं भाषण देकर या बोलकर नहीं कर सकते थे। अन्य सहकारियों की सहायता से ही आपने अधिवेशन की कार्यवाही भुगतायी। परन्तु इस वर्ष भी आप ही प्रतिनिधि सभा के प्रधान चुने गये। इसका आपके निर्बल और रोगी शरीर पर और भी बुरा परिणाम हुआ। आप इस बात को समझते-बूझते भी थे, परन्तु सार्वजनिक कर्तव्य सामने होने पर निजी आवश्यकताओं को महत्त्व देना आपने कभी सीखा ही न था। स्वास्थ्य खराब और शरीर असमर्थ होने पर भी आपने उक्त पद स्वीकार कर लिया।

इसी वर्ष आपको लण्डन की 'कांग्रेस ऑफ दि लिविंग रिलिजन्स' (सब जीवित धर्मों का सम्मेलन) में सम्मिलित होने का निमंत्रण मिला। आपने वहां जाने के लिये 'पासपोर्ट' भी बनवा लिया था। परन्तु स्वास्थ्य खराब होने के कारण आप वहां नहीं जा सके। आपकी बहुत इच्छा थी कि एक बार यूरोप और अमरीका जाकर वहाँ भी वैदिक धर्म का डंका बजायें, परन्तु आपका यह मनोरथ, स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जाने के कारण, असिद्ध ही रह गया।

निजी जीवन और व्यक्तित्त्व

सार्वजनिक कार्य अथवा लोक-सेवा के कारण ख्याति प्राप्त करने वाले अधिकतर लोगों का निजी जीवन (प्राइवेट लाइफ) उनके सार्वजनिक जीवन से कुछ न कुछ तो पृथक ही है। परन्तु आचार्य रामदेव जी इस नियम के अपवाद थे। उनके निजी जीवन की सार्वजनिक जीवन से पृथक् कोई सत्ता प्रायः नहीं ही थी। उन्होंने अपने गृहस्थ जीवन तक की किसी बात को 'प्राइवेट' नहीं रखा। बल्कि वह अपने गृहस्थ की आवश्यकताओं को बहुधा सार्वजनिक आवश्यकताओं पर बलिदान करते रहे। सम्भवतः इसी कारण आपका गृहस्थ जीवन ऐसा बीता कि उसके अधिकांश की गणना सुखी जीवन में नहीं की जा सकती।

आप अपने आदर्शों और सिद्धान्तों के सामने अपनी पत्नी या पुत्रों की इच्छा की प्रायः बिल्कुल परवाह नहीं करते थे। लाहौर में ट्रेनिंग कालिज की शिक्षा समाप्त कर लेने पर, रियासत जींद में स्कूल इन्स्पैक्टर बनकर जाने की सब तैयारी करके भी, आपने किस प्रकार एक ही रात में अपना विचार बदल दिया और गुरुकुल कांगड़ी को अपना जीवन दान करके फकीरी का मार्ग स्वीकार कर लिया, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। उस समय उनकी पत्नी के मन पर क्या बीती होगी, इसकी कल्पना कोई भी गृहस्थी सुगमता से कर सकता है।

जब आपके प्रथम पुत्र पं० यशःपाल सिद्धान्तालंकार का विवाह हुआ तब आप गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य व मुख्याधिष्ठाता थे और आपका छोटा पुत्र सत्यभूषण गुरुकुल में पढ़ता था। वह भी इस विवाह में सम्मिलित होना चाहता था। स्वभावतः उसकी माता की इच्छा भी यह थी कि मेरी प्रथम सन्तान के विवाह में अन्य सभी सन्तानें सम्मिलित हों। उसने अपनी यह इच्छा अपने पति पर प्रकट भी कर दी। आप चाहते तो इस इच्छा को सुगमता से पूरा कर सकते थे। आचार्य और मुख्याधिष्ठाता की इच्छा का विरोध कौन करता! परन्तु न केवल आपने अपने परिवार की इस इच्छा का विरोध किया, ब्र० सत्यभूषण के अधिष्ठाता को विशेष रूप से हिदायत कर दी कि इसे आश्रम से बाहर न जाने दिया जाय। आपने गुरुकुल में कार्य करते हुए और स्वयं सपरिवार वहीं रहते हुए भी अपने परिवार के किसी व्यक्ति के लिये कभी कोई खास रियायत नहीं चाही। अपनी सन्तान तथा अन्य परिवार के प्रति स्वाभाविक प्रेम और मोह की अपेक्षा, आपको कठोर कर्तव्य का ध्यान ही सदा अधिक रहा।

धन की आपने कभी इच्छा नहीं की। जीवन में अनेक बार धन कमाने का अवसर आने पर भी आप उसके प्रलोभन में कभी नहीं पड़े। सन् 1919-20 में जब स्वामी श्रद्धानन्द जी दुबारा गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य और मुख्याधिष्ठाता बने और आचार्य रामदेव जी गुरुकुल से पृथक हो गये, तब कोल्हापुर कालिज के अधिकारियों ने 650) रु० मासिक वेतन लेकर आपसे वहां का प्रिन्सिपल बन जाने की तार द्वारा प्रार्थना की, परन्तु आपने निस्पृह भाव से उत्तर दिया कि मैं अपना जीवन गुरुकुल को दान कर चुका हूँ, मैं उस संस्था को छोड़कर धन के लिये अन्य किसी संस्था की नौकरी नहीं करता। गुरुकुल कांगड़ी के आजीवन सदस्य की हैसियत में आपको केवल 76) रु० मासिक मिलते थे। उसके सिवा आपकी आमदनी का न कोई और साधन था और न आपने कभी उसके लिये प्रयत्न किया।

गुरुकुल कांगड़ी के प्रमुख अधिकारियों में स्वामी श्रद्धानन्द जी के सिवा एकमात्र आप ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होने अपने दोनों पुत्रों के सांसारिक भविष्य की चिन्ता न करके उन्हें गुरुकुल में ही पढ़ाया। कन्या गुरुकुल खुल जाने के पश्चात् आपकी सब कन्यायें भी वहीं पढ़ीं। आपने अपने प्रथम पुत्र पं० यशःपाल का विवाह भी जन्म की जात-पात का कुछ विचार न करके किया था। कन्याओं के लिए वर चुनने में भी आपकी दृष्टि धन की अपेक्षा अधिकतर यही रही कि यदि वर आर्यसमाजी हों और आर्यसमाज के क्षेत्र में काम करते हों तो अच्छा है।

आमदनी अधिक न होते हुए भी आप पुस्तकों पर बहुत व्यय करते थे। पढ़ने का आपको व्यसन-सा था। रेल में यात्रा करते हुए आप अखबार खरीदने लगते थे तो एक साथ कई-कई खरीद डालते थे और यदि उनके आवश्यक अंश पढ़ जाने के बाद भी समय बच जाय तो बहुधा उन्ही अखबारों को आदि से अन्त तक —विज्ञापनों समेत — पूरा पढ़ डालते थे। कुछ न कुछ पढ़ते रहने का आपका स्वभाव रोग-शैया पर भी नहीं छूटा था। एक बार आपको और पढ़ने को नहीं मिला तो अपने पास पड़े हुए एक रेलवे टाइम-टेबल को ही पूरा पढ़ डाला।

वस्त्रों और शरीर के श्रृंगार की तरफ आपकी पूर्ण उपेक्षा रहती थी। वस्त्र बहुधा विक्षिप्तों के से और बाल बिखरे रहते थे। ऐसे भी अवसर हुए हैं जब आपका वेश भद्दा होने के कारण ही आपको अनजान व्यक्तियों से अपमानित होना पड़ा है। ऐसी घटनायें होने पर भी आप वेश की तरफ से सदैव उपेक्षा रखते थे।

साधारण जीवन में लापरवाही इतनी अधिक थी कि वह प्रायः हरेक हरकत से टपकती थी। कहीं जाने के लिए रेल का टिकट खरीदा है। टिकट-बाबू ने टिकट का मूल्य काटकर बाकी जो खेरीज दी वह लेकर आपने अपनी जान में तो कोट की जेब में डाल ली, परन्तु वस्तुतः वह जेब में न जाकर नीचे गिर गयी। आपको पता ही न लगा और आप आगे चल दिये। ऐसा आपके साथ एकाधिक बार हुआ।

दूसरों को आप जो उपदेश करते उसे स्वयं कर दिखाने की आपको धुन थी। महात्मा मुन्शीराम जी के संन्यास लेने पर आप गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य बने तब

आपने निश्चय किया कि प्रातःकाल चार बजे उठने के और संध्या हवन के नियम का ब्रह्मचारियों से दृढ़तापूर्वक पालन कराया जाय। इसके लिए आप तेज सर्दियों के मौसम में भी प्रातःकाल चार बजे से भी पहले, अँधेरे ही उठकर घास पर पड़ी ओस पर नंगे पाँव चलकर, अपने घर से आश्रम पहुँचते थे।

मित्र बनाने का आपको शौक था। किसी भी अजनबी व्यक्ति के मित्र झट बन जाते थे, विशेषतः ऐसे व्यक्ति के जिससे आपके विचार मिल जाएं अथवा बिल्कुल न मिलें। सन् 1922 में रंगून के डा० प्राणजीवन महता से आपका परिचय इसी प्रकार हुआ था। आप रंगून गुरुकुल के लिये धन संग्रह करने गये थे। एक मित्र ने आपकी भेंट डा० प्राणजीवन से करा दी। वह भी भारत की प्राचीन सभ्यता के भक्त थे, आप भी! प्रथम परिचय में ही दोनों में घण्टों तक बातें होती रहीं और एक ही मुलाकात का यह परिणाम हुआ कि डा० प्राणजीवन महता गुरुकुल कांगड़ी में इतिहास में उपाध्याय की गद्दी स्थिर करने के लिए एक साथ 30 हजार रुपया देने को राजी हो गये।

भिन्न विचार वाले सज्जनों से आचार्य रामदेव जी को बातचीत करने में आनन्द इस कारण आता था कि इससे उनको एक नया व्यक्ति वैदिक धर्म का अनुयायी बनाने का अवसर मिलता था।

आपकी मित्र-मण्डली बहुत बड़ी होने के कारण आपको अपने मित्र-सम्बन्धी अनुभव भी इतने अधिक याद थे कि अपने प्रत्येक व्याख्यान में मित्रों के दो-चार मनोरन्जक अनुभव अवश्य सुनाते थे। हँसने-हँसाने का आपको शौक था। छोटी-छोटी बातों को भी मजाक में उड़ाने का यत्न करते थे। किसी मित्र के यहाँ निमन्त्रित होकर भोजन करने गये। जब समाप्त होने पर आया तब वह मित्र रोटी लेकर आये और अनुरोध करने लगे कि 'यह फुलका गरम है, एक तो ले ही लीजिये!' आपने उत्तर दिया, "आप कहते हैं तो ले लूंगा, खाऊँगा नहीं!"

बहस में और तर्क में आप कभी किसी से हार नहीं मानते थे। बल्कि आपकी हाजिर-जवाबी बहुधा दूसरों को ही निरुत्तर करदेती थी। इसका उपयोग आप धन-संग्रह के समय खूब करते थे। धन-संग्रह के लिये आप सर्वथा अपरिचित और विरोधी व्यक्तियों के पास भी जाने में संकोच नहीं करते थे और उनके साथ तर्क ऐसे निधड़कपन से करते थे कि आपको खाली हाथ बहुत कम लौटना पड़ता था। एक बार आप कराची के एक ऐसे सेठ से चन्दा माँगने गये जो अपनी कृपणता के लिये बदनाम था। उसने चन्दा देने से बचने के लिये अनेक बहाने बनाते हुए यह भी कह दिया कि "आप तो छोटे-छोटे बालकों को चौदह वर्ष तक जंगल में कैदी रखते हैं।" आपने झट जवाब दिया कि "कैदी तो आप हैं, आप धन के कैदी हैं। आपके पास लाखों रुपया है, आप न अच्छा खाते हैं, न अच्छा पहनते हैं। यह धन आपका थोड़े ही है। आप तो केवल पहरेदार हैं।" बहस का परिणाम अभीष्ट ही हुआ। कराची में तब तक जो रकम सबसे बड़ी मिली थी, उस सेठ ने भी वही लिख दी।

निर्वाण

पहले लिख चुके हैं कि सन् 1932-33 की जेल यात्रा के पश्चात् ही आचार्य जी का स्वास्थ्य खराब हो गया था। अपने यौवन-काल में स्वास्थ्य की उन्होंने विशेष परवाह कभी की ही नहीं थी। और अब स्वास्थ्य असाधारण निर्बल हो जाने पर भी वह कन्या-गुरुकुल आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कामों के लिये भ्रमण आदि करते ही रहे। इसका परिणाम होना जो सम्भव था वही हुआ। गत चार वर्ष से आपका रोग पक्षघात में बदल गया था बीच में एक अवस्था ऐसी भी आ गयी थी कि आप बोल तक नहीं सकते थे। इलाज और एहतियात से बीच में अवस्था सुधार गयी थी आशा बंधने लगी थी कि शरीर सम्भल जाएगा परन्तु वह आशा पूरी नहीं हुई। जैसा कि ऐसे रोगों में बहुधा हुआ करता है, अवस्था में उतार-चढ़ाव होता रहा, परन्तु शरीर सर्वथा निरोग एक बार भी नहीं हुआ।

गत तीन वर्ष तो आपको रोग के कारण प्रायः निरन्तर विश्राम में ही बिताने पड़े। कुछ मास आपने कठियावाड़ के स्वास्थ्य-प्रद् स्थान सोनगढ़ (गुरुकुल) में भी रहकर बिताये थे। उससे स्वास्थ्य में कुछ सुधार भी हुआ था, परन्तु वह अस्थायी ही था। यों तो देहरादून, जहां की उनका अन्तिम काल बीता, स्वयं स्वास्थ्य-प्रद स्थान है, परन्तु कन्या-गुरुकुल में रहने के कारण आप स्वाभावतः वहां की समस्याओं से सर्वथा निर्लिप्त होकर नहीं रह सकते थे जो कि आपके रोगी शरीर के लिए डाक्टर अत्यन्त आवश्यक बतलाते थे।

इस लगातार रोग का आपके मन पर भी असाधारण प्रभाव पड़ा था। आपका मन इतना निर्बल और भावुक हो गया था कि तनिक-सी बात पर आप बालकों की भांति रोने लगते थे। कोई व्यक्ति आपके प्रति प्रेम और अनुराग प्रकट करें, आपके जीवन की पुरानी बातें याद दिलावें, आर्यसमाज अथवा गुरुकुल के विषय में कोई चिन्ता, प्रशंसा, सफलता अथवा यशस्विता की बात करे, दोनों गुरुकुलों में से किसी के स्नातक या स्नातिका को कोई असाधारण यश प्राप्त होने का समाचार आवे, सारांश यह कि कोई भी ऐसी बात हो जिसका मन पर तनिक भी असाधारण प्रभाव हो कि आपकी रुलाई आ जाती थी।

डाक्टरों ने मित्रों और परिचितों को आप से मिलने की मुमानियत की हुई थी परन्तु एक तो इस हिदायत पर वह व्यक्ति पूरी तरह अमल कर ही नहीं सकता जिसके मित्र बहुत हों, जिस पर आपका बातचीत करने और बहुत बातचीत करने का स्वभाव रोगी की अवस्था में भी गया नहीं था। बोलने में असमर्थ होते हुए भी आप आस-पास आने जाने और रहने वालों से कुछ न कुछ बातचीत करने का यत्न करते ही थे।

एक और बदपरहेजी जो डाक्टरों की मुमानियत के बावजूद जारी थी वह था कुछ न कुछ पढ़ते रहना। पढ़ने के लिये यह आवश्यक नहीं था कि आपकी रुचि की ही कोई पुस्तक सामने हो। रोग-शैया पर पड़े-पड़े, इश्तिहार से लेकर पुस्तक तक,

जो सामने आ जाता था आप उसे पढ़ डालते थे। इन दो बदपरहेजियों के अतिरिक्त आपका जीवन रोग के दिनों में अत्यन्त संयत हो गया था। किन्तु रोग ही ऐसा था जो असाध्य सिद्ध हुआ।

असाधारण संसारी गृहस्थ की दृष्टि से देखा जाए तो आचार्य रामदेव जी का देहान्त केवल 59 वर्ष की आयु में होने पर भी अपनी आयु पूरी करके ही हुआ। उनकी सातों संतानें—दो पुत्र, पांच पुत्रियाँ—उनके सामने ही, जो शिक्षण वह उन्हें दिलाना चाहते थे उसे समाप्त कर चुकी। थीं। बड़ा पुत्र गृहस्थी होकर संसारी बन चुका था। चार कन्यायें योग्य वरों में विवाही जाकर अपने-अपने गृहस्थ में सुखी थीं। उन्होंने स्वयं अपना जीवन जिस मिशन के लिये दान किया था उसे वह अपनी आंखों फलता-फूलता देखकर उससे 'रिटायर' हो गये थे। धन की उन्होंने अपने जीवन में इच्छा ही नहीं की।

उनकी योग्यता और त्याग की उनके विरोधी भी प्रशंसा करते थे। यश उनका देश के प्रायः सभी शिक्षा-शास्त्रियों में फैल गया था।

रोग के अन्तिम दिनों में उनकी पतिव्रत पत्नी निरन्तर उनके पास रह कर उनकी सेवा करती थीं। जिस प्रकार उन्होंने जीवन भर अपने पति का न कभी साथ छोड़ा और न कभी उनकी किसी इच्छा का विरोध किया, उसी प्रकार उनके अन्तिम क्षण तक, जीवन की कोई भी आशा न रहने पर भी, वह उनके समीप रहकर उनकी सेवा करती रहीं। अन्तिम दिनों में सभी निकट सम्बन्धी पुत्र, पुत्रियाँ, पुत्र-वधु और दमाद आदि, उनके पास ही थे। ता. 7 दिसम्बर 1939 से उनकी अवस्था निराश की दशा में बदलनी आरम्भ हुई। उसी दिन सायंकाल सब मित्रों और निकट को तार दिये गये। अगले दिनों तक अधिकतर मित्र देहरादून पहुँच चुके थे। ता. 8 की रात्रि को निश्चय हो गया कि अब कुछ घण्टों की ही जीवन लीला शेष है। वह तब भली प्रकारबोल नहीं सकते थे। बीज बीच में कहते थे 'मुझे उस पार ले जाओ।' रात बहुत बेचैनी मे गुजरी। अगले दिन ता. 9 दिसम्बर 1939 को प्रातःकाल 5॥ बजे वह महान् आत्मा नश्वर शरीर को छोड़ कर चली गयी।

उसी दिन गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों और अध्यापक देहरादून पहुँच गये। आर्यसमाज से शव का विशाल जलूस निकाला गया। जलूस में पंजाब व प्रमुख और देहरादून के सब आर्यसमाजियों के अतिरिक्त कन्या गुरुकुल की छात्रायें और गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारी तथा अध्यापक भी सम्मिलित थे। जलूस नगर के बाजारों से होता हुआ श्मशान पहुँचा और अन्तिम संस्कार के पश्चात् सम्मिलित ईश्वर प्रार्थना कर सब अपने घरों को वापिस हुए। आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थायें उनके देहान्त के कारण कई दिन बन्द रहीं। और सभी आर्यसमाजों ने शोक-प्रस्ताव पास किये। आर्यप्रतिनिधि सभा पजाब न उनका स्मारक बनान के लिये 2 लाख रुपया एकत्र करने का निश्चय किया है।

एक पंजाबी पथान्वेषी का स्वर्गारोहण

(सेन्ट निहाल सिंह)

चार दशक पूर्व पंजाब में एक मनोवैज्ञानिक बवण्डर उठा। यह एक प्रचण्ड और विदीर्ण प्रोपेगण्डा का परिणाम था। वह मनुष्य जिसने अपने को इसमें जुटा दिया, तब तक आम तौर पर जालन्धर में वाकालत किया करता था। उसके मस्तिष्क में यह समा गया था कि प्रान्त और देश भर में प्रचलित शिक्षा का ढंग नितान्त दोष-पूर्ण है। जिस वातावरण में बच्चे रहते उठते-बैठते और पठन-पाठन करते हैं, वह अस्वस्थ्यप्रद और हानिकर है। उसने उन्हें इस क्षय से बचाने का संकल्प किया। ऐसा होने पर वह उन्हें आर्य (श्रेष्ठ) प्रथाओं के ढंग से शिक्षा देगा।

कई लोगों ने सोचा कि प्रोपेगेण्डिस्ट ला. मुन्शीराम जैसा कि वे तब ख्यात थे—पागल हो गया है—बिल्कुल पागल। अलवत्ता, कुछ ने यह भी समझा कि उसे दिव्य-आलोक के दर्शन हो गए हैं। उनके अन्दर उसने ऐसा विश्वास फूंक दिया कि उन्होंने गुरुकुलीय प्राचीन शिक्षा पद्धति का पुनरुद्धार करने की प्रतिज्ञा की।

इस मनुष्य ने अपने संदेश से जिन्हें अन्तस्तल तक हिला दिया, उनमें एक रामदेव भी थे। वे तब जालन्धर छावनी में एक स्कूल के हैडमास्टर के रूप में कार्य कर रहे थे। इनका जन्म होशियारपुर से कुछ ही दूरी पर एक छोटे से गांव बजवाड़ा में हुआ था। इनका भरण पोषण ऐसे विद्धत्तापूर्ण वातावरण में हुआ और वैदिक संस्कृति के पुनरुत्थान में—विशेष कर गुरुकुलों द्वारा उन्हें वह भाग लेना था, जो उनको अमर बनाने वाला था।

2

19 वीं सदी अपने अवसान काल की ओर बढ़ी जा रही थी जब होशियारपुर में मेरा इस व्यक्ति से परिचय हुआ, जहां कि तब मैं रह रहा था। इनके पिता, संभवतः चचा हों, उन्हें हमारे आवास-स्थान पर लाये। उन दोनों भाइयों को, जैसा कि मुझे याद है, प्राचीन विद्या का ज्ञान दिया गया था। वे विशेष कर उर्दू और फारसी के उच्च पण्डित थे। उनमें से एक (यह भी भूलता हू कौन) पञ्जाब में अमृतसर जिलान्तर्गत मजीठिया गाँव में अध्यापक थे। कितनी निपुणता से इन्होंने अपना कार्य निभाया, उनको यह भली-भांति ज्ञात है जिन्हें उनके पूर्व छात्रों—सरदार अमरावसिंह, जिनकी गणना विश्व के किसी भी भाग पर रहने वाले प्रकाण्ड पण्डितों में हो सकती है और इनके भाई सर सरदार सुन्दर सिंह, पंजाब के माल-मन्त्री और अग्रगण्य सिखनेता—में से किसी एक को भी मिलने का अवसर हुआ है।

ऐसे वातावरण में बढ़ते हुए रामदेव को, बचपन में ही, पण्डित गुरुदत्त के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मिला था ! उस भासमान वह्नि ने इस बालक की कल्पना शक्ति को प्रज्वलित कर दिया वह महान् बनेगा, बालक ने प्रतिज्ञा की ।

रामदेव से कुछ मिनट की मुलाकात में ही मैं जान गया कि वह अपने को कोई कम नहीं समझता ! मुझे भय है, तब मैं भी, इसी मर्ज का मरीज था ।

अलबत्ता, उसकी महत्वाकांक्षा, मुझ से भिन्न थी । रामदेव एक वक्ता बनने के सपने लेता था और मैं एक लेखक बनने के । दुनिया के जुदा-जुदा ध्येयों के साथ हम अपनी किशोरावस्था में ही एक दूसरे के साथ घुलमिल गए थें ।

यह परिचित शीघ्र ही मित्रता में परिपक्व हो जाती परन्तु रामदेव को शीघ्र ही पंजाब विश्व विद्यालय की ऐन्ट्रेन्स परीक्षा में बैठना था, इसलिए वह जल्दी ही लाहौर को प्रस्थान कर गया । दो साल या कुछ अधिक समय बाद, जब मैं भी वहां गया तो उससे मुलाकात अवश्य होती यदि उसने शेखी और उबाल में आकर डी०ए० वी० कालेज न छोड़ा होता ।

मुश्किल यह थी कि संस्था किस प्रकार चलाई जानी चाहिए, इसके बारे में उसके निजी विचार थे यह प्रिंसिपल (लाला हंसराज) के विचारों में मेल न खाते थे और न ही वे एक उपस्नातक से इस विषय पर उपदेश लेना चाहते थे कि संस्था किन मूलभूत सिद्धान्तों पर चलाई गई थी ।

रामदेव के अनुसार उसकी मातृ संस्था प्रचलित शिक्षा संस्थाओं की नकलमात्र थी । यह भी उन्हीं की तरह स्नातक तैयार करती थी परन्तु फर्क यह था कि यह मां बाप की जेब से उतना पैसा नहीं लेती थी जितना कि दूसरी संस्थाएं ।

जिन लोगों के दान से इस संस्था की स्थापना संभव हो सकी थी, उसने तर्क किया, उनका उद्देश्य इस से नितान्त भिन्न था । उसके विचार में उन्होंने इसका निर्माण भारत में वैदिक संस्कृति के पुनः प्रचारार्थ नवयुवकों को उत्साही प्रचारक बनाने के लिये किया था ।

जो कुछ इस नवयुवक ने कहा, उसमें बहुत सार था, परन्तु उसने इसे कर्कश रूप में कहा । बिना यह देखने का कष्ट किए कि मेरी बात के लिए प्रिन्सिपल के पास समय भी है या नहीं, उसकी रुझान है या नहीं । अपनी बात बार बार कह कह कर उसने सहानुभूति खोदी ।

यदि दोनों एक ही अस्थि मज्जा के न बने होते तो इन मामलों को समाहित कर लेते । ऐसी अवस्थाओं में खूनी रिश्ते के नाते उन निकटतम मौसेरे भाइयों को— उम्र में प्रिंसिपल पन्द्रह एक साल बड़े—किसी प्रकार की व्यवस्था रखने से निराश ही होना पड़ा होगा ।

स्वभाव में दोनों में दो ध्रुवों का अन्तर था—प्रिन्सिपल शान्त, सचेत और स्थिरचित्त जबकि रामदेव भावुक और दूसरों को भी इस आन्दोलन के चक्कर में खींचने के उत्सुक थे ।

जिस किसी ने भी दोनों को एक साथ देखा या दोनों को जानता था, अश्चर्यित नहीं हुआ, जब रामदेव ने कहा कि अब हंसराज से बहुत हो ली, अपनी किताबें लीं और रास्ते हुए। हैरत तो यह थी कि यह विच्छेद पूर्वतर क्यों न हुआ।

3

इस विच्छेद के शीघ्र ही बाद इस नवयुवक ने कार्य की तलाश की और अनायास ही पा लिया। जालन्धर स्कूल में अध्यापन कार्य करते हुए भी आपने अध्ययन जारी रखा और 2,3 साल में बी०ए० पास कर ली। इनके कार्य से निरीक्षक, जो नियमित दौरे में इस संस्था का निरीक्षण करने गया था, इतना प्रभावित हुआ कि उसकी सिफारिश पर इन नवयुवकों को ट्रेनिंग कालिज लाहौर में ट्रेनिंग ग्रहण करने के लिए छात्रवृत्ति दी गई।

रामदेव जी इन दिनों की बड़ी रोचक घटनाएँ सुनाया करते थे। कुछ विषयों में—उदाहरण रूप में गणित में, वे बिलकुल, शून्य थे। दूसरे विषयों में, अलबत्ता, वे अध्यापकों से भी अधिक जानते थे। उन्होंने उन्हें कम पढ़ाया परन्तु उनसे सीखा अधिक। वे गणित में उत्तीर्णांक पाने के लिये उत्तरों में गड़बड़ झाला करने में बहुत होशियार थे।

जिन्होंने उन्हें स्कूल मास्टरी करते हुए देखा है, निःसंदेह उन्हें यही प्रतीत होता था कि वे अपने जीवन से प्रायः संतुष्ट हैं। उनके लिये आतमोल्लास के क्षण अवश्य आते और वह भावी जीवन की मनोहारी प्रेरणामयी दिव्यदृष्टियों पर फूले न समाते।

भौतिक वस्तुओं पर हर्षातिरेक होने पर भी इन सबकी तह में कुछ ऐसी शक्तियां कार्य कर रही थीं, जिनसे रामदेव भी कम से कम उस समय अनभिज्ञ प्रतीत होते थे। उदाहरण के लिये एक ऐसा समय आया जब कि सरगर्मियां बहुत जोर पकड़ गई। यह एक परीक्षा के ऊपर हुई जो कि उन्होंने वैदिक पुनरुत्थान में सहायता करने के इच्छुकों की ईमानदारी के लिये बनाई थी।

उन्होंने शर्त लगाई कि प्रत्येक विवाहित मनुष्य को समाज में जिसे उन्होंने (रामदेव जी) स्थापित किया था, अपनी पत्नी के साथ आना चाहिए और पत्नी को बिना पर्दा किए आना चाहिए।

आज से चार दशक पूर्व पंजाब में पर्दा बहुत उग्र रूप में प्रचलित था, और जिस कठोरता से उन्होंने इस नियम को लागू करने का यत्न किया उसने उनके परिवार में भी खलबली मचा दी। अन्ततोगत्वा उन्हें अपनी पत्नी को भी अल्टीमेटम देना पड़ा कि या तो वह अपने रिश्तेदारों में रहे, जहाँ कि वह इस प्रकार का जीवन बिता सकती थी जिसे तब सम्मानप्रद समझा जाता था या फिर उनके साथ सम्मिलित हो और पर्दे को तिलांजलि देकर भयंकर से भयंकर रास्तों से गुजरने के लिये तत्पर रहे।

जैसा कि उसकी आयु छोटी थी, अनुभव में बिल्कुल शून्य थी, उसने अपने पति का ही पक्ष चुना।

ये घटनायें तथा पारिवारिक बाधायें जिनका उन्होंने मुकाबला किया, इस बात का संकेत है कि उनका हृदय किस दिशा में कार्य कर रहा था। इस दुनिया की चीजों ने उनकी कल्पना शक्ति को प्रभावित किया हो, पर आत्मा को नहीं। इसलिये जब आह्वान हुआ तो वे अपने पद और उज्ज्वल भविष्य को तत्काल और पूर्णतया छोड़ सके। उनके सौभाग्य से उनकी बाल-पत्नी ने जो रस्म-रिवाजों को तोड़कर जालंधर कन्या पाठशाला में दाखिल हो गई थी, उन्हें पीछे जकड़े रखने की कोशिश नहीं की।

4

यह दूसरा विच्छेद भी प्रथम निर्णय की दिशा का ही परिचायक था। जिसने अपने मौसेरे भाई और सहकारियों का अपने स्वर्णिम समय को ऐसे कामों में जो इतर जन भी वास्तव में उसी योग्यता या उनसे अच्छी तरह कर रहे थे, लगाकर नष्ट करने के लिये तिरस्कार किया था, वह स्वयं भी अब तक उसी असाधारण अपराध का उतना ही दोषी रहा था। वो उपज, जो वह एक ऐसे ढांचे के मुताबिक बना रहा था। जो न उसका, न किसी अन्य भारतीय का बनाया हुआ था, बहुत हुआ तो केवल अधपक्के तरुण होते थे। जो पुर्जा वे उठाए फिरते थे वह पंजाब विश्वविद्यालय की एन्ट्रेन्स परीक्षा की सनद मात्र ही था। डी० ए० वी० कालिज भी—वह डी० ए० वी० कालिज जिससे उसने उमंग भरी जवानी के रोष और खुमार में इस बात पर सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था कि वह बी० ए०, एम० ए० पढ़ने की प्रथा से अपने आपको मुक्त करने में असमर्थ हुआ—यह सच है कि उसी नमूने का माल दुनिया को प्रस्तुत करने में व्यस्त था पर वह माल कहीं उच्च कोटि का, कहीं अधिक शक्ति और कदर का मालिक था।

बीसवीं सदी के प्रारम्भिक सालों में रामदेव की आत्म सन्तुष्टि को कम्पायमान करने के लिये एक भावात्मक भूचाल की जरूरत थी। जब यह सदी अपने शैशव में ही थी, जैसा कि मैं कह चुका हूँ- वह विप्लव आया। इसके स्रष्टा ला० मुन्शीराम थे। व्याजोक्तियों और विरोधों से अविचलित वे अपने गुरुकुल-प्रोग्रामों में आगे निकल गये थे। एक व्यक्ति ने गंगा के पूर्वी तट वाली जमीन, जहाँ कि वह हरिद्वार में शिवालिक पर्वत को चीरती है, उन्हें दान में दे दी। वहाँ थोड़ी सी जगह साफ करवाकर कुछ झोपड़ियाँ खड़ी की गई। बिना बुलाए ही प्राचीन शिक्षा पद्धति के पुनरुद्धार के लिये कुछ उत्साही पण्डित इकट्ठे हो गये। जिन लोगों को उसमें श्रद्धा थी, उन्होंने अपने बच्चों को उसकी सुरक्षित गोदी में डाल दिया, यद्यपि यह उनके लिये काफी कठिन काम था और इससे भी अधिक कठिन उन लड़कों की माताओं के लिये अपने बच्चों को ब्रह्मचर्य के लम्बे समय तक जो उस उदारवादी ने पुनः निश्चित किया था, अपने से जुदा करना था।

कार्यकर्ताओं की खोज में मुन्शीराम पंजाब में वैदिक शिक्षा के बारे में अपने विचारों का प्रचार करते हुए घूम रहे थे। उनकी वक्तृत्व शक्ति ने जिसमें न्यागरा (झरना) की प्रचण्डता थी, रामदेव को स्कूल मास्टरी के जीवन से उखाड़ दिया।

शीघ्र ही अपने पद तथा पंजाब में जीवन के उज्ज्वल भविष्य को त्याग करके, कांगड़ी में, जिस नाम से गंगा पार की भूमि प्रसिद्ध थी, केवल मात्र गुजारे पर कार्य करते हुए उन्होंने एक तूफान खड़ा कर दिया। वैदिक ज्ञान के अध्ययन के लिये वातावरण बहुत सुन्दर था। जिस शिक्षा पद्धति का वहां अनुसरण किया जा रहा था: उनके मन-पसन्द थी, तथापि पण्डित लोग उससे ऐसे चिपटे हुए थे कि जो सुधार वे अनिवार्य समझते थे काफी दिमागी खर्च के बाद ही कार्य में परिणत किये जा सके।

ला० मुन्शीराम न तो कभी अध्यापक रहे थे और न वे शिक्षा संस्थाओं के रास्तों में से गुजरे थे। रामदेव जी की अस्खलित और हृदयस्पर्शी वाक्पटुता ने शीघ्र ही प्राचीन शिक्षाविधि को आधुनिक पद्धति के साथ गठबन्धन की आवश्यकता का उनको कायल बना दिया। कुछ पण्डितों ने खुली घोषणा कर दी कि वे इन रास्तों पर चलकर अपने कदमों को अपवित्र न करेंगे। उन्होंने गुरुकुल छोड़ दिया। उनके रिक्त स्थानों की पूर्ति ऐसे मनुष्यों से करने में कोई दिक्कत पेश न आई, जो कि वैदिक पुनरुद्धार के लिये कम आकुल न थे, परन्तु जिन में वस्तुस्थिति को समझने की बुद्धि थी, जिसने उन्हें यह देखने पर बाध्य किया कि जब से हमारे वैदिक पितरों ने गंगा के कांठे में सरस्वती देवी की आराधना शुरू किया था, दुनियां एक ही स्थान पर खड़ी नहीं रही है। वे प्राचीन शिक्षा-पद्धति के साथ नवीनता के समीकरण के समर्थक थे।

इस योजना के मुताबिक जो क्रमशः रामदेव जी के उपजाऊ मस्तिष्क की देन थी, कोई भी पण्डित छात्रों के ग्रुप को अपनी मर्जी का विषय बिना समय का ध्यान किए न पढ़ा सकता था। न ही किसी एक दूसरे विषय के स्थान पर किसी विशेष विषय पर अधिक जोर देने की स्वेच्छा के लिये इजाजत थी।

इस नयी प्रणाली के आधीन गुरुकुलीय जीवन बहुत व्यवस्थित हो गया। ब्रह्मचारी निश्चित समय पर प्रातः जागते। शौच स्नानादि से निवृत्त होकर यज्ञशाला में इकट्ठे होते और संध्या हवन करते थे। तत्पश्चात् प्रातराश और कुछ विश्राम के लिये ठहर कर वे अपनी वयस तथा बुद्धि विकास के अनुसार उपयुक्त विभागों में बँट जाते थे। प्रत्येक ग्रुप एक मनोहारी वृक्ष के नीचे श्रेणी के रूप में बैठ जाता था, और यदि ऋतु खराब हुई तो एक तृणाच्छादित कमरे में निश्चित समय तक पठन-पाठन होता था और समय विभाग में बारी-बारी से अन्तर आते थे।

6

थोड़ा-थोड़ा करके गुरुकुल की प्रवृत्तियां विकसित होती गईं और उनकी पूर्ति होती गई। इस सदी के द्वितीय दशक के प्रारम्भ होने के साथ ही साधारण महाविद्यालय के अतिरिक्त जो लड़कों को सामान्यता आजीविकोपार्जनार्थ बनाता था, दो और महाविद्यालय बनाए गए—एक वैदिक शिक्षाओं के लिए, दूसरा आयुर्वेद की

शिक्षा के लिए । पाठ्यक्रम में प्राचीन और नवीन दोनों का समन्वय था । ऋक्, यजुः साम संहिताओं के पाठ्यक्रम के बारे में भी, जिन्हें ला० मुन्शीराम, रामदेव तथा उनके साथी ईश्वरकृत मानते थे, यही दृष्टिकोण था । अन्य धर्मों का भी जिन्होंने इस और इतर भूमियों मे मनुष्य समूहों को प्रभावित किया था, अध्ययन साथ-साथ होने लगा ।

इतिहास के शिक्षण में इस बात पर जोर दिया गया कि मानव ने सुदूर भूत में ही ग्राम्य-गीत-काल की अवस्था को पार कर लिया था, इसलिए प्राचीन इतिहास ग्रन्थ पुराणों की उच्च (परन्तु निर्माणात्मक) समालोचना की आवश्यकता है । वह सब कुछ जो कि उनमें ऐतिहासिक प्रतीत हुआ, उद्धृत कर लिया गया ।

इस सम्बन्ध में रामदेव जी ने स्वयं भी वृहत् कार्य किया । जो तीन भाग उन्होंने (हिन्दी में) लिखे मेरे पुस्तकालय के बुकशेल्फ पर मुख्य स्थान घेरते हैं ।

दर्शन शास्त्र की भी उन्हें बहुत सुन्दर देन दी । विभिन्न (दर्शन) सिद्धान्तों की जिन्हें हमारे पुरखों ने विस्तारित किया था, यूरोपी तथा अमरीकी सिद्धान्तों से पूर्ति की गई । मनोविज्ञान तथा मनो-विश्लेषण शास्त्र का आधुनिक रूप इस शिक्षा क्षेत्र के परीक्षणकर्ता के लिये बहुत आकर्षण रखता था ।

आयुर्वेद महाविद्यालय में चरक तथा सुश्रुत के समय से अब तक की वैद्यक सम्बन्धी उन्नति की भी अवहेलना नहीं की गई । परन्तु पूर्व तथा पश्चिम में जो अनुसंधान किये गए हैं, उनका उत्सुकता से अध्ययन-अध्यापन किया गया । उन लड़ाई-झगड़ों के विस्तार में जिन्होंने अगले उनको कुछ वर्षों को दुःखपूर्ण कर दिया मैं जाना नहीं चाहता । उनके परिणामस्वरूप रामदेव जी को गुरुकुल कांगड़ी छोड़ना पड़ा और इस संस्था से 2, 3 बरस उन्हें दूर रहना पड़ा । तब वे फिर एक बार लौटे और एक मन से अपनी सूक्ष्म बुद्धि और संघर्षमय व्यक्तित्व को इस संस्था के विकास के लिये लगा दिया ।

मेरे लिए अचम्भे की बात यह थी कि किस प्रकार इतनी विशाल संस्था का इस या उस रूप में, प्रबन्ध करने के लिये वे कैसे शक्ति और समय पा लेते थे, जब कि प्रायः उनके समय का बहुत-सा भाग दुनियावी लोगों की ईर्षालु प्रवृत्तियों और द्वन्द्व-कलहों से लड़ने में ही व्यतीत होता था, और फिर वे अपने को अध्ययन, वैदिक मैंग-जीन के संपादन गुरुकुल विश्वविद्यालय के आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता के कार्य भार को सँभालने, पुस्तकें तथा लेख लिखने और प्रचार सम्बन्धी साहित्य संग्रह करने में व्यस्त रखते और छुट्टियों में हाथ में भिक्षा पात्र लिए घूमते थे या वैदिक पुनरुद्धार में अपने को तन्मय रखते थे । वह दैवीय शक्ति का सचमुच केन्द्र था ।

रामदेव दो दृष्टियों से बहुत सौभाग्यशाली थे ।

उनकी प्रकृति मधुर थी । वह प्रतिभा सम्पन्न थी और कदाचित् विवादप्रिय भी, पर हिंसात्मक कभी नहीं : उस मनुष्य का हृदय विशाल था । वह क्षमा कर सकता था ।

वे अपनी अर्धांगिनी के कारण भी सौभाग्यवान् थे। वे पढ़ी-लिखी न थीं, परन्तु वे एक भद्र महिला अवश्य थीं—आदर्श पति परायण कोमल हृदय। उस हृदय में अपने पति और अपनी कोख से उत्पन्न बच्चों के लिये वास्तविक स्नेह था। अपने पति के मित्रों और अतिथियों के लिए—जिनकी सेवा में वह प्रातः दुपहर, और रात्रि बिना किसी प्रकार की शिकायत के रत रहती थीं—सहृदयता का प्रवाह बहता था, जो जरूरत से भी अधिक था।

7

आवश्यकता

शायद रामदेव जी के गुरुकुल कांगड़ी में पिछले कुछ वर्ष उतने सुखद नहीं थे, जितने कि प्रारम्भ में। यदि वे प्रारम्भ जैसे ही रहे होते तो भारत कुछ न कुछ खो ही देता क्योंकि उस संस्था को छोड़कर उन्होंने अपने को ऐसे कार्य में लगा दिया जो अपने आप में ही उनके समवयस्कों में श्रद्धा और भावी संतति में कृतज्ञता भर सकता था। कांगड़ी में गुरुकुल स्थापना के बाद कई साल तक इन्हीं नियमों पर केवल कन्याओं के लिये एक संस्था सचालन का विचार होता रहा। तब तक वस्तुतः कुछ न किया जा सका, जब कि एक व्यापारी ने 1 लाख रुपये की प्रतिज्ञा की। इस राशि में से स्वल्प ही प्राप्त हो सका। तथापि इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में एक स्कूल खोल दिया गया। जब रामदेव जी से कन्याओं के लिये उपयुक्त पाठ्यक्रम-योजना बनाने के लिये निवेदन किया गया, तो उन्होंने शीघ्र ही तैयार कर दी। असहयोगान्दोलन में भाग लेने के लिये गुरुकुल कांगड़ी छोड़ने के बाद से जिसके कारण उन्हें एक साल से अधिक ही जेल में रहना पड़ा, वे कभी फिर वस्तुतः गुरुकुल वापस नहीं गये। उनमें जो कुछ भी कार्य शक्ति अवशिष्ट थी —तीन साल पूर्व तक जब उन्हें अर्धांग का आघात हुआ, यह पर्याप्त थी—उन्होंने इस नई संस्था के निर्माण में जो लगभग दस साल पूर्व हिमालय के चरणों में देहरादून में स्थापित की गई थी, लगा दी। यह आघात, मेरा पूर्ण विश्वास है, उन पर अतिरिक्त कार्यभार आ पड़ने से, यदि पैदा नहीं हुआ तो जल्दी अवश्य आ पड़ा, और प्रतिनिधि सभा के प्रधान पद के स्वीकार करने से उनका उत्तरदायित्व तथा कार्यभार कई गुणा अधिक बढ़ गया।

दिसम्बर 1939 की प्रातःकाल

यह अच्छा ही था कि उनका देहान्त देहरादून कन्या गुरुकुल में हुआ। चिरकाल तक आर्य समाज या अन्य कोई भी समाज, उस दिव्य दृष्टि, बहुमुखी प्रतिभा, गहन और विविध अध्ययन, वाक्पटुता और संगठनात्मक योग्यता की स्थान पूर्ति नहीं कर सकेगा।

सौभाग्य से इस संस्था के लिये वर्षों पूर्व उन्हें एक देवी मिल गई थी जिसने उनकी शैक्षिक सहायता और चारित्रिक अन्तःप्रेरणा के तत्वावधान में इलाहाबाद विश्व विद्यालय से बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। वह पहली स्नातिका थीं जो धर्म से ईसाई

न थी। कन्या गुरुकुल के आचार्य पद के योग्य बनाने के लिये उन्होंने विद्यावती सेठ की जो देखभाल की कोई पिता अपनी पुत्री के लिये क्या करेगा। शिक्षा क्षेत्र में अनन्य आशक्ति और जाति सेवा की भावना ने उसे आजीवन ब्रह्मचारिणी रखा। मेरे विचार में इस भारी उत्तरदायित्व को उठाने और इस अद्वितीय निखिल भारतीय संस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये उसके कन्धों में काफी शक्ति है। यही वह संस्था है जो स्थापना दिवस से रामदेव जी की भरण पोषणमयी पैत्रिक निगरानी में फली फूली और उनकी प्रियतम योजना में से एक रही।

आदर्शवाद के ज्योति-स्तम्भ श्री आचार्य रामदेव जी

(ले०—प्रोफेसर हरिदत्त जी वेदालंकार, गुरुकुल कांगड़ी)

श्री आचार्य रामदेव जी का अध्ययन असाधारण था, कार्य-कलाप बहुक्षेत्रव्यापी और जीवन अनेक विचित्र घटनाओं से परिपूर्ण। उनके स्वभाव में अनेक विलक्षणतायें थी। किन्तु इन सब विलक्षणताओं और विभिन्न घटनाओं में सम्बन्ध स्थापित करने वाला एक सूत्र था। वह था— वैदिक धर्म के उद्धार की लगन, गुरुकुल का प्रेम, महर्षि दयानन्द का आदर्श और भारतवर्ष के गौरव का गान। वैदिक आदर्शों का प्रचार और प्रसार उनके जीवन के चरम उद्देश्य थे। वे इन्हीं आदर्शों के लिये जिये, और उन्ही की सेवा करते हुए अपने शरीर को जर्जर किया और उन्हीं के सपने लेते हुए उनकी मृत्यु हुई। आर्य समाज पुनर्जन्म में आस्था रखता है। यदि मनुष्य को अपनी अन्तिम इच्छाओं के अनुसार अगला जन्म मिलता है तो उन्होंने वैदिक धर्म और गुरुकुल की सेवा के लिये अवश्यमेव किसी आर्य परिवार में या गुरुकुल में बसने वाले कुटुम्ब में जन्म ग्रहण किया होगा।

(महापुरुषों की यह विशेषता होती है कि वे यावज्जीवन एक ही आदर्श की आराधना करते हैं) एक आदर्श की अनन्य भाव से उपासना करते हुए (वे उसी में अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं। अपने आदर्श की यह निष्ठा, लगन और धुन उन्हें महापुरुष बनाती है। उस आदर्श के पीछे वे पागल होते हैं। दुनिया पागलों पर हँसती है किन्तु बड़े-बड़े काम इन पागलों से ही होते हैं। सांसारिक दृष्टि से सभी महापुरुष में यह विशेषता होती है कि वे साधारण लोगों की तरह अपने जीवन को सुखमय बनाने का यत्न नहीं करते, किन्तु वैयक्तिक स्वार्थों और चिन्ताओं की ओर से उपेक्षा वृत्ति धारण कर, अपने आदर्श को ध्रुवतारे की तरह अविचल रखते हुए एक दिशा में बढ़ते जाते हैं) मार्ग में आने वाली बाधाओं से वे नहीं घबराते। रास्ते के आकर्षणों से पथभ्रष्ट नहीं होते। उनका एकमात्र लक्ष्य अपने उद्देश्य को प्राप्त करना होता है। साधारण व्यक्ति इस प्रकार की महत्त्वाकांक्षा रखते हुए भी ऐसी एकान्त साधना, कठोर तपस्या तथा स्वार्थ-त्याग के महान साहस का सामर्थ्य नहीं रखते। वे ऐसे पुरुषों के अर्घ्य दान मात्र से आत्मसन्तोष का अनुभव करते हैं।

श्री आचार्य रामदेव जी के जीवन का ध्रुवतारा था—वैदिक धर्म व वैदिक शिक्षा प्रणाली का पुनरुद्धार। इस उद्देश्य की पूर्ति में वे जीवन भर जुटे रहे। अपनी

सारी शक्ति उन्होंने इसी के प्रचार में लगा दी। वे इस धुन में पागल थे। उनमें इस विषय में हद दर्जे की कट्टरता थी। यह कट्टरता उनके घोर आशावाद का परिणाम थी और उनकी अनथक कार्य शक्ति का मूल स्रोत थी।

वे विद्या के भण्डार थे। उन्हें चलता-फिरता विश्वकोश कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं। उन्हें पढ़ने का और किताबें लाल, नीली पेन्सिलों से रंगने का व्यसन था। उठते-बैठते, चलते-फिरते वे पढ़ने या पढ़े विषय पर बात करते दृष्टिगोचर होते थे। उन्होंने एक व्याख्यान में कहा था—सिपाही का हथियार तलवार होती है और मेरा हथियार पुस्तकें हैं। पुस्तक वाचन का यह व्यसन इस हद तक पहुंच गया था कि कोई गम्भीर पुस्तक नहीं मिली तो उपन्यास ही पढ़ने लगे, अखबार देखने लगे, अखबार की खबरें खतम हुई तो विज्ञापनों को बांच डाला। दुर्भाग्य से यदि और कुछ नहीं मिला तो रेलवे टाइम-टेबल ही पढ़ने लगे।

किन्तु यह सारा अध्ययन एक उद्देश्य को लेकर था और वह था वैदिक धर्म और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का समर्थन। प्रत्येक ग्रन्थ को वे इसी दृष्टि से पढ़ते थे। प्रसिद्ध पाश्चात्य लेखकों के ग्रन्थों से वे इस प्रकार की बातों का संग्रह करते रहते थे, (वर्ष में दो बार गुरुकुल कांगड़ी तथा लाहौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सवों पर वे वर्ष भर के गम्भीर अध्ययन का निचोड़ आर्य जनता के सामने उपस्थित करते थे। आर्य जनता वर्ष भर तक आतुरता से उस घड़ी की प्रतीक्षा करती थी, जब श्री आचार्य जी अपनी नयी खोजें उसके सामने उपस्थित करेंगे।

उत्सवों के पुराने दृश्यों को कौन भुला सकता है? कई आदमी कन्धों पर किताबें लादे चले आ रहे हैं। मेज पर किताबों का अम्बार लग गया है। उस अम्बार के लग जाने पर, श्री आचार्य जी की विशाल और भव्य मूर्ति मंच पर आती है। पंडाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठता है गुरुकुल भूमि में उनकी अपील का व्याख्यान शुरू होने वाला है। (सारे पण्डाल में निस्तब्धता का साम्राज्य है। सब आर्य नर-नारी उद्ग्रीव हैं। उनके भाषण की उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे हैं।) भाषण वैदिक धर्म की महत्ता की सामान्य प्रस्तावना के साथ प्रारम्भ होता है। 15-20 मिनट के सामान्य कथन के बाद श्री आचार्य जी अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिये पश्चिमी लेखकों की पुस्तकों के उद्धरणों की झड़ी बांध देते हैं) वे मेज पर लगे अम्बार में से एक दो पुस्तक को उठाते हैं। निशान लगे पृष्ठ से अवतरण पढ़ते हैं। (एक से एक प्रबल अवतरण को पढ़कर किताब नीचे डाल देते हैं। इस समय वे पूरे जोश में हैं। जनता बड़े ध्यान से उनके वचन सुन रही है। इसी प्रवाह में बहते हुए, आधी दूर जाकर उनका गला जवाबदे देता है। गरम पानी की सहायता से गाड़ी कुछ दूर आगे खिचती है। भले ही बाहर की आवाज जवाब दे दे किन्तु अन्दर का उत्साह तो अटूट है। उसके चाबुक के प्रहारों से घोड़ा थोड़ी दूर चलता है। अन्तिम पंद्रह मिनटों में वह भी दम तोड़ कर बैठ गया। श्री आचार्य जी जोर से बोल रहे हैं किन्तु उनकी आवाज मंच पर बैठे आस-पास के लोगों को ही सुनाई दे रही है। दूर बैठी हुई जनता को कभी-कभी

उनके गले से निकले हुए चीत्कार के केवल कुछ शब्द —आर्य समाज, गुरुकुल और स्वामी दयानन्द ही सुनाई देते हैं किन्तु फिर भी जनता बिल्कुल शान्त बैठी है। उनमें जरा भी क्षोभ या शोर नहीं है। कहते हैं, सपेरा बीन आवाज से नहीं, किन्तु बीन पर थिरकती अपनी उँगलियों की गति से कृष्ण सर्पों को मंत्रमुग्ध कर लेता है। श्री आचार्य जी की आवाज न सुनाई देने पर भी, जनता उनकी भावभंगी, मुखमुद्रा और हस्त-संचालन से ही मंत्रमुग्ध होकर शान्त बैठी है। उस समय 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्याः प्रच्छिन्नसंशयाः'' वाली बात सत्य सिद्ध होती थी। एक उत्कृष्ट कोटि के कलाकार की भाँति उनके मुख से प्रकट होने वाले भाव चेष्टाओं और अंग संचालन से प्रकट होते थे। जनता इस मूक अभिनय को बड़ी तल्लीनता और गम्भीरता से देखती रहती थी। अन्त में इस अभिनय की समाप्ति होती। श्री आचार्य जी मंच से नीचे उतरते। उनके मस्तक से स्वेद की धारायें बह रही होतीं, आँखों में डोरे पड़े होते, गले की नसें तनी होती और सारा शरीर बिल्कुल थका होता। (श्रान्त होने पर भी उनका मुख-मण्डल इस आशा और विश्वास की दीप्ति से उदीप्त होता था कि मैंने आर्य समाज और गुरुकुल की सेवा की है। उस समय जनता वैदिक धर्म, महर्षि दयानन्द और गुरुकुल के गगनभेदी जयघोषों से आकाश को और आस-पास के जंगल को गुंजा रही होती थी। मनुष्यों के इस हर्षोत्सव में प्रकृति कैसे पीछे रह सकती थी। उस समय आसमान भी वैदिक धर्म की जय के नारा लगाता, पवन भी गुरुकुल की जय को गुंजाता और थोड़ी दूर पर बहने वाली कलकल निनादिनी मन्दाकिनी भी महर्षि दयानन्द की जय का गान करती हुई बहती। किन्तु इन सबकी जय उस महान व्याख्याता की विजय थी, उसके आदर्शों और विश्वासों की विजय थी।)

श्री आचार्य जी ने अपने व्याख्यानों से वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर डाला। उन्हें अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्निद्रता, रक्तचाप की अधिकता और अर्धांग से पीड़ित रहना पड़ा। उनके अर्धांग की बीमारी शुरू होने का इतिहास बड़ा मनोरंजक है। (1937 के दिसम्बर मास में उन्हें गुरुकुल कांगड़ी में नकली पार्लियामेन्ट का सभापतित्व करने के लिये बुलाया गया। वे पार्लियामेण्ट की पहली बैठक के सभापति बने। उस दिन रात को विजय नगर साम्राज्य की स्मृति में एक सभा का आयोजन किया गया था। डाक्टरों की हिदायत थी कि वे बहुत कम बोलें। पार्लियामेण्ट में तो सभापति को बहुत बोलने का मौका नहीं मिलता अतः दिन में वे कुछ नहीं बोले थे किन्तु रात को विजय नगर वाली सभा में वे डेढ़ घण्टे से ऊपर बोले। ठंड के समय में, शरीर की निर्बलता की भी उन्होंने कोई परवाह नहीं की। अगले दिन प्रातःकाल जब उन्हें हम पार्लियामेण्ट के कार्य के लिये बुलाने गये तो पता लगा कि उन्हें चेहरे का अर्धांग हो गया है। अपनी मृत्युपर्यन्त वे इस रोग के घातक प्रभाव से मुक्त नहीं हुए।)

समाज के प्रचार कार्य में उनका उत्साह इतना अधिक था कि उन्होंने स्वास्थ्य की उपेक्षा की। (आज से दस वर्ष पहले आर्य प्रतिनिधि सभा की स्वर्ण जयन्ती मनाई

गयी थी। उस जयन्ती को सफल बनाने के लिये उन्होंने अपनी शक्ति से अधिक कार्य किया। अत्यन्त दुर्बल होने, उन्निद्र रोग का शिकार होने तथा रक्त-भार के अधिक दबाव की शिकायत होने पर भी उन्होंने आर्य समाजों का भ्रमण बन्द नहीं किया। एक समय उनका स्वास्थ्य किस शोचनीय अवस्था में था—इसका अनुमान इस छोटी-घटना से लगाया जा सकता था कि एक बार रात को उन्हें किसी समाज में जाने के लिये वजीराबाद जक्शन पर गाड़ी बदलनी थी। उन्होंने कुली को कहा कि गाड़ी आने पर, वह उनका सामान गाड़ी मे चढ़ा दे। गाड़ी में देर थी। वे प्लेटफार्म पर उसकी प्रतीक्षा करने लगे। गाड़ी आने पर उन्हें रास्ते में थोड़ी ऊँचाई लाँघनी थी। वे उसे लाँघते में गश खा गये और बेसुध होकर पटरी पर जा गिरे। यदि कुली उन्हें न बचाता तो उसी रात को उनका अन्त अवश्यम्भावी था। (यह अवस्था उनके विश्राम करने की थी, किन्तु उन्होंने उस अवस्था में भी आराम करना उचित न समझा। अपने जीवन और स्वास्थ्य को आर्य समाज की उचित सेवा के लिये बलिदान कर दिया।)

वृद्धावस्था में भी वे इतना परिश्रम क्यों करते थे। इसका कारण उनकी धुन और लगन ही थी। वे धुन के धनी थे। उन्होंने अपनी धुन में बड़े से बड़े विरोध की परवाह नहीं की और महान् से महान् त्याग के संकोच नहीं किया। (उनको यह धुन थी कि पर्दा-प्रथा अवैदिक है, उसका अन्त होना चाहिये। उन्होंने अपने घर मे पर्दे को हटाना चाहा। यह क्रांतिकारी परिवर्तन था। उनके पिता अपने पुत्र के सुधार को बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। उन्होंने पुत्र को घर से निकालने की धमकी दी। पुत्र घर से निकल गया किन्तु उसने अपनी धुन नहीं छोड़ी। वे डी० ए० वी० कालेज में पढ़ते थे, किन्तु कालेज के अधिकारियों से कालेज की नीति के सम्बन्ध में उनका घोर मतभेद था। वे समझते थे कि डी० ए० वी० कालेज जिस उद्देश्य से खोला गया था, उसे पूर्ण नहीं कर रहा। उन्होंने इवके विरुद्ध प्रचार किया। प्रिंसिपल से डिसिप्लिन का भंग बर्दाश्त नही हुआ। श्री रामदेव जी ने अपनी धुन छोड़ने के स्थान पर कालेज छोड़ना पसन्द किया।)

वे अपनी धुन के इतने पक्के थे कि उन्होंने कभी दूसरे के विरोध को सही नहीं माना और उससे अपनी वात मनवाने की भरसक कोशिश की। (अपवी बात को मन-वाने में वे अच्छी-बुरी सभी युक्तियों से काम लेते थे। वे विद्या के अथाह सागर थे अतः युक्तियां ढूंढने में उन्हें कभी कमी नहीं होती थी। उन्हें अपने पक्ष की सत्यता का पूर्ण विश्वास था और उन्हें इस पर आश्चर्य होता था कि दूसरा उनकी बात क्यों नहीं मान रहा। कई बार दूसरों को अपनी बात स्वीकार कराने में वे विचित्र ढंगों का भी प्रयोग करते। श्री सेण्ट निहालसिंह ने लिखा है—"एक बार वे गुरकुल कांगड़ी में बुलाने के लिये, लाहौर में मेरे आवास स्थान पर आये,। उन्होंने मुझे गुरुकुल जाने के अनेक लाभ बताये। यह एक बड़ा रमणीक स्थान है। वहां अनेक लेख लिखने के विषय मिलेंगे। उस स्थान को देखने से बड़ी प्रसन्नता होगी। मैं उनकी युक्तियों का कायल था किन्तु मेरा समय पहले स्वीकार किये कार्यों से भरा हुआ था मैंने जाने से इन्कार

किया किन्तु आचार्य रामदेव जी भला किसी दूसरे का इन्कार कब मानने वाले थे। उन्होंने मेरा टाइप राइटर और दो-तीन संदर्भ-ग्रंथ (Reference Books) उठा लिये और कहा—मैं इन्हें गुरुकुल ले जा रहा हूँ। इनकी जब आवश्यकता हो, तो गुरुकुल आकर इन्हें ले जाना।)

उन्हें अपनी बात सुनाने और मनवाने की बहुत जबर्दस्त धुन रहती थी। गुरुकुल में कोई मान्य दर्शक आये, वे अपना यह कर्त्तव्य समझते थे कि वैदिक धर्म और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के संबंध में अपने विचारों की गहरी छाप उसके चित्त पर अंकित कर दें। वह चाहे या न चाहे उसे उनका वह व्याख्यान सुनकर उनकी योग्यता और गुरुकुल—दोनों का सिक्का मानना पड़ जाता था। श्री आचार्य जी का दर्शकों पर प्रभाव डालना नित्य नियम था। इसमें वे कोई अपवाद नहीं करते थे। गुरुकुल कांगड़ी में जब भारत के वायसराय श्रीचेम्सफोर्ड पधारे तो उन्होंने पैदल गुरुकुल के सब विभागों का निरीक्षण किया। उनके साथ श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी थे। लेडी चेम्सफोर्ड पालकी पर थी। उनके साथ श्री आचार्य रामदेव जी थे। उन्होंने अपना नियम पूरा किया। सारा समय लेडी चेम्सफोर्ड को गुरुकुल की विशेषतायें बताते रहे। पता नहीं लेडी चेम्सफोर्ड ने उनके व्याख्यान के अतिरिक्त गुरुकुल में कोई बात देखी सुनी या नहीं।

प्रचार की धुन में वे इतने मस्त रहते थे कि उन्हें दुनियां की शेष सब बातें बिल्कुल भूली रहती थीं। अपने कार्य में तल्लीन रहने के कारण अनेक वैज्ञानिकों की यह दशा होती है। कीटाणुओं से रोगों की उत्पत्ति के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वालों तथा पागल कुत्ते के काटे का इलाज तैयार करने वाला पास्च्यूर अपने परीक्षणों में इतना तल्लीन रहता था कि उसके साथी उसे प्रयोगशाला का खंभा कह कर चिढ़ाया करते थे। पास्च्यूर का जिस दिन विवाह होना था, उस दिन भी वे प्रयोगशाला में परीक्षण कर रहे थे। उन्हें यह याद न रहा कि उनका आज विवाह है। गिरजे में विवाह के अवसर पर बाराती पहुँचे, बहू उपस्थित हुई, पुरोहित हाजिर हुआ किन्तु, कमी थी तो केवल दुल्हे की। बिजली संबन्धी बीसियों आविष्कार करने वाले थामस एल्वा एडीसन ने एक जगह कुछ महसूल जमा कराया। मुंशी ने पूछा—रसीद पर क्या नाम लिखा जाय। एडीसन सिर खुजलाने लगे। बहुत याद करने पर भी उन्हें अपना नाम याद न आया। उन्होंने अपनी जेबें टटोलनी शुरू कीं। शायद उनमें कोई पत्र निकले और उससे वे अपना नाम मुंशी को बता सकें। सौभाग्य वश, अकस्मात् उधर से उनका एक मित्र गुजरा, उन्होंने उससे अपना नाम पूछा और महसूल की रसीद कटवाई। श्री रामदेव जी के जीवन में इस प्रकार की बीसियों घटनायें घटीं। दो एक का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। एक बार वे लाहौर के उत्सव पर जा रहे थे। उस समय उनका चित्त लाहौर समाज के व्याख्यान की तैयारी में संलग्न होगा। उन्होंने कार्यालय से वेतन लिया। अपनी समझ से कोट की जेब में डाला और अपने साथियों के साथ हरिद्वार स्टेशन की ओर चले। स्टेशन पर जब टिकट लेने का समय आया, उन्होंने अपनी जेब में हाथ डाला। पैसे नदारद। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। क्या

माजरा है, कुछ समझ न आया। अपने साथी से टिकट खरीदने को कहा। साथी भी हैरान था। वह बोला—आज ही तो तुम वेतन लेकर चले हो। उन्हें स्वयं सारी बात समझ नहीं आ रही थी। अंत में यह पता लगा कि श्री आचार्य जी ने रुपये डालते हुए इस बात का ध्यान नहीं रखा कि वे जेब में जा रहे हैं या नीचे जमीन पर गिर रहे हैं। कहते हैं, एक बार नौकर न्यूटन के लिये भोजन लाया। न्यूटन अपने काम में तल्लीन था। उसे मिलने के लिये एक मित्र आया किन्तु न्यूटन का ध्यान अपनी गणित की समस्याओं में लगा हुआ था। मित्र ने चुपचाप वह भोजन खाया और चला गया। अपना काम समाप्त करने के बाद न्यूटन उठा। भोजन की थाली की ओर बढ़ा, जूठी थाली को देख कर कहने लगा—अच्छा, मैं रोटी खा चुका हूं। श्री आचार्य जी के साथ इससे मिलती जुलती कई घटनायें घटीं। वे बहुत बार अपना भोजन विद्यालय में मंगाते थे। नौकर नियत समय पर उनकी थाली ले आता, खाने के बाद वे पढ़ाने में मस्त हो जाते। एक बार उन्हें यह ख्याल आया कि आज नौकर खाना नहीं लाया। उन्होंने नौकर को बुलाया और डांटा कि आज तू खाना क्यों नहीं लाया। नौकर ने कहा—मैं आपका खाना लाया था। आप खा चुके हैं। किन्तु श्री आचार्य जी उस पर विश्वास कर नहीं रहे और कह रहे हैं कि मैंने तो भोजन किया नहीं, मैं तेरी बात कैसे मान लूं। अन्त में कुछ विद्यार्थियों ने कहा कि हमारे सामने नौकर भोजन लाया है, आप भोजन कर चुके हैं। विद्यार्थियों की साक्षी से नौकर का छुटकारा हुआ? ये घटनायें उनके मन के एक ही कार्य में तल्लीन रहने, विस्मरण शीलता और अन्यमनस्कता पर अच्छा प्रकाश डालती हैं।

वे गुरुकुल प्रेम की धुन में इतने मस्त थे कि उसमें कोई दोष नहीं देख सकते थे। इसके साथ ही इस धुन के कारण उनमें उग्र कट्टरता और घोर आशावाद उत्पन्न हो गया था। उनकी कट्टरता गुरुकुल में कभी कोई दोष नहीं स्वीकार कर सकती थी। और घोर आशावाद प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हार नहीं मान सकता था। उनकी कट्टरता से कई बार उनके सहयोगी सहमत नहीं हुए। उन्होंने उनका साथ छोड़ा किन्तु आचार्य जी ने कभी अपना सिद्धान्त नहीं छोड़ा। उनके आदर्शवाद में समझौते का कोई स्थान नहीं था। उनका आदर्शवाद तुषारमण्डित उत्तुंग गिरिशृंग सा न केवल दुर्धर्ष, उदात्त, उच्चतासम्पन्न, महान और पावन था किन्तु विमल और अविचल भी था।

प्रबल से प्रबल आंधी, पानी और तूफान उस पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते थे। गुरुकुल के पुराने जन्मोत्सवों के दृश्य कौन भुला सकता है? एक के बाद एक वक्ता उठ कर गुरुकुल की और इस शिक्षा पद्धति की आलोचना कर रहा है। 'यह परीक्षण असफल हुआ है, 'इसमें विद्यार्थियों का जीवन नष्ट किया जा रहा है, जनता के रुपये का दुरुपयोग हो रहा है, इसकी कोई आवश्यकता नहीं।' एक से एक जोशीला वक्ता अपने धुंआधार भाषण में गुरुकुल की निरर्थकता, सिद्ध कर रहा है। श्रोताओं पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। वे वक्ताओं की युक्ति परम्परा की दाद दे रहे हैं। गुरु-

कुल के क्षितिज पर जबर्दस्त काली घटा घिर आयी है। अन्त में आचार्य जी खड़े हुए उन्होंने अपने आकाट्य तर्कों, प्रमाणों और युक्तियों से गुरुकुल का महत्व बताना शुरु किया। श्रोताओं की विचार धारा पलटने लगी उनके भाषण की समाप्ति तक आसमान बिल्कुल साफ हो जाता, उस काली घटा का कोई नामोनिशान न रहता।

वे क्षण मात्र के लिये गुरुकुल पद्धति में दोष मानने को तैयार नहीं थे। 1930 में गुरुलकुल की अवस्था पर विचार करने के लिये जब एक कमीशन बिठाने का पहले पहल प्रस्ताव रखा गया तो उन्होंने इसका घोर विरोध किया। कोई कमी, त्रुटि या दोष हो तो उसके दूर करने के लिये उपाय सोचे जाये। जब गुरुकुल पद्धति में कोई दोष ही नहीं तो कमीशन किस बात की जांच करेगा। वे समझते थे कि इसकी नियुक्ति व्यर्थ है और जनता के पैसे को बरबाद करना है।.

उनका विश्वास था कि ऋषि दयानन्द की पद्धति का कट्टरता से पालन करते हुए उसमें कोई कभी दोष नहीं पैदा हो सकते। जब तक हम अपने आदर्शों की पूरी रक्षा करते हैं, उस समय तक किसी कमी या बिगाड़ की आशंका नहीं रखनी चाहिये। सब दोषों और बुराईयों से बचने की ढाल आदर्शवाद है। इसे सदैव थामे रखना चाहिये। इसकी पकड़ कभी ढीली नहीं होनी चाहिये। उन्होंने अपने जीते जी इसमें कभी ढील नहीं की। (संयुक्त प्रान्त की सरकार ने संयुक्त प्रान्त में आयुर्वेद के शिक्षण की जांच के लिये एक कमीशन नियत किया। इन कमीशन में 'गुरुकुल कांगड़ी का एक प्रतिनिधि रखा गया। सरकार ने गुरुकुल कांगड़ा से प्रार्थना की कि वह अपने प्रतिनिधि को चुन कर इस कमीशन में भजे। श्री आचार्य जी ने पहले सरकार से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट करवा ली कि इस कमीशन मे गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय को किसी प्रकार सरकार से संबद्ध करने या स्वीकृत कराने का कोई प्रश्न नहीं उठाया जायगा। जब उन्हें पूरे तौर से इस बात की तसल्ली हो गयी कि इस प्रकार के किसी प्रश्न पर विचार नहीं किया जायगा तो उन्होंने गुरुकुल का प्रतिनिधि भेजना स्वीकार किया।

कई बार उनके सहयोगी उनकी इस कट्टरता और आदर्शवाद का समर्थन नहीं कर सकते थे। वे मैदान में अकेले रह जाते थे। उन्होंने अकेले रहने की कभी परवाह नहीं की किन्तु उन्हें इस बात का गहरा दुःख होता था कि उनके सहयोगी उनकी तरह आदर्शवाद के मार्ग पर क्यों नहीं चलते। उनके शरीर पर इसका गहरा असर पड़ता। 1927-28 में अन्तरंग सभा में गुरुकुल के प्रबन्ध के लिये विद्यासभा की स्थापना का प्रस्ताव पेश हुआ। इस सभा के संगठन के संबन्ध में यह व्यवस्था की गयी थी कि इसमें भारत वर्ष के कुछ गणमान्य शिक्षाविज्ञ भी सम्मिलित किये जायें। श्री आचार्य जी का यह कहना था कि ये शिक्षा-विज्ञ आर्यसमाजी होने चाहियें। विरोधियों का यह मन्तव्य था कि इस प्रकार की शर्त लगाना ठीक नहीं। इस शर्त के कारण हम अनेक शिक्षाविज्ञों के अमूल्य परामर्शों का लाभ नहीं उठा सकेंगे। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक शिक्षाविज्ञ आर्यसमाजी हो। श्री आचार्य जी इसे सिद्धान्त का

प्रश्न समझते थे । वे गुरुकुल के प्रबन्ध में आर्यसिद्धान्तों में विश्वास न रखने वाले किसी व्यक्ति के हस्तक्षेप की कल्पना नहीं कर सकते थे । श्री आचार्य जी के दुर्भाग्य से वह प्रस्ताव पास हो गया ! इस पर आचार्य जी को इतना जबरदस्त धक्का लगा कि आध घण्टे के अन्दर उन्हें तीव्रज्वर चढ़ गया । इसके बाद आठ वर्षों तक वह प्रस्ताव सभा की फाइलों में दबा रहा । 1935 में विद्यासभा की स्थापना करते हुए श्री आचार्य जी की उपयुक्त शर्त का पूरा पालन किया गया ।)

उनकी धुन और आदर्श के निम्न अतिमार्गी (Extremist) दृष्टान्त से उनके चरित्र के कई पहलुओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । पहले यह बताया जा चुका है कि पत्नी के पर्दे का विरोध करने पर उन्हें अपने घर से निकलना पड़ा था (वे स्त्रियों की उन्नति में पर्दा प्रथा को बाधक मानते थे । स्त्रियों की उपयुक्त शिक्षा के लिये उन्होंने कन्या गुरुकुल देहरादून की संस्था को जन्म दिया । उस संस्था का पालन पोषण किया । यदि यह कहा जाय कि उन्होंने कन्या गुरुकुल को अपने रक्त से सींचा तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं । अपनी आयु के अंतिम वर्षों में, जर्जर स्वास्थ्य की भी चिन्ता न करते हुए उन्होंने इसकी वृद्धि और विस्तार के लिये पूरा यत्न किया । यह स्पष्ट है कि वे स्त्रियों की शिक्षा, उन्नति व उपयुक्त विकास के प्रबल समर्थक थे । किन्तु गुरुकुल कांगड़ी में यदि कभी स्त्रियों ने ब्रह्मचारियों की कुल सभाओं में व्याख्यानों से अपना मानसिक विकास करना चाहा तो उन्होंने इसका घोर विरोध किया । स्वामी श्रद्धानन्द जी की स्मृति में आयोजित एक कुल सभा में परिवारों की स्त्रियाँ सम्मिलित हुई । उस सभा में श्री आचार्य जी के आने की संभावना नहीं थी, शायद इसीलिये आयोजकों ने ब्रह्मचारियों की सभा में नारियों को आने की अनुमती दे दी थी अकस्मात्, श्री आचार्य जी उस सभा के समय तक गुरुकुल आ गये । सभा में सम्मिलित हुए किन्तु उनके सभा में आने पर स्त्रियों को सभा-स्थल छोड़ना पड़ा ।

नारियों की शिक्षा का प्रबल समर्थन करने वाला उनके मानसिक विकास में बाधक कैसे बन सकता है ? ऊपर से हमें उन दोनों बातों में विरोध प्रतीत होता है । उनका यह व्यवहार एक पहेली जान पड़ता है किन्तु इसका हल उनके आदर्शवाद में है । महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास के आरम्भ में लिखा है— "स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे । अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी रहें तब तक स्त्री व पुरुष का दर्शन······आदि से अलग रहें" (दयानन्द निर्वाण अर्धशताब्दी संस्करण, अजमेर पृ. 39) श्री आचार्य जी महर्षि के इस आदेश से अणुमात्र भी विचलित नहीं हो सकते थे । नारियों के स्वतन्त्र विकास के वे जितने जबर्दस्त हामी थे, ब्रह्मचारियों के आश्रम या विद्यालय में नारियों के प्रवेश के उतने ही जबर्दस्त बिरोधी । उनका यह विरोध गुरुकुल कमीशन की रिपोर्ट के अंत में लिखी गयी असहमति से साफ झलकता है । पुराने गुरुकुल में स्त्रियों के लिये ब्रह्मचारियों का आश्रम और विद्यालय देखने के संबंध में अनेक प्रतिबंध थे । वार्षिकोत्सव पर मातायें तथा अन्य

महिलायें एक नियत समय पर आश्रम का निरीक्षण कर सकती थीं ! उस समय विद्यार्थियों को जंगल में घूमने बाहर भेज दिया जाता था। गुरुकुल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश की थी कि गुरुकुल निरीक्षण में महिलाओं पर लगायी रुकावटें हटा देनी चाहियें। (कमीशन की सिफारिशें पृ. 17)। श्री आचार्य रामदेव जी ने इन रुकावटों के उठाने का प्रबल विरोध किया (वही पृ. 31)।

(वे सच्चे आदर्शवादी ब्राह्मण थे। आदर्शों की धुन में उन्होंने धन की परवाह नहीं की) वे जींद में स्कूल इन्स्पेक्टर बन कर जा रहे थे। महात्मा मुंशीराम जी ने उन्हें गुरुकुल में सेवा के लिये बुलाया। वे इन्स्पेक्टरी को लात मार कर गुरुकुल चले आये। उन्हें कोल्हापुर कालिज के लिये प्रिंसिपल पद के लिये 650) पर बुलाया गया, उन्होंने उस पद को स्वीकार नहीं किया क्योंकि वे गुरुकुल की सेवा नहीं छोड़ सकते थे। (धन की सेवा करने की अपेक्षा उन्होंने आदर्शों की सेवा करना श्रेष्ठ समझा। दुनियां में आदर्शवाद का दंभ भरने वाले ऐसे ढोंगियों की कमी नहीं होती जो अपने परिवार और बाल बच्चों को अपनी कमजोरी को आड़ बनाते है। उन्होंने विशाल परिवार होते हुए भी धन की परवाह नहीं की। गुरुकुल के लिए लाखों रुपये का चन्दा किया किन्तु अपने परिवार के लिए एक पाई की भी चिन्ता नहीं की। उन्होंने कभी सम्पत्ति नहीं जोड़ी। सुना है, एक बार रात को एक चोर उनके घर में घुसा। उनकी नींद खुल गई। उन्होंने चोर को पुकारकर कहा—भाई, लालटेन इधर पड़ी है। इसे जला लो। घर को खूब अच्छी तरह देख लो। इसमें कहीं कुछ हो तो मुझे भी बता देना। यदि पुस्तकें पढ़ने की जरूरत हो तो उन्हें ले जा सकते हो।

यह समझना भी भूल होगी कि उन्हें अपनी पुस्तकों से आसक्ति थी। मिथिलापति विदेह-राज जनक कहा करते थे—मिथिलायाँ प्रदग्धायां न मे किंचित्प्रदह्यति। हमें पता नहीं कभी मिथिला जली या नहीं, जनक को ऐसी परीक्षा देने का अवसर प्राप्त हुआ या नहीं किन्तु श्री रामदेव जी को अवश्य एक बार ऐसी परीक्षा देनी पड़ी थी। पार की भूमि में एक बार मकानों में आग लगी। आग की लहरें इनके मकान तक भी पहुंची। पुस्तकें धूं-धूं कर के जलने लगीं। इन पुस्तकों में अधिकांश पाश्चात्य लेखकों द्वारा लिखी हुई थीं। श्री रामदेव जी इस खाण्डवदाह से निर्विण्य नहीं हुए। उनसे जब किसी ने सहानुभूति प्रकट की तो उन्होंने कहा—'वाह इसमें दुःख की क्या बात है। देखो, पश्चिम की कितनी शानदार होली जल रही है। उनकी अनाशक्ति का इससे अच्छा और क्या उदाहरण हो सकता है ?

उन्हें यदि आसक्ति थी तो अपने आदर्शों से और गुरुकुल से ही थी। पार की भूमि की नींव स्वामी श्रद्धानन्द जी ने डाली थी, किन्तु वर्तमान भूमि में बसे गुरुकुल कांगड़ी और उसके महाविद्यालय विभाग के वास्तविक जन्मदाता श्री आचार्य रामदेव जी ही हैं। उन्हीं के भगीरथ प्रयत्नों से संगृहीत दान से इस भूमि की इमारतों का निर्माण हुआ। कन्या गुरुकुल देहरादून शुद्धरूप से उनकी रचना है। उन्होंने अपना जीवन इन्हीं संस्थाओं की सेवा में तथा वैदिक सिद्धांतों के प्रचार में व्यतीत किया।

वे वास्तव में शहीद थे। शहीद दो प्रकार के होते हैं—पहले तो वे जो किसी उच्च आदर्श के लिए हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करते हैं, फांसी के तख्ते पर झूमते हैं, सीने पर गोलियां खाते हैं, विरोधियों की लाठियों या अन्य क्रूर साधनों से अपनी जीवन लीला का संचरण करते हैं। इस प्रकार के शहीद हमारी श्रद्धा और सम्मान का पात्र बनते हैं। किंतु इनसे भी महत्त्वपूर्ण शहीद दूसरे ढंग के व्यक्ति होते हैं। पहले वर्ग के शहीद एक बारगी अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं किंतु दूसरी श्रेणी के शहीद अपना समूचा जीवन, कार्यशक्ति तन, मन, धन, तिल तिल कर आदर्शों की बलिवेदी पर चढ़ाते हैं। क्षणिक आवेश में पहले प्रकार का शहीद बनना आसान है किंतु कोई व्यक्ति दूसरी कोटि का शहीद उस समय तक नहीं बन सकता जब तक कि उसे अपने आदर्शों की अन्धी और पागल बना देने वाली धुन न हो, उस पर उनका गहरा नशा न चढ़ा हुआ हो। इस धुन में वह अपने जीवन का एक-एक क्षण और अपनी शक्ति का एक अणु उन आदर्शों की सेवा में उत्सर्जित कर देता है। श्री रामदेव जी का उत्सर्ग इसी भांति का था। दूसरे लोग मर कर शहीद होते हैं, वे अपने जीवन काल में ही अपनी सब शक्तियों का होम करके शहीद बन चुके थे। उस आदर्शवाद के महान् ज्योतिस्तम्भ, धुन के धनी, दृढ़ संकल्प, गुरुकुलों के निर्माता श्री आचार्य जी के चरणों में हम श्रद्धा और विनय के साथ नतमस्तक होते हैं।

ज्ञानयोगी आचार्य रामदेव जी

(लेखक—श्री शंकर देव विद्यालंकार, गुरुकुल कांगड़ी)

स्वार्थो यस्त परार्थ एव स पुमान् एकः सतामग्रणीः ।।

आधुनिक भारत के सांस्कृतिक जागरण के इतिहास में राष्ट्रीय शिक्षा, सामाजिक संस्करण और धार्मिक पुनर्विधान के क्षेत्र में जिन महान् कर्मवीरों ने स्वेच्छा से अपना जीवन सर्वस्व होम दिया था, उन तपस्वी-साधकों में ज्ञानयोगी आचार्य प्रवर रामदेव जी का सुनाम स्नेह, समादर और श्रद्धा से स्मरण किया जाता है।

आजकल की नवयुवक पीढ़ी के तरुण जिस समय अपनी माताओं की गोद में स्तन्यपान किया करते थे उन दिनों आज से कोई पैंतालीस वर्ष पहले की बात है, सप्तसिन्धु देश के होशियारपुर जिले का एक तरुण जालंधर छावनी के एक स्कूल में प्रधान-अध्यापक का कार्य कर रहा था। पंजाब विश्वविद्यालय से सद्यः स्नातक बन कर उसने देश के बालकों को शिक्षित करने का पवित्र व्रत स्वीकार किया था। उसी समय पंजाब में आर्य जाति का एक प्रतापी पथान्वेषी मशालची घर घर घूम कर जातीय शिक्षा, जातीय जीवन की नवरचना और ब्रह्मचर्य प्रणाली की प्रतिष्ठा के लिए लोगों को पुकार रहा था। जातीय उद्‌बोधन का भव्य भेरी नाद सुनाने वाले यह थे स्वनाम धन्य महात्मा मुंशीराम जी, जो उन दिनों जालंधर के एक अच्छे वकील माने जाते थे और जिन्होंने अपना सर्वस्व समर्पण करके नगाधिराज हिमाचल के आँचल में हरिद्वार तीर्थ के समीप पुण्य-सलिला भगवती भागीरथी के तीर पर एक जातीय शिक्षासदन की स्थापना की थी, जो आज गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी के नाम से विश्वविश्रुत बन चुका है। इस महाप्राण पुरुष के शंखनाद ने जालंधर छावनी के उस तरुण शिक्षाव्रती की अन्तरात्मा को हिला कर पूरी तरह आश्वस्त बना लिया! यही तरुण शिक्षाव्रती आगे चल कर भारत की जातीय शिक्षा के इतिहास में आचार्य रामदेव जी के नाम से विश्रुत बने और आज भी एक महान् शिक्षा शास्त्री, प्रकाण्ड इतिहास वेत्ता, प्रखर व्याख्याता, आर्य समाज एवं गुरुकुल के चलते फिरते विश्वकोष तथा आर्यवर्त की संस्कृति के प्रतिनिधि रूप मेधावी के रूप में समस्त आर्यजाति जिनको पूजा का अर्ध्य चढ़ाती है।

इस साधक शिक्षा गुरु के सामने मानपूर्ण सरकारी स्कालरशिप और वैभव-शाली सरकारी नौकरी के सुवर्णथाल जगमगा रहे थे। यूनिवर्सिटी की प्रोफेसरी का यशोमय जीवन उनके सामने था। सुखसमृद्धि और सुकीर्ति कें ऐसे जीवन क्रम को

छोड़ कर हेडमास्टर रामदेव जी ने राष्ट्रीय —शिक्षा के पितामह तपोनिधि मुंशीराम जी के चरणों में अपना जीवन अर्पित कर दिया और हिमाद्रि की वनछाया में बसे हुए काँगड़ी के तपोवन में आकर प्रशान्त भाव से अपनी यज्ञाग्नि को प्रकट किया। गुरुकुल और आर्य समाज की सेवा के लिए आजीवन सदस्यता की दीक्षा ली।

गुरुकुल काँगड़ी में आते ही रामदेव जी उसके मुख्याध्यापक (हेडमास्टर) बनाए गए। आपने गुरुकुल की समस्त पाठ व्यवस्था और पाठ्यग्रथों की नए सिरे से पड़ताल करके उसे सुनियोजित और व्यवस्थित बनाया। आप ही वहाँ अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी साहित्य, इतिहास और समाजशास्त्र आरि विषयों को पढ़ाने लगे। इसके सिवाय आर्य धर्म और गुरुकुल-शिक्षा प्रणाली के प्रचार के लिए भी आप समय-समय पर बाहर जाने लगे। अध्यापक और प्रचारक दोनों रूप में आप की कीर्ति का चहुँ ओर विस्तार होने लगा। थोड़े ही समय में आप आर्यजगत् के माने हुए व्याख्याता बन गए। बड़ी बड़ी आर्य समाजों के महोत्सवों में आपके व्याख्यानों का कार्यक्रम अनिवार्य सा हो गया था। आर्य जगत् में आपके व्याख्यानों को सुनने के लिए गजब का आकर्षण पैदा हो गया था। अनेक पुरुष तो केवल आपका व्याख्यान सुनने के लिए ही सम्मेलनों, परिषदों और उत्सवों पर आया करते थे।

एक सच्चे मिशनरी के सभी सद्गुण आपमें विद्यमान थे। आर्य-धर्म, आर्य-संस्कृति और आर्यशिक्षा प्रणाली के प्रति आपके मन में अपार श्रद्धा और आस्था विद्यमान थी और अपने इस विश्वास को आप सर्वत्र ही बड़ी गंभीरता, सत्य-हृदयता और तत्परता के साथ प्रचारित किया करते थे। यहाँ तक कि न सुनने की इच्छा वाले को भी आग्रह पूर्वक सुनाया करते थे। आपके व्याख्यान आपके प्रकाँड पाँडित्य, गहरी अध्ययन शीलता और मनमोहक वाक्-पाटव के कारण इतने आकर्षक और चमकदार बन जाते थे कि आपकी भावुकता भरी भाषणशैली श्रोताओं को आपका वशंवद् बना कर ही छोड़ती थी। धीर गंभीर मेघगर्जन और पर्वतीय निर्झर प्रवाह की तरह प्रवाहित होने वाली आपकी वाक्धारा में श्रोता लोग भाव-विभोर होकर बह जाते थे। बीच बीच में होने वाले हर्षघोष और जयनाद उनकी प्रभावोत्पादकता को दुगुना कर देते थे। भाषण के समय आचार्य जी की एक लाक्षणिक विशेषता यह भी थी कि वे अपने सामने बैठे हुए श्रोताओं के सामने अपना सिर खूब हिलाते थे—इस अभिप्राय से कि श्रोता उनके मन्तव्य को अच्छी तरह अवगत कर रहे हैं या नहीं। परिणामत: आपकी व्याख्यान शैली से परिचय पाए हुए श्रोता उनका व्याख्यान सुनते हुए दाद देने के लिए उत्तर में अपना सिर हिलाया करते थे और आचार्यजी को अपने व्याख्यान प्रवाह में और अधिक खिल उठने का वातावरण बना देते थे। आचार्य जी बहुत ही आशावादी, उत्साह पूर्ण और भावुक मनोभाव के व्यक्ति थे। उनकी वह आशावादिता और भावुकता उनके व्याख्यानों में स्थान स्थान पर प्रस्फुटित होती थी। आमतौर पर लाहौर आर्य समाज और गुरुकुल के विराट् उत्सवों पर होने वाले व्याख्यानों के

लिए आचार्य जी विशेष तैयारी किया करते थे और उन व्याख्यानों की प्रवाह—शीलता जब अपने पूरे वेग पर आती थी तब आचार्य जी भावुकता के आवेश में प्रायः यह कहा करते थे कि "एक जमाना शीघ्र ही आने वाला है जब लण्डन के सेंट पाल के गिरजे पर वैदिक धर्म की ध्वजा गड़ेगी।"

गुरुकुल के महोत्सवों पर धनसंग्रह से पहले का व्याख्यान निश्चित रूप से आचार्य जी का ही होता था और आगे जाकर तो धनसंग्रह की अपील का भाषण भी आप ही दिया करते थे। वह दृश्य देखने लायक होता था। पचीस पचीस हजार श्रोताओं से उत्सव-मंडप खचाखच भरा हुआ होता था। मेज पर प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए ग्रंथों के ढेर क्रम पूर्वक पृष्ठ-चिन्ह देकर रख दिए जाते थे। पीने लायक उष्णता वाला दूध का एक गिलास भी स्थापित कर दिया जाता था। मण्डप में स्थिर प्रत्येक व्यक्ति यह देख कर समझ लेता था कि आचार्य जी का व्याख्यान शुरू होने को है। पीला दुपट्टा धारण किए हुए आचार्य जी व्याख्यान पीठ पर आते थे और समस्त मण्डप तालियों और हर्ष नारों से गूंज उठता था। व्याख्यान शुरू होते ही पच्चीस हजार की श्रोता मंडली में परम शाँति फैल जाती थी। सूई गिरे तो आवाज आ सके ऐसी स्थिर शान्ति।

व्याख्यान हो जाने पर धनसंग्रह के लिए बालटियाँ लिए हुए स्वयं सेवक निकल आते थे। कुछ ही समय में बालटियाँ रुपयों करेंसी नोटों और महिलाओं के आभूषणों से भर जाती थी। एक आध घंटे के समय में ही सहस्रों रुपयों से गुरुकुल के भिक्षा-थाल भर जाते थे। यह था आचार्य जी के भाषण-पाटव का प्रभाव और प्रताप। गुरुकुलोत्सव के इस दृश्य को देख कर एक बार महात्मा गाँधी ने विनोद में आचार्य जी को कहा था—"मैं रुमाल में चन्दा एकत्र करता हूँ, आप के यहाँ तो बाल्टियाँ चन्दे से भरती हैं।"

गुरुकुल में आने के पश्चात् आचार्य जी की कीर्तिकौमुदी क्रमशः सर्वत्र फैलती गई। आप क्रमशः मुख्याध्यापक, प्रोफेसर और उपाचार्य के पदों पर कार्य करते हुए अन्त में गुरुकुल विश्व-विद्यालय के प्रधान आचार्य के गौरव पूर्ण पद पर पहुँचे और पुण्यश्लोक स्वामी श्रद्धानन्द जी के महाप्रयाण के पश्चात् तो आपही गुरुकुल के सर्वेसर्वा हुए! गुरुकुल विश्वविद्यालय के निर्माण और विकास में स्वामी जी के पश्चात् यदि किसी का सबसे बड़ा हिस्सा है तो वे हैं—आचार्य रामदेव जी। और काँगड़ी की पुरातन पुण्य-भूमि में जलप्लावन आने के बाद गुरुकुल के नवीन स्थान पर प्रतिष्ठित होने में तो आचार्य जी का ही त्याग तपस्या और साधना कारण भूत है। नवीन गुरुकुल के शरीर की प्रत्येक ईंट उनके पुरुषार्थ सलिल से सींची हुई है यह कहना कुछ अतिशयोक्ति न होगी! भारत भर के कृतविद्य मनीषियों को गुरुकुल की प्रवृत्तियों की ओर आकृष्ट करने में भी आचार्य जी का बड़ा भारी हाथ था। शिक्षा-परिषदों में आपको गुरुकुल शिक्षा क्रम का प्रतिनिधि मेधावी मान कर निमंत्रित किया

जाता और आप उनमें गुरुकुल के आदर्शों को बड़े विश्वास के साथ प्रस्तुत करते थे।

आचार्य जी अत्यन्त सीधी सादी रहनी करनी और शील स्वभाव के संत पुरुष थे। "ऊँचे विचार और सादा सरल जीवन" का सिद्धाँत उनमें पूरी तरह प्रतिफलित होता था। वे भारतीयता और स्वदेशी के कट्टर व्रती और आर्यभाषा हिंदी के परम पुजारी थे। अपने ध्येयों और मन्तव्यों पर आग्रह रखते हुए वे सभी के विचारों और भावों का समादर करते थे। यूरोपियन सभ्यता की उपमा मोटरकार से दिया करते थे कि पश्चिमी सभ्यता आने से पूर्व तो वड़ी आकर्षक और शानदार प्रतीत होती है पर गुजर जाने पर धूल और दुर्गन्ध फैलाती रहती है।

आज बड़े खेद से अनुभव किया जाता है कि उनके निर्वाण के पश्चात् पाश्चात्यों तथा पाश्चात्य विचार शैली के हिमायती एतद्देशीय लोगों से बौद्धिक संग्राम खेलने वाला उन जैसा वीर और मेधावी योद्धा आर्य समाज में कोई नहीं है। भारत की सांस्कृतिक स्वाधीनता की लड़ाई के उस अद्भुत और वीर सेनानी के विना आर्य-समाज और आर्यजाति को आज हम निराश, हतप्रभ और आत्म दैन्य से अभिभूत सा पा रहे हैं। अत: आज उस महान् शिक्षागुरु की वह धीर गंभीर एवं प्राण और प्रेरणा से पूर्ण दुन्दुभि घोष मानो यही कह रहा है—"आत्मानं विद्धि"—आत्म गौरव को स्मरण करो।

आचार्य रामदेव जी एक समर्थ पत्रकार और हिंदी तथा अँग्रेजी भाषा के उच्च कोटि के सुलेखक थे। गुरुकुल की सेवा प्रारंभ करने के साथ ही आपने अँग्रेजी में "वैदिक मैगजीन" नामक उच्च कक्षा का मासिक पत्र संपादित करना प्रारंभ कर दिया था। वैदिक-मैगजीन उन दिनों भारतवर्ष के प्रथम कोटि के मासिक पत्रों में गिना जाता था। माडर्न रिव्यू, इण्डियन रिव्यू जैसे विश्रुत मासिक पत्रों का वह समकक्ष था। भारतवर्ष के माने हुए मनीषी प्रोफेसर और सुलेखक उसमें लेख लिखने में गौरव अनुभव करते थे। श्रीमती एनी बीसेन्ट, डाक्टर भगवानदास, साधुवर वास्वानी, डाक्टर विनयकुमार सरकार, डाक्टर राधा कुमुद मुकर्जी, डाक्टर अविनाशचन्द्र दास, लाला हरदयाल, प्रोफेसर फणीन्द्रनाथ, श्री गंगाप्रसाद जी (टिहरी के चीफ जज), डाक्टर बालकृष्ण जी, प्रो० ताराचन्द्र जी गाजरा, प्रो० विनायक गणेश साठे आदि कृतविद्य महानुभावों की मौलिक व खोज पूर्ण रचनाओं से वह विभूषित रहता था। पाँडिचेरी के परमहंस श्री अरविन्द जी ने महर्षि दयानन्द और उनके जीवन कार्य पर जो लेखमाला लिखी वह भी सर्व प्रथम 'वैदिक मैगजीन' में ही प्रकट हुई थी। डाक्टर विनयकुमार सरकार जैसे प्रकाँड अन्वेषकों की तो कई एक पुस्तकें 'वैदिक मैगजीन' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित होती रही हैं। इसी प्रकार आर्य जगत् के विश्रुत विद्वान् गंगाप्रसाद जी (चीफ जज) की सुविदित पुस्तक "धर्म का मूल स्रोत" भी पहले पहले 'वैदिक मैगजीन' द्वारा ही विद्वत्-समाज के समक्ष आ सकी थी। भारतवर्ष और विदेशों के विद्वानों और विचारकों तक आर्य धर्म वैदिक संस्कृति, गुरुकुल शिक्षा और भारतीय-गौरव का संदेश पहुँचाने का पवित्र कार्य आचार्य रामदेव जी ने 'वैदिक

मैगजीन" द्वारा बड़ी योग्यता निपुणता और साधना के साथ किया था। इस प्रकार वैदिक मैगजीन एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का मासिक पत्र बन गया था। यूरोप और अमेरिका तक के विचारक और लेखक उसमें अपनी रचनाएँ लिखा करते थे। दीनबन्धु ए०ड्रयूज, मायरन फेल्पस (अमेरिका के शिक्षण शास्त्री), फ्रेंच विद्वान् पाल रिचार्ड, प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट एंफ० टी० बुक, जेम्स कजिन्स आदि विद्वान् तो उसके नियमित लेखक थे। 'वैदिक मैगजीन' के वाचक भी महात्मा टालस्टाय, एडवर्ड कारपेन्टर, कैथराईन टिंगले, राजकुमारी करादजा जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विचारक, साधक और सुलेखक थे। महात्मा टालस्टाय और आचार्य रामदेव जी के पत्र-व्यवहार का सूत्रपात भी वैदिक मैगजीन द्वारा ही हुआ था। परिणामतः महात्मा टालस्टाय के वानप्रस्थ जीवन के आर्य आदर्श के प्रति आकृष्ट होने में आचार्य रामदेव जी ही कारणभूत थे।

वैदिक मैगजीन में आने वाली आचार्य रामदेव जी की संपादकीय टिप्पणियाँ बड़ी जोरदार, संतुलित और प्रभाव पूर्ण होती थी। आचार्य जी बड़े निर्भीक समालोचक थे। देश विदेश से सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें आचार्य जी के पास समालोचनार्थ आया करती थीं। आचार्य जी उनकी खरी समीक्षा करने में कभी चूकते नहीं थे। साथ ही विदेशियों द्वारा भारतीय सभ्यता, आर्य धर्म वैदिक संस्कृति आदि पर होने वाले अनुचित आक्षेपों के धुर्रे उड़ाने में भी आचार्य जी बड़े निपुण थे। इस क्षेत्र में वे बड़े से बड़े विद्वान् या महापुरुष से लोहा लेने में आनाकानी नहीं करते थे। सन् 1922 में महात्मा गाँधी जी ने हिंदू-मुस्लिम समस्या पर एक लेख लिखते हुए आर्यसमाज, महर्षि दयानन्द और उनकी शिक्षाओं के बारे में तीखी समीक्षा की थी। आचार्य जी ने उत्तर में महात्मा जी को एक लेख लिखा और उसे "यंग इण्डिया" में ही प्रकट करने की सलाह दी। महात्मा जी ने आचार्य जी का लेख "यँग इण्डिया" में प्रकट करते हुए कहा कि आचार्य रामदेव जी ने अपने लेख में जिस वैदिक साहित्यान्वेषी विद्वानों की रचनाओं के संकेत दिए हैं, मैं तो उन विद्वानों के नामों का भी आज ही परिचय पा रहा हूँ। उनका उत्तर लिखना तो योग्यता के बाहर की बात है। इतना गहरा और विपुल था अध्ययन आचार्य जी का।

इतिहास शास्त्र आचार्य जी का सबसे अधिक प्रिय विषय था। विश्व-इतिहास के वे पारदर्शी आचार्य थे। भारतीय इतिहासज्ञों और पुराविदों में उनका अपना अनूठा स्थान था। भारतीय इतिहास को वे शुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखते थे। पाश्चात्य-विद्वानों ने भारतीय इतिहास के जिन जिन स्थानों को पक्षपात पूर्ण दृष्टि से देख कर उसके साथ अन्याय किया है उन स्थलों का आचार्य जी ने अकाट्य युक्तियों, प्रमाणों और साक्षियों द्वारा परिष्कार किया है। सत्यान्वेषी और निर्भीक इतिहास लेखक की भाँति उन्होंने विदेशी विद्वानों के उन विधानों की धज्जियाँ उड़ाने में कोई कसर नहीं रक्खी। इस दिशा में अपने देश के स्वर्गीय डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, और श्री रमेशचन्द्र

दत्त जैसे उद्‌भट आचार्यों की बातों का भी आपने आत्म सम्मान और दृढ़ता के साथ खण्डन किया है। हमारे देश में पहले पहल जब इतिहास लेखक और संशोधन का कार्य प्रारंभ हुआ उस समय के भारतीय लेखक पाश्चात्य लेखको द्वारा स्थापित किए हुए विधानों के ही अन्धानुयायी थे। उनमें एक प्रकार की हीनता और दीनता का भाव विद्यमान् था। इतना ही नहीं उनमें मौलिक विचारण व स्वतन्त्र मत-संस्थापन का भी साहस नहीं था। गतानुगतिकता के उस युग में इतिहास लेखन के क्षेत्र में आचार्य जी ने बड़े साहस के साथ ज्योतिर्धर का काम किया नीर क्षीर विवेक शीला आपकी प्रतिभा पूर्ण मनीषा द्वारा उन्होंने भारत के अतीत इतिवृत को उसके सत्य स्वरूप में रखने का महान् कार्य प्रारंभ किया। सन् 1909 की बात होगी कि आपके अगाध पाण्डित्य में से निकली हुई प्राचीन भारतीय-इतिहास की पहली जिल्द हिंदी-भाषा में प्रकट हुई! प्रकट होते ही भारतीय विद्वन्समाज में उसने एक अपूर्व हलचल मचा दी। देश के समर्थ पत्रकारों ने उसका अपूर्व स्वागत और अभिनन्दन किया। पुस्तक के महत्त्वपूर्ण अंशों का प्राँतीत भाषाओं में भाषान्तर भी हुआ। इस पोथी में आर्य-जाति के अतीत गौरव की गाथा लिखी गयी थी। बीसवीं शती के अरुणोदय में आत्म-दैन्य और आत्मावसाद में से जागती हुई प्रजा को जिस प्रकार के आत्म सम्मान की सामग्री से भरे हुए ऐतिहासिक ग्रंथ की आवश्यकता थी उसे प्रस्तुत करने का सबसे पहला प्रयत्न हमारे आचार्य रामदेव जी ने किया। देखते-ही-देखते एक वर्ष के अन्दर ही उस इतिहास की प्रथमबार की समस्त प्रतियाँ खप गईं और उसकी दूसरी आवृत्ति प्रकाशित की गई। हिंदी-साहित्य संसार तो ऐसे मौलिक और गौरववान् ग्रंथ को पाकर फूला नहीं समाया। जातीय जागरण की उस उषा में हिंदी-भाषा के अनेक सत्कवियों को आचार्य जी की इस इतिहास पोथी ने अपूर्व प्राण और प्रेरणा का पाथेय प्रदान किया।। हम देखते हैं कि ठीक उसी समय हमारी राष्ट्रीय-भारती के राष्ट्रीय कवि वरेण्य श्रीयुत् मैथिलीशरण जी गुप्त मानो इसी पोथी की छाया में बैठकर अपनी वीणा में "भारतभारती" का गौरव-गीत गाने लगे।

इन्हीं दिनों स्वातंत्र्यवीर सावरकर सुदूर अन्डमान की बंदीशाली में बैठे हुए देशभक्ति का अलख जगा रहे थे। भारत के प्रत्येक प्रान्त के राजनीतिक बंदी वहाँ के बंदीघर में विद्यमान थे। श्री सावरकर उनमें एक राष्ट्रलिपि, एक राष्ट्रीयभाषा और एक राष्ट्रीय ध्येय की चर्चा किया करते थे। श्री सावरकर जी अपनी आत्म-स्मृतियों में लिखते हैं कि उस समय प्रांतीय अभिमान वाले अनेक मित्र अपनी अपनी भाषा का पक्ष लेकर मेरे साथ वाद-विवाद किया करते थे। मैं उस समय गुरुकुल हरिद्वार से आचार्य रामदेव जी का इतिहास मंगाकर उनसे कहा करता कि देखो किस प्रकार हिंदीभाषा में मौलिक साहित्य का सर्जन हो रहा है।

आज लगभग आधीशती बीत जाने पर भी आचार्य जी का यह ग्रंथ-रत्न न केवल हिंदी-साहित्य के क्षेत्र में अपितु समग्र भारतीय साहित्य के क्षेत्र में अपनी अपूर्व

आभा से चमक रहा है।

आचार्य जी की यह हार्दिक इच्छा थी कि इसी शैली और दृष्टि से कई जिल्दों में भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास ग्रंथित किया जाय। वे अपने जीवन-काल में इस महान् इतिहास के तीन खण्ड ही लिख पाए। राष्ट्रीय शिक्षा के कर्मठ व्रतधारी, और आर्य-संस्कृति के इस प्रबल प्रचारक के स्वास्थ्य को बड़ी बड़ी प्रचार यात्राओं की परिश्रांति ने इतना अधिक संक्षिप्त कर दिया था कि वे अपने इस प्रिय कार्य को पूरा नहीं कर पाए। तो भी इसमें कुछ भी संशय नहीं है कि आचार्य वर की सृर्जनशील प्रतिभा को प्रकट करने वाले ये तीनों इतिहास खण्ड साहित्य-क्षेत्र में उनकी यश-पताका को चिरकाल तक फहराते रहेंगे।

इतिहास वेत्ता के रूप में महात्मा गाँधी जी आचार्य जी का बहुत सम्मान करते थे। एक बार की बात है कि गुजरात राष्ट्रीय विद्यापीठ (अहमदाबाद) के संचालक लोग वहाँ के दीक्षान्त सभारंभ (उपाधि-वितरणोत्सव) के व्याख्यान के लिए महात्मा जी से परामर्श कर रहे थे। महात्मा जी ने कहा राष्ट्रीय शिक्षा का इतिहास सुनना चाहते हो तो आचार्य रामदेव जी से अधिक उपयुक्त और कौन होगा। उस वर्ष विद्यापीठ के दीक्षान्त भाषण के लिए आचार्य जी ही बुलाए गए। उस बार विद्यापीठ के उत्सव पर आचार्य जी के व्याख्यान की बड़ी धूम और चर्चा रही। सभी श्रोता उससे अत्यधिक प्रभावित हुए। व्याख्यान का नियत समय बीत जाने पर भी महात्मा जी जैसे समय पालक ने भी आचार्य जी को 10-15 मिनट का समय अधिक प्रदान किया।

आचार्य जी का स्वाध्याय कमाल का था। या यों कहना चाहिए कि उन्हें स्वाध्याय का रोग था। वे पढ़े बिना नहीं रह सकते थे। दिन में, रात में, घर में, यात्रा में, रेलगाड़ी में, नौका पर या जहाज पर सर्वत्र ही उनकी झोली पुस्तकों से भरी रहती थी। यात्रा में और कुछ न मिलने पर वे रेलवे के टाइम टेबिल को ही आदि से अन्त तक पढ़ जाते थे। साथ ही उनकी स्मरण शक्ति और धारण शक्ति भी कमाल की थी। गुरुकुल विश्वविद्यालय विशाल ग्रन्थ शाला की पच्चीस हजार पोथियों में से आधे से अधिक उनकी पढ़ी हुई थीं। ऐतिहासिक पुस्तकों की घटनायें, तथ्य और सन् संवत् तक उनको याद रहते थे। भाषण करते हुए वे बड़े सहज भाव से उनका निर्देश कर जाते थे। इतना ही नहीं वे यहाँ तक बता सकते थे कि अमुक बात अमुक पुस्तक में दांई ओर या बांई ओर के पृष्ठ पर अंकित है। गुरुकुल के पुस्तकालय और गुरुदत्त भवन लाहौर के वैदिक पुस्तकालय में स्थित इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, तुलनात्मक धर्मशास्त्र, पुरातत्व विद्या आदि बिषयों पर अंगरेजी भाषा में छपी हुई शायद ही कोई ऐसी पुस्तक होगी जो आचार्य जी की स्वाध्याय की दृष्टि से बची रही हो। उन पुस्तकों के किनारे पर लगे हुए सहस्रों चिह्न आज तक भी उनके स्वाध्याय की साक्षी दे रहे हैं। संस्कृत-साहित्य की सर्वोत्तम पुस्तकों का भी वे अंग्रेजी

भाषान्तर द्वारा आस्वादन कर चुके थे । इन पंक्तियों के लेखक को उनके चरणों में बैठ कर सुविरित आँग्ल-साहित्यकार जान रस्किन की "सीसम एण्ड लिलीज" पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । एक बार पाठ पढ़ाते हुए आचार्य जी प्रसंगवशात् संस्कृत-साहित्य की सुंदरता की विशेषताओं की चर्चा करते हुए कहने लगे कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से मैंने विश्वसाहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचनाओं का पारायण और रसास्वादन किया है । उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि प्रकृति वर्णन में कादम्बरी में दिए हुए "अच्छोद सरोवर" वर्णन से बढ़िया कोई व्यक्ति किसी भाषा के साहित्य में मैंने नहीं देखा है । इसी प्रकार विश्व के नाट्य साहित्य में भवभूति के "उत्तर राम चरित्र" से बढ़िया कोई नाटक मैंने नहीं देखा है । अपने विशद स्वाध्याय का वर्णन करते हुए विनोद में वे यह भी कहा करते थे कि मैंने अंग्रेजी अनुवाद के रूप में "वैयाकरण सिद्धांत कौमुदी" और "महाभाष्य" का भी अवलोकन किया हुआ है ।

"वैदिक मैगजीन" मासिक पत्रिका के परिवर्तन में आचार्य जी के पास देश-विदेश से सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएँ आया करती थीं । उन सबका भी वे एक अन्वेषक की दृष्टि से अनुशीलन किया करते थे और उनमें से काम की बातें अपनी नोटबुक में लिख लेते थे या उनकी कतरन रख लेते थे । और उनकी नोटबुकें भी जेब में समा सकें ऐसी नहीं थी । पाँच सौ पन्ने वाले फुलस्केप आकृति के रजिस्टर उनकी नोटबुकों का काम दिया करते थे, जिन्हें वे प्रतिवर्ष दीपावली के अवसर पर मुंबई से मंगाया करते थे ।

प्राणी शास्त्र, भौतिक शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र आदि के सामयिक पत्रों में से भी वे अपने काम की बातें नोट करके समय आने पर बड़ी खूबी के साथ उनका उपयोग करते थे । अमेरिका की जीव दयाकारिणी संस्था का मुखपत्र "हमारे मूक प्राणी" और लंडन का प्रसिद्ध त्रैमासिक "फिलासफी" आज तक भी उनके नाम से नियमित आ रहे हैं ।

अपने विपुल स्वाध्याय, अनुशीलन, अनुभव और स्मरण शक्ति के कारण वे एक चलते-फिरते विश्वकोश के समान थे । आर्यजगत् में उनकी सी विपुल जानकारी वाला अध्येता शायद ही कोई हो । राजनीतिक और इतिहास शास्त्र की घटनाओं और तथ्यों के स्मरण रखने में विश्रुत पत्रकार स्वर्गीय सी० वाई० चिन्तामणि को ही उनकी कक्षा में खड़ा किया जा सकता है ।

साहित्यिक रचनाएँ पढ़ने का शौक भी आचार्य जी को कम नहीं था । एक बार की बात है कि गुरुकुलीय साहित्य परिषद् के जन्मोत्सव पर सभापति पद के लिए श्रीयुत्त प्रेमचन्द जी (हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार) को निमंत्रित किया गया । स्वागताध्यक्ष के स्थान पर श्री आचार्य जी आसीन थे । आचार्य जी ने अपने स्वागत-भाषण में एक सिरे से यूरोपियन भाषाओं के कहानी-साहित्य और उपन्यास साहित्य की ऐसी विशद कहानी कह डाली कि प्रेमचन्द जी विस्मय विमूढ़ रह गए ।

सभापति के भाषण के सिलसिले में वे कुछ भी बोलने के लिए साहस नहीं कर सके। वे कहने लगे कि आचार्य जी ने जितने कृतिकारों को रचनाओं की मीमाँसा और चर्चा अपने प्राग्-भाषण में की है उनमें से एक दर्जन साहित्यकारों के तो मैं नाम तक नहीं जानता — उनकी कृतियों का पढ़ना तो दूर की बात है। अन्त में प्रेमचन्द जी केवल विख्यात फ्रीज लेखक विक्टर ह्यूगो के "ला मिजरेवल" की कहानी सुनाकर रह गए! और जब प्रेमचन्द जी को यह ज्ञात हुआ कि उपन्यासों का अध्ययन तो आचार्य जी के लिए एक बहुत गौण-सा विषय है, तब तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

उसी सायंकाल को साहित्य परिषद् की ओर से एक सभा और आयोजित की गई। चर्चा का विषय था — भारत में हिन्दू, मुसलमानों की समस्या। श्री प्रेमचन्द जी मुसलमानों की ओर से उनकी माँगों और बातों के पक्ष में बोले। श्रोता वृन्द समझने लगी कि प्रेमचन्द का पक्ष काफी न्याय और पुष्ट है उसके बाद आचार्य जी की बारी आई। धारासंपात की तरह भाषण करते हुए और ऐतिहासिक प्रमाणों व युक्तियों की झड़ी लगाते हुए आचार्य जी ने श्री प्रेमचन्द जी के सभी विधानों को खण्ड-खण्ड कर डाला। और यह तो आचार्य जी का अपना मंजा हुआ विषय था! अतः खूब खुलकर बोले। यह था प्रेमचन्द जी और आचार्य जी का प्रथम सम्मिलन। प्रेमचन्द जी आचार्य जी के गंभीर ज्ञान और विशाल अध्ययन की हृदय से सराहना करते हुए थकते न थे। गुरुकुल से विदा होते हुए वे आचार्य जी से प्रेम भरी वाणी में कहने लगे साहित्य परिषद् के पुनरुत्थान के लिए मुझे आपने बुलाया था, पर मैं तो आपका शिष्य बनकर लौट रहा हूँ।

इतिहास के बाद आचार्य जी का अपना प्यारा विषय था दर्शनशास्त्र और तुलनात्मक धर्म-विज्ञान। दार्शनिक चर्चाओं और वाद-विवादों में आचार्य जी खूब दिलचस्पी लेते थे। अनेक विद्वत परिषद् दार्शनिक विषयों पर भाषण देने के लिए आपको निमंत्रित किया करती थी। एक बार नागपुर विश्वविद्यालय की दर्शन परिषद् ने आपको "विकासवाद" का व्याख्यान देने के लिए निमंत्रित किया। सभापति के पद पर डॉक्टर राजू आसीन थे। आचार्य जी भारतीय आर्यों की चिन्तन शैली के परम प्रेमी और पश्चिमी विकासवाद के सिद्धान्त के बड़े विरोधी थे। अपने व्याख्यान में आचार्य जी ने प्रबल प्रमाणों और तीव्र युक्तियों द्वारा "विकासवाद" की धज्जियाँ उड़ाईं। व्याख्यान के अंत में शंका के लिए श्रोताओं को सूचित किया गया। एक भी श्रोता शंका के लिए नहीं तैयार हुआ। अन्त में सभापति राजू महोदय ही खड़े होकर कहने लगे—बड़े विस्मय का विषय है कि इस बीसवीं सदी में एक वक्ता दर्शन परिषद् में आकर विकासवाद का खंडन कर जाता है और कोई चूं तक नहीं करता। क्योंकि श्रोतृ वृन्द में कोई वक्ता कुछ नहीं कह रहा अतः थोड़ी देर के लिए मैं ही सभापति का स्थान छोड़कर सामान्य सामान्य सदस्य के रूप में कुछ कहना चाहता हूँ। डाक्टर राजू कोई मामूली विद्वान नहीं हैं। आज कल तो शायद वे आंध्र विश्व विद्यालय में

दर्शन विभाग के अध्यक्ष हैं। डा० राजू ने शंका के विषय में और तो कुछ नहीं कहा, इतना ही निवेदन किया कि विद्वान वक्ता ने केवल डार्विन के विकास वाद का ही खंडन किया है। स्पेन्सर इत्यादि दार्शनिकों के सिद्धान्तों का खंडन करने पर ही विषय के साथ पूरा न्याय हो सकता है। श्री आचार्य जी ने अपने अन्तिम निवेदन में घोषित किया कि आप चाहेंगे तो अगली बार विकासवाद के समस्त पहलुओं की में मीमाँसा करूँगा। आज तो मेरा विषय केवल डार्विन के सिद्धान्त की व्यर्थता सिद्ध करना ही था। इस प्रकार के विचार-संघर्षों में जूझना तो आचार्य जी के बाँए हाथ का खेल था। यदि आचार्य जी को यूरोप और अमेरिका की साँस्कृतिक यात्रा का सुयोग मिलता तो निश्चय ही ये भारतीय संस्कृति और आर्य सभ्यता के एक योग्यतम संदेशहर सिद्ध होते।

राष्ट्रीयता और देश प्रेम आचार्य के रोम रोम में रमा हुआ था। जिस दिन से वे महर्षि दयानन्द जी की शिक्षाओं के प्रेमी बने उस समय से लेकर जीवन के अन्तिम श्वास तक वे मनसा, वाचा, कर्मणा—सर्वात्मना कट्टर स्वदेशी व्रत को निबाहते रहे। राजनीति में वे महात्मा गांधी के पंच बहिष्कार के सिद्धान्त के मानने वाले थे और गौरव के साथ अपने को अपरिवर्तनवादी कहा करते थे—अर्थात् पंच बहिष्कार में मैं किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहता। जिन दिनों आर्य समाज के विरुद्ध भारत सरकार ने यह दोषारोपणकिया था कि यह एक राजनैतिक संस्था है, उन दिनों आपकी स्वदेश प्रीति और रीति नीति के विषय में बिजनौर जिले के एक गोरे सिविलियन ने जो शब्द कहे थे वे आचार्य जी के उज्वल राष्ट्रीय प्रेम का ठीक परिचय देते हैं। उसने कहा कि जब तक महात्मा मुन्शीराम और प्रोफेसररामदेव जी हैं— इस संस्था का कोई शिक्षार्थी राजभक्त (LOYAL) हो ही नहीं सकता।

सन् 1931–32 में भारत में स्वाधीनता संग्राम की रणभेरी बजते ही आप भी अपने विश्वास के अनुसार उसमें सम्मिलित हुए थे और पर्याप्त समय तक आप बंदी घर में ब्रिटिश सरकार के मेहमान रहे थे। इस प्रकार क्या धर्म सुधार, क्या सामजिक नवसंस्कार क्या राष्ट्रीय शिक्षा उन्नयन, क्या राजनीतिक नवनिर्माण और क्या सांस्कृतिक जागृति की प्रवृतियाँ सभी क्षेत्रों में पूरी सत्य हृदयता, तप, त्याग और सभ्यता के साथ आपने अपने जीवन को भारत माता की सेवा में अर्पण कर दिया था। आपका समग्र जीवन ही समर्पण की एक जीवित कहानी है। ऐसे श्रीमत्, ऊर्जित और विमल जीवन की गाथा रचने वाले अपनी कीर्ति से भी अधिक महान् और महनीय अपने उस दिव्य धाम वासी शिक्षा गुरू को शतशत वंदनाएँ हैं।

श्री आचार्य रामदेव--एक महान आत्मा

(आचार्या विद्यावती सेठ, बी० ए०, देहरादून)

श्री आचार्य रामदेव जी एक उच्चकोटि के विद्वान्, दार्शनिक, तत्त्ववेत्ता, सुधारक और धर्माचार्य्य थे। उनकी प्रतिभा चतुर्दिगन्त थी। "होनहार वीरवान के होत चीकने पात" की कहावत के अनुसार छोटी सी आयु में ही उन्होंने अपने गुणों का प्रकाश करना प्रारम्भ कर दिया था; अपने घर में उन्होंने कई सुधार किये थे। वह अपनी धुन के पक्के और भावुक स्वभाव के थे। उनमें वाक् शक्ति इतनी तीव्र थी और अपने तर्क से दूसरों पर प्रभाव जमाना उनके लिए इतना सुगम था कि यदि सांसारिक भोगों और वैभवों की ओर उनकी रुचि होती तो वह एक बड़े भारी बैरिस्टर बने होते और शायद अतुल सम्पत्ति के मालिक बनते। किन्तु उनका ध्यान दूसरी ओर ही था, इसलिए छोटी सी आयु में ही अपने भाग्य का निर्णय देश, धर्म और जाति की सेवा के लिए कर लिया और जब श्री स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने काँगड़ी गुरुकुल के लिए कार्य-कर्त्ताओं के आह्वान का बिगुल बजाया तो वह एकाएक एक योग्य सैनिक की भाँति अपने कर्त्तव्य पथ की ओर अग्रसर हो गये और दिन-रात एक करके गुरुकुल को भारत की ही नहीं अपितु विशाल भारत की एक उच्चकोटि की संस्था का रूप देकर ही छोड़ा।

इसके अतिरिक्त उन्होंने बड़े अध्ययन और परिश्रम के पश्चात् भारतवर्ष का इतिहास लिखकर देशीय तथा विदेशीय सभी ऐतिहासज्ञों का प्राचीन भारत के प्रति दृष्टिकोण ही बदल दिया।

आचार्य जी ने अपने शुभ जन्म से माता की कोख पवित्र की, आर्य समाज का गौरव देश-विदेश में स्थापित कर आर्य समाज को धन्य बनाया और अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानों और लेखों द्वारा शिक्षा शास्त्रियों के सम्मुख भारत माता का मस्तिष्क समुन्नत कर उन्होंने आर्यजाति को कृत कृत्य किया। मुझे भी उनका परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य सर्व प्रथम लेखों द्वारा ही हुआ था।

सन् 1909 की बात है। मेरे पूज्य पिता जी का स्वर्गवास हो गया था। मैं उस समय एफ. ए. में पढ़ती थी। तब लखनऊ में एजबिला थावर्न कालेज ही उत्तरीय भारत में लड़कियों के लिए एक कालेज था। पंजाब और संयुक्त प्रान्त सभा की मैट्रिक पास लड़कियाँ आगे पढ़ने यहीं आया करती थीं। मेरे पिता जी ने भी मुझे और मेरी छोटी बहिनों को यहीं पर प्रविष्ट कराया था। मैं पहली हिन्दू कन्या थी जो इतनी

उच्चशिक्षा ले रही थी। संयुक्त प्रान्त के प्राय: सभी गणमान्य पुरुषों के साथ मेरे पिता जी का परिचय था अतः सभी के सामने मेरा नाम सदैव रहता था।

मैंने विधवा विवाह के विरोध में एक लेख लिखा, परिचितों ने उसे 'इण्डियन सोशल रिफारमर' में छपवा दिया। स्वर्गीय आचार्य जी ने उसे पढ़ा, मेरे सम्बन्ध में जानकारी चाही। यू० पी० प्रतिनिधि सभा के भूतपूर्व प्रधान राय साहब मदन मोहन सेठ उसी समय एम. ए. बने थे, वे वहीं से मेरे स्वर्गीय पूज्य पिता जी के परिचित थे अतः पिता जी की मृत्यु पर उन्होंने मुझे समवेदना का पत्र भेजा। उन्होंने ही श्री आचार्य जी को मेरा परिचय भी दिया था, यह मुझे पीछे पता लगा। श्री आचार्य जी ने मुझे 'वैदिक मैगजीन' और अपने इतिहास का प्रथम भाग भेजा और मेरे लेख पर कुछ विचार प्रगट किये। उसके बाद से मुझे वैदिक मैगजीन में कुछ लिखने की प्रेरणा करते रहे तथा 'प्रकाश' के विशेषांक के लिए भी लिखने को बाध्य किया।

दिसम्बर 1910 में बड़े दिनों की छुट्टियों में इलाहाबाद में बड़ी भारी प्रदर्शिनी हुई। वहाँ अखिल भारतीय आर्य सम्मेलन या सर्वधर्म सम्मेलन था, मुझे ठीक याद नहीं क्या था। हम लोग भी गये थे। पर मुझे पढ़ना था, मैं जल्दी लौट आई थी। 1911 की जनवरी के प्रथम सप्ताह में वहाँ से लौटते हुए श्री प्रोफेसर रामदेव जी (तब उन्हें इसी नाम से बुलाया जाता था) लखनऊ आये, मुख्यतया मुझे मिलने के लिए, शायद एक आध घंटा ठहरे होंगे। किसी प्रसिद्ध नेता से जैसे कोई कालेज की लड़की मिलती है उसी तरह मिलकर मैं कालेज चली गई। उस समय मैं उन्हें 40 वर्ष की आयु का समझती थी।

नवम्बर 1912 में श्री डॉक्टर रामजीनारायण जी डी०एस०सी०पी०एच०डी० असिस्टैन्ट केमिस्ट लायलपुर कृषि कालेज जो गत दो तीन वर्ष हुए रिटायर हुए हैं— उनके साथ मेरी बहिन ओमवती जी एम०ए०एम०ओ०एल० शास्त्री का विवाह सम्पन्न हुआ। उसमें श्री आचार्य जी ने भाई का कर्त्तव्य पालन किया था और उस समय से लेकर उनका स्थान हमारे परिवार में बड़े भाई का रहा। श्री पूज्या माता जी से लेकर भाई बहिन सभी ने उन्हें परिवार का अंग बनाया और सब कार्यों में उनकी सम्मति सब के लिए मान्य होती थी।

श्री आचार्य जी का हम लोगों को गुरुकुल आने का निमंत्रण हुआ। बी० ए० की परीक्षा देने के बाद 1913 में मैं और श्रीमती ओमवती जी श्री डॉक्टर जी के साथ काँगड़ी गये, दो चार दिन वहाँ ठहर कर मंसूरी आये, श्री आचार्य जी भी आये और उस समय से लेकर और भी घनिष्टता होने लगी।

मैं उस वर्ष बी० ए० में असफल हो गई। मैंने कहा— 'अंग्रेजी पढ़ना व्यर्थ है, अब नहीं पढ़ूंगी। श्री आचार्य जी ने कहा—'नहीं, पढ़ना चाहिए'। मैंने कहा 'आप तो अंग्रेजी शिक्षा के विरोधी हैं फिर आप क्यों बाधित करते हैं?' उत्तर मिला—

'जिन्होंने कार्यक्षेत्र में उतरना है उन्हें, और खास करके जब तुम इतना पढ़ चुकी हो तुम्हें एक बार पुनः प्रयत्न करना होगा। मेरे पास ठहरो मैं पास करा दूंगा" खैर, वैसा ही हुआ।

एक वर्ष के उनके सम्पर्क में रहने पर मैंने देखा कि श्री आचार्य जी 4, 4।। बजे के बाद कभी सोते न थे। रात्रि में चाहे देर भी हो जाय, पर ब्रह्म मुहूर्त्त में उठते; शौच आदि नहाना धोना, फिर वेद का स्वाध्याय करते। वेद या तत्सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ अंग्रेजी, संस्कृत आदि के इकट्ठा सामने पड़े रहते थे। उसके एक घंटे बाद डायरी लिखनी, फिर कोई अन्य ग्रन्थ पढ़ते। प्रायः करके जो पढ़ते थे मुझे भी बताते रहते थे। पठन पाठन में उन्हें बड़ा ही आनन्द आता था।

जब से हवन शुरू किया था, कभी अनध्याय न होने देते। उन्हें अपने व्रत का बड़ा ध्यान रहता था। काँगड़ी गुरुकुल के आचार्य और मुख्याधिष्ठाता के पद को सुशोभित करते हुए और तत्सम्बन्धी गुरुतम कार्यभार को वहन करते हुए तथा जटिल समस्याओं को सुलझाते हुए भी उनका एक पैर बाहर रहता था। हर समय समाजों के तार उत्सव को सफल बनाने के हेतु उन्हें बुलाने के लिए आते ही रहते थे और जहाँ तक मनुष्य की शक्ति से हो सकता था वह कोई मौका छोड़ते न थे।

गुरुकुल के वार्षिकोत्सव को धन, जन से सम्पन्न और बड़े महापुरुषों को बुला कर आकर्षक बनाना उन का विशेष लक्ष्य होता था। उनके लिए कांगड़ी गुरुकुल जीवन का एक मात्र लक्ष्य सा था।

वे स्वर्गीय पंडित गुरुदत्त जी के बड़े भक्त थे, छुटपन में उनकी गोद में बैठकर उन से आशीर्वाद प्राप्त किया था और उन्हीं के समान वक्ता बनने की धुन बचपन से ही उन में थी। संस्कृत का विशेष अध्ययन न करने पर भी वह समझते बहुत थे और जब तक कोई बात पूर्णतया स्पष्ट न हो जाए छोड़ते नहीं थे, दिमाग में वही बात घूमती रहती थी। उनका अध्ययन अथाह था।

श्री आचार्य जी के हृदय में अपने आर्य समाज के वृद्ध पुरुषों के लिए बड़ा मान था। आर्य समाज के सन्देश का देश, विदेश में प्रचार करना उनका लक्ष्य था और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को सब जगह फैलाना ध्येय था। इसीलिए वह चौमुखी योजनायें कर रहे थे। गुरुदत्त भवन, उपदेशक महाविद्यालय, आर्य विद्यार्थी आश्रम (जो अब बन्द हो चुका है) काँगड़ी गुरुकुल का वर्तमान् स्वरूप और कन्या गुरुकुल बहुत कुछ उन्हीं के ही दिमाग की उपज हैं।

परोपकारिणी सभा अजमेर के सदस्य के नाते तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के द्वारा उन्होंने आर्य समाज की सार्वभौम उन्नति में बड़ा हाथ बंटाया। आर्य समाज के बड़े-बड़े धुरंधर पंडित और प्रान्तीय नेतागण भी हमेशा आचार्य जी से हर

एक जटिल समस्या पर परामर्श करते रहते थे। आर्य सामाजिक क्षेत्र में भारत और विशाल भारत में कोई भी जटिल समस्या उनकी सम्मति लिए बिना हल नहीं होती थी। अपने समय में वे आर्य समाज के हृदय के सम्राट् थे। किन्तु काल की गति विचित्र है। मनुष्य कुछ सोचता है, विधि कुछ कर दिखाता है। दैव दुर्विपाक से पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा तथा गुरुकुल काँगड़ी को, गृह कलह ने—जिससे महाभारत की भाँति प्रिय मित्र और साथी कार्यकर्त्ता लोग, धुरंधर विद्वान् और नेता एक दूसरे के विपक्षी बन गए थे—उनके कोमल और विश्वासी हृदय को बहुत आघात पहुँचाया और जितना ही प्रयत्न उन्होंने उसे हटाने का किया उतना ही उल्टा असर हुआ और उसके परिणाम स्वरूप उनके जीवन का अन्त भी इतनी थोड़ी आयु में और पक्षाघात जैसे दुष्ट रोग से हुआ।

श्री आचार्य जी को श्री पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी से बहुत प्रेम था और हृदय में उनके लिए बड़ी भक्ति और मान था। यद्यपि कार्य क्षेत्र में पीछे उनके साथ इनका मतभेद बहुत अधिक हो गया था। श्री स्वामी जी के स्वर्गवास वाले दिन जलूस के समय श्री आचार्य जी देहली में नहीं पहुँच सके थे। किन्तु जब अन्त्येष्टि संस्कार समाप्त हो चुका तब पहुँचे तो रेल से उतरते ही सीधे श्मशान में गये। चिता के पास जाकर आँसुओं के पुष्पों से श्रद्धांजलि दी फिर पीछे घर आये, नहाये धोये। खाना भी उस दिन नहीं खाया। कहा कि यद्यपि मेरे और स्वामी जी के मतभेद थे परन्तु मुझे उनसे बड़ी आत्मीयता थी। मैं आज उनके वियोग को बहुत अनुभव करता हूँ और उनके शानदार अन्त को जो कि देहली के मुगल सम्राटों को भी दुर्लभ था किसी के लिए भी स्पर्धा का विषय समझता हूँ।

श्री आचार्य जी का यदि मतभेद किसी से होता था—और प्रायः होता ही रहता था— तो वह बलपूर्वक अपने मत की पुष्टि करके उसे अपने पक्ष में कर लेने का पूरा यत्न करते थे चाहे कोई भी हो और सार्वजनिक कार्य में मत भेद रखते हुए भी दिल में विपक्षी के लिए बुरा भाव कभी नहीं रखते थे और अपने सहकारियों का भी बड़ा मान करते थे। उनमें ईर्ष्या का भाव छू तक नहीं गया था और स्वार्थ शब्द तो उनके कोश में ही न था। इसलिए वह जो कुछ भी विरोध करते थे वह हित की भावना से होता था।

आर्य समाज से बाहर राजनैतिक तथा शासन विभाग के हमारे देश के बड़े-बड़े नेता, सुधारक और कार्यकर्त्ता भी उनके मित्रों में से थे और भारत क्या संसार के हृदय सम्राट श्री पूज्य बापू के लिए उनके हृदय में बड़ी भक्ति थी और शायद यह अत्युक्ति न होगी यदि यह कहा जाय कि बापू को भी उनकी चिन्ता रहती थी। श्री आचार्य जी में बुद्धि की प्रखरता के साथ श्रद्धा और भक्ति का विचित्र सम्मिश्रण था और जितनी अधिक विद्या थी उतनी ही अधिक मात्रा में विनम्रता भी थी।

शिक्षिता बहिनों के प्रति उनका विशेष आकर्षण था और भारत कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू की कृतियाँ तथा उनकी भाषण शैली आदि उन्हें बहुत पसन्द थी। बहुत देर हुई एक बार उनके हाथ श्रीमती जी का लिखा हुआ श्री स्वर्गीय गोखले जी का Appreciation (श्रद्धाञ्जलि) आया। उसे एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा और फिर मुझे कहने लगे (मैं उन दिनों वहीं उनके पास थी) कि कैसा सुन्दर चित्रण इसमें है। मरने के बाद यदि किसी का appreciation लिखा जाय तो ऐसा होना चाहिए।

श्री आचार्य जी को पुस्तकें खरीदने और पढ़ने का बड़ा शौक था। बड़े-बड़े उच्च लेखकों में से किसी की कोई पुस्तक निकली हो और वह उन्होंने न पढ़ी हो ऐसा सम्भव न था। तन पर कपड़ा है या नहीं, भोजन किया है या नहीं इसकी चिन्ता नहीं। परिवार की आवश्यकतायें पूरी हो रही हैं या नहीं यह भी ध्यान नहीं – कोई ध्यान खींच दे तो ठीक, परन्तु पुस्तकें तो कबाड़ियों की दुकान पर से भी छाँट कर ले आते और पढ़ते। यदि उनके घर में अग्नि और बाढ़ से हानि न होती तो उनका पुस्तकों का संग्रहालय आज बड़ा सुन्दर, वांछनीय और लाभदायक वस्तु होता।

कुछ पुस्तकों की हस्तलिपि भी उन्होंने तैयार की थी, कुछ की सामग्री एकत्र थी। कुछ तो उपर्युक्त अग्नि और बाढ़ की भेंट हो चुकी थी किन्तु पिछले दिनों जो परिश्रम किया था वह तो कहीं होगा ही। सभा के कार्यालय में या काँगड़ी गुरुकुल में। उन्हें छपा कर जनता के सन्मुख लाना चाहिए।

श्री आचार्य जी ने अपने शरीर के साथ बड़ा कड़ा व्यवहार किया और जहाँ वह अन्य सब वस्तुओं की कदर करते थे शरीर की रत्ती भर भी नहीं, इसलिए उसने इनसे बदला लिया। खेद है कि उन्होंने तो अपनी चिंता नहीं की पर हमने भी उनका मूल्य उस रूप में नहीं आँका जिस रूप में राजनैतिक क्षेत्र में हम देख रहे हैं कि लोग अपने नेताओं का ध्यान रखते हैं। यदि हम अपने नेता को आर्य समाज की एक बड़ी बहुमूल्य निधि समझ कर उनके शरीर की रक्षा का यथोचित ध्यान रखते तो बहुत कुछ सम्भव था कि आर्य समाज के हृदय सम्राट उस त्याग मूर्ति नेता का सिंहनाद अब भी गूंजता सुनाई पड़ता और आर्य समाज एक दम शून्य सी न हो जाती। खैर, जो हुआ सो हुआ। पर अपने स्वर्गीय नेताओं और मान्य पूर्वजों का आदर करना अपना ही आदर करना होता है। यदि आचार्य जी के प्रति अन्यथा भाव रखने वाले भी उनके भक्तों के साथ कंधे से कंधा मिला कर, भक्ति से प्रेरित न सही, नीति से ही उनके स्मारक को बनाना चाहते तो आज छः वर्ष तक आर्य समाज के हाथ कोई बड़ी चीज आ जाती। देशबन्धु स्मारक, टैगोर स्मारक, सेठ जमनालाल स्मारक और श्री माता कस्तूरबा स्मारक बन गए हैं, बन रहे हैं। तब क्या आर्य समाज ने कृतघ्नता का ठेका ले रखा है जो वह अपने स्वर्गीय नेता जो हथेली पर जान लिए समाज की सेवा करता रहा—उसकी पुण्य स्मृति में कुछ न करता।

मुझे पता नहीं कि श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की क्या-क्या कार्य करने की योजना है। मैं तो केवल एक आर्य समाजी के नाते यह विनम्र निवेदन या प्रस्ताव आर्य जनता के सम्मुख रखना चाहती हूँ कि इस महोत्सव पर श्री आचार्य जी की पुण्य स्मृति स्थापित करके और बहुत अच्छी धनराशि एकत्र करके 'वैदिक मैगजीन को पुष्कल धन से पुष्टकर पुनर्जीवित करने का दृढ़ संकल्प करे और सार्वदेशिक सभा दीवान हाल देहली में एक विशाल पुस्तकालय जो स्वर्गीय आचार्य जी के संग्रहालय की स्मृति दिलाता रहे बनाये जिसमें सभी प्रकार के उच्चकोटि के ग्रन्थ हों। इस प्रकार सम्भव है कि उच्चशिक्षा प्राप्त नवयुवकों के साथ सम्पर्क स्थापित कर हम आर्य समाज के प्रति उनके हृदय में विशेष श्रद्धा और प्रेम उत्पन्न कर उन पर ऋषि दयानन्द की छाप विशेष रूप से डाल सकें। भगवान करें हमारे देश के नवयुवक और नवयुवतियाँ पुनः इस तरफ आकर्षित हों और आर्य समाज के शून्य से वातावरण में "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि··सृजाम्यहम्" के अनुसार पुनः कोई सिंहनाद करने वाला सम्मुख आवे।

आचार्य रामदेव जी और स्त्रीशिक्षा

(आचार्या चन्द्रावती जी एम०ए०बी०टी० कन्या-गुरुकुल देहरादून)

आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व पंजाब प्रान्त के जालन्धर नगर में 15-16 वर्ष का एक युवक, ग्रीष्म ऋतु की तपती हुई दोपहरी में सड़क के किनारे पर एक वृक्ष के नीचे बगल में बस्ता दबाए बैठा था। उसकी मुखाकृत्ति चिन्ताग्रस्त तथा उदासीपूर्ण थी, किन्तु फिर भी उसका चेहरा एक अपूर्व तेज से चमक रहा था। इतने में ही एक पथिक उधर से आ निकला। उसने युवक से उसके इस प्रकार अकेले बैठे रहने का कारण पूछा। युवक ने उत्तर दिया – "पिताजी ने मुझे घर से और कॉलिज के प्रिंसिपल ने मुझे श्रेणी से निकाल दिया है। 'कहाँ जाऊँ', यही सोच रहा हूँ। मुझे यह परिचित जालन्धर नगर भी एक बीहड़ जंगल के समान प्रतीत हो रहा है, इसीलिए इस वृक्ष के नीचे बैठ गया हूँ।" पथिक के घर तथा कॉलिज से इस प्रकार बहिष्कृत किए जाने का कारण पुन: पूछने पर युवक ने कहा— "मैं अपने घर में पर्दे की प्रथा को बन्द करना चाहता हूँ। मैंने अपनी पत्नी तथा बहिन को पर्दे के अन्दर बन्द रखने का विरोध किया जिसका दण्ड मिला है मुझे घर तथा कॉलिज दोनों से निष्कासन।" पथिक के मुख से सहसा निकल पड़ा—"इतने निर्भीक, साहसी, पीड़ित नारी-जाति के लिए वेदना का यह अथाह सागर अन्तर में छिपाये, क्रान्ति के अग्रदूत कौन हो, तुम युवक ? युवक ने उत्तर दिया—"मैं यहाँ कॉलिज में तृतीय वर्ष में पढ़ता हूँ, मेरा नाम रामदास है।"

आचार्य जी तथा स्त्रीजाति

विद्यार्थी रामदास को आचार्य रामदेव बनने में अभी कई वर्षों की देरी थी। उनके सम्बन्ध में "होनहार वीरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत सोलह आना चरितार्थ होती थी। विद्यार्थी रामदास को गुरुकुल विश्वविद्यालय जैसी बिशाल संस्था का आचार्य प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त उच्चकोटि का विद्वान् और आर्य समाज का महान नेता बनाने वाले सम्पूर्ण गुण उनमें बचपन से ही अंकुरित हो चुके थे। नारी जाति का अशिक्षा, लोकाचार आदि परम्परागत रूढ़ियों तथा अन्ध-विश्वासों की चहारदीवारी से उन्मुक्त कर विशुद्ध आर्य संस्कृति के जागरूक वातावरण में लाकर खड़ा कर देना उनके जीवन का लक्ष्य था। तेरह वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हुआ था। परन्तु उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को उन दिनों में शिक्षा प्राप्त करने

के लिए, बहुत जबरदस्त विरोध के होते हुए भी, कन्या-महाविद्यालय में प्रविष्ट करा दिया और पाँच-छसाल तक उन्हें वहीं रखा।

आचार्य जी के अन्दर युवावस्था से ही अत्याचार को सहन न करने की बड़ी उग्र प्रवृत्ति थी। जहाँ कहीं भी वे अत्याचार होते देखते वे तुरन्त उसका प्रतिकार करने में तत्पर हो जाते थे। एक बार अचानक उनको अपने एक प्रगाढ़ मित्र की पत्नी का निमन्त्रण मिला। वे तुरन्त उनकी सहायतार्थ पहुँच गए। मित्र की पत्नी में कुछ समाज सेवा की लग्न थी। वह स्त्रीजाति की सेवा करना चाहती थी। घर के लोग उसका इस प्रकार बाहर जाकर काम करना अपनी कुलमर्यादा पर बड़ा भारी कलंक समझते थे। वह देवी बहुत संकट में थी कि वे अपनी अन्तरात्मा की आज्ञा माने या घर वालों की। घर वालों ने 'अल्टीमेटम' दे दिया था कि या तो वह उनकी आज्ञा माने या घर छोड़ दे। आचार्य रामदेव जी ने उसे सम्पत्ति दी कि अपनी समाज-सेवा-सम्बन्धी इच्छाओं को क्रियात्मक रूप देने का उनको पूरा अधिकार है और इस विषय में उन्हें अपनी अन्तरात्मा की आवाज ही माननी चाहिए। घर वालों ने घोषित कर दिया था कि यदि उक्त देवी को सामाजिक सुधार सम्बन्धी कार्य करने हैं तो घर में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। उस समय आचार्य जी बोले – "तुम अपना यह घर छोड़ दो। आज मेरा घर ही तुम्हारा घर है।"

उपरोक्त घटनाएँ आचार्य जी के निर्भीक, सुधारप्रिय, क्रान्तिकारी हृदय की केवल एक झाँकी हैं, धुँधला-सा प्रतिबिम्ब हैं। ये घटनायें जो इस समय बिल्कुल साधारण सी मानी जाती हैं, आज से पचास वर्ष पूर्व असाधारण थीं। यह वह समय था, जबकि आर्य समाज के बड़े-बड़े नेताओं में भी स्त्रियों पर किये जाने वाले अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस न था। वे कहते कुछ थे और करते कुछ और थे। उनके शब्दों और क्रिया में आकाश-पाताल का अन्तर था। समाज सुधार व्याख्यानों और प्लेटफार्म तक ही सीमित था, क्रियात्मक जीवन पर उसका कुछ प्रभाव न था। स्त्रीशिक्षा के धुंआधार व्याख्याता और शाब्दिक समाज-सुधारक अपने घरों में स्त्रीशिक्षा को प्रचलित करने का साहस न रखते थे। पर्दे की प्रथा को तिल भर भी हटाने की उनमें हिम्मत न थी। ऐसे अन्धविश्वास और निष्क्रियता से ओतप्रोत वातावरण में भी विद्यार्थी रामदास का अपने घर से पर्दा हटाने के खातिर घर छोड़ कर निकल खड़ा होना, अपनी नवविवाहिता पत्नी को शिक्षा ग्रहण करने के लिए विद्यालय में भेजना, उत्साही स्त्रियों को कार्यक्षेत्र में बढ़ने की प्रेरणा देना, जहाँ उनकी निर्भीकता एवं साहस के परिचायक हैं, वहाँ नारी जाति के प्रति उनकी प्रगाढ़ सहानुभूति और क्रान्तिकारी परिवर्तनों द्वारा समाज-सुधार की उत्कट इच्छा के भी द्योतक हैं।

किन्तु वह आदि स्रोत कौन-सा था, जहाँ से आचार्य जी के मस्तिष्क को यह प्रेरणा मिली, जिसके द्वारा उन्होंने अपना समस्त जीवन 'प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा' के

पुनरुद्धार के लिए, प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रचार के लिए, स्त्रीशिक्षा को अनुप्राणता के लिए समर्पण कर दिया।

ऋषि दयानन्द का प्रभाव

सदियों से भारत पराधीनता के पाश में जकड़ा पड़ा था। कुशिक्षा भारत की जड़ को खोखला करने में घुन का काम कर रही थी। इस समय तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हो चुकी थी। उसका सन् 1833 का विख्यात शिक्षा-सम्बन्धी चार्टर निकल चुका था। जिसमें लार्ड मेकाले द्वारा भारत में अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य इस प्रकार वर्णित था—"हम ऐसी शिक्षा प्रणाली प्रचलित करना चाहते हैं जिससे भारत के शिक्षा-प्राप्त नवयुवक रंग-रूप में हिन्दुस्तानी रहें किन्तु रुचि, विचार तथा नैतिकता की दृष्टि से पूरे अंग्रेज हो जाएं।" यही नीति भारत में .00 वर्ष तक कायम रही। अतः उस समय शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की शक्तियों को विकसित करने के स्थान में उन्हें सदा के लिए अवकुण्ठित कर देना था। भारतीयों को उनकी संस्कृति तथा देश-प्रेम से विमुख करके उन्हें गुलाम बना देना था। शिक्षा का माध्यम भी विदेशीय भाषा था। यह शिक्षा प्रणाली प्रारम्भ से अन्त तक अस्वाभाविक तथा अभारतीय थी। सन् 1911 में फेल्प् सनामक एक अमेरिकन शिक्षा शास्त्री ने भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में लिखा था—"विद्यार्थियों को स्पेन्सर, मिल्टन तथा शेक्सपियर आदि की पुस्तकें तो पढ़ाई जाती हैं पर दीवारों पर हिन्दू ग्रन्थों का एक वाक्य तक लिखा हुआ नजर नहीं आता। देखने वालों को यही अनुमान होता है कि हिन्दुस्तानियों को अंग्रेज बनाया जा रहा है।" इस प्रकार युग-युग से संचित, प्राचीन साहित्य से पोषित हमारी सांस्कृतिक भावनाएँ पिछले पहर के स्वप्न की भाँति अस्पष्ट होती जा रही थीं। अतएव उस समय ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता थी जो युगवाहिनी आर्य सभ्यता तथा संस्कृति से ओत-प्रोत हो। उन भारतीय युगदर्शी नेताओं में जिनका ध्यान इस ओर गया—सबसे प्रमुख आर्य समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द थे। इनके व्याख्यानों ने भारतीय समाज के सभी क्षेत्रों में नवीन विचार-धारा प्रवाहित कर दी थी। शिक्षा-क्षेत्र में इस विचार-धारा ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का रूप लिया। अभी तक स्त्रियों की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। ऋषि दयानन्द ने श्रुतियों से प्रमाण दे दे कर स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया। पर्दे तथा बाल विवाह के विरुद्ध भी उन्होंने जोरदार आवाज उठाई। ऋषि की इस युगवाहिनी पुकार ने ही विद्यार्थी रामदास के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन लाकर उन्हें आचार्य रामदेव बना दिया।

स्त्री-शिक्षा-जीवन का उद्देश्य

ऋषि दयानन्द के प्रभाव में आकर आचार्य रामदेव जी के जीवन का दृष्टिकोण ही बदल गया। उन्होंने अच्छी-से-अच्छी सरकारी नौकरियों को ठुकरा दिया और 22 वर्ष की अवस्था में महात्मा मुंशीराम जी के साथ गुरुकुल काँगड़ी में आ गये।

यहीं से उनके सार्वजनिक जीवन के सुनहले इतिहास का प्रथम अध्याय प्रारम्भ हुआ। वैदिक आदर्शों की आधार शिला पर आर्यजाति के उत्थान की भव्य इमारत का निर्माण ही आचार्य जी के जीवन का महान लक्ष्य बन गया। किन्तु आर्य जाति का सुधार तब तक संभव न था जब तक कि आर्य जाति का मर्मस्थल स्त्रीजाति-भग्न तथा पीड़ित था। इस समय स्त्री-जाति अत्यन्त पतितावस्था में पड़ी, भयंकर सामाजिक व्याधियों का शिकार बनी हुई, दुःखभरी आहें ले रही थी। स्त्री सामाजिक कुप्रथाओं तथा पुरुष की स्वेच्छाचारिता का शिकार बनी हुई थी। वह संपूर्ण मानवीय जन्मसिद्ध अधिकारों से वंचित, सब प्रकार की जिम्मेदारियों से लदी हुई किन्तु हर प्रकार की योग्यता से शून्य, घर के अन्दर बैठी थी। किन्तु घर में गृहिणी होते हुये भी इनकी स्थिति परिचारिका से बढ़ कर न थी। इस प्रकार वह सहिष्णुता की देवी, त्याग की प्रतिमा बनी हुई, अथाह व्यथा, तथा पीड़ा को आँचल में छिपाये अत्यन्त करुणाजनक जीवन व्यतीत कर रही थी। आचार्य का भावुक हृदय नारी जाति की यह दुर्दशा देख कर तिलमिला उठा, उनकी अन्तरात्मा जगदम्बा के प्रति इस हृदयहीन अवहेलना को देख कर संपूर्ण रूप से विद्रोही हो उठी। शीघ्र ही उनका यह दृढ़ निश्चय हो गया कि शिक्षा और केवल शिक्षा से ही स्त्री का कायाकल्प संभव है; शिक्षा ही सदियों से सोई-पड़ी निश्चेष्ट नारी के अन्दर जीवन का संचार कर सकती है; यही उसको आत्म-निर्भयता तथा स्वावलम्बन का पाठ पढ़ा सकती है।

स्त्री-शिक्षा का दृष्टिकोण

स्त्री-शिक्षा ही मृत-प्राय आर्यजाति के लिये संजीवनी का कार्य कर सकती है, ऐसा निश्चय हो जाने पर अब अगला प्रश्न इस आर्य जाति के सुधारक के सम्मुख था—कौन-सी शिक्षा अभीष्ट प्रयोजन की सिद्धि कर सकती है ? क्या प्रचलित शिक्षा-क्रम, जो विदेशीय है, जो भारतीयों को निकम्मा और विलासप्रिय बना रहा है, जिसका भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं, जो भारतीय युवकों की राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने के बजाय उसको लुप्त करता जा रहा है, भारतीय नारी के उत्थान में सहायक हो सकता है ? यदि नहीं तो फिर कौन-सी शिक्षा आचार्य की नारी की कल्पना को मूर्त रूप दे सकेगी ? किन्तु नारी का वह कौन-सा चित्र था जिसे वे शिक्षा के उपकरणों की वास्तविकता की पृष्ठभूमि पर चित्रित करना चाहते थे ?

आचार्य जी चाहते थे कि वर्तमान भारतीय नारी प्राचीन वैदिक समय की देवियों का अनुकरण करे। प्राचीनकाल की तरह वह आत्मिक, शारीरिक और मानसिक शिक्षा प्राप्त कर विश्व के कीर्ति मंदिर में प्रतिष्ठा लाभ करे; गार्गी और भारती के समान विदुषी बन कर शास्त्रार्थ में याज्ञवल्क्य और जगद्गुरु शंकराचार्य के समान विद्वानों को पराजित करे; लोपामुद्रा और राजकुमारी घोषा के समान ऋषिका बने; गृह में साम्राज्ञी का पद प्राप्त करे, गौतम, पताञ्जलि, दयानन्द, शिवाजी जैसे महापुरुषों की जननी बने; समाज तथा देश के विशाल कार्य-क्षेत्र में प्रवेश कर पुरुषों

से लोहा ले, गृह-जीवन और सामाजिक-जीवन में पुरुषों की समकक्ष हो; उच्चशिक्षा द्वारा, अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों तथा भावनाओं को विकसित कर गृहस्थ जीवन को सरस तथा मधुर बनाये। उसके जीवन में पुष्पों का माधुर्य्य और भ्रमर का संगीत हो किन्तु उसमें सागर का गाम्भीर्य, हिमाचल की मर्यादा, सूर्य का तेज और वसुधा का त्याग हो। उसमें केवल आकाश-गंगा की नीलता को देखने और नक्षत्रों के संगीत को सुनने की ही योग्यता न हो किन्तु भारतीय समाज में मन्दाकिनी बहाने तथा देश का पथ प्रदर्शन करने हेतु ध्रुव बन जाने की भी उसमें क्षमता हो।

स्त्री-शिक्षा की रूप-रेखा पर परीक्षण

नारी के इसी चित्र को आचार्य भारतीय-समाज के चित्र पट पर उतारने के लिये उत्सुक थे। इसी कल्पना के आधार पर स्त्री-शिक्षा की रूप-रेखा निर्धारित होनी थी—अतः इस दिशा में परीक्षण करने का निश्चय हुआ। संकल्प ने शीघ्र ही क्रिया का रूप ले लिया। बस, फिर क्या था, आचार्य जी का घर ही एक परीक्षण शाला बन गया। इनके घर पर ही एक कन्या पाठशाला खुल गई; यह कन्या-शाला कई वर्षों तक श्रीमती आचार्या विद्यावती सेठ की अध्यक्षता में चलती रही और यहाँ शिक्षा-संबन्धी परीक्षण होते रहे।

इस समय तक गुरुकुल काँगड़ी को खुले पर्याप्त समय व्यतीत हो चुका था। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली अपनी परीक्षणात्मक अवस्थाओं से गुजर कर अपनी सफलता और उपयोगिता से देश का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर चुकी थी। 'स्नातक' शब्द के इर्द-गिर्द एक विशेष-आकर्षण-सा और विचित्र धार्मिक भावना जुड़ चुकी थी। आर्यजनता की आँखों में 'स्नातक' शब्द आर्य धर्म तथा वैदिक संस्कृति के आदर्शों का प्रतीक था। आचार्य जी स्वयं वैदिक आदर्शों के दृढ़ उपासक थे। ऐसी अवस्था में वैदिक गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को स्त्री-जगत् में भी एक आजमाइश देने का विचार उठना स्वाभाविक ही था। इस दृष्टि कोण को लेकर आचार्य जी गृह-पाठशाला को गुरुकुल के रूप में विकसित करने की योजना करने लगे। इस योजना को क्रियात्मक रूप देने का कार्य भार पुनः आचार्या विद्यावती जी को सौंपा गया। आचार्या जी उस समय की भारत की गिनी-चुनी उच्चशिक्षित महिलाओं में से थीं। युक्तप्राँत में बी.ए. की उपाधि प्राप्त करने वाली आप प्रथम महिला थी। उच्च-शिक्षा के साथ ही साथ आप में वैदिक धर्म में अटल श्रद्धा तथा वैदिक आदर्शों से प्रगाढ़ानुराग था। स्त्री जाति के दुखों की अनुभूति ने आपको आजन्म अविवाहित रहकर सेवा व्रत लेने को बाधित किया। तब से आज तक सेवा आपके जीवन का महान लक्ष्य और त्याग उनके पुण्यतम जीवन का मूल-मंत्र है। इनके तथा आचार्य रामदेव जी के आदर्शों में जहां समानता थी, वहां इन दोनों के स्त्री शिक्षा-सम्बन्धी विचारों में भी पर्याप्त सामञ्जस्य था। अतः इस समय श्री विद्यावती जी जैसी उच्चशिक्षिता, धर्मपरायण त्याग की मूर्ति—

महिला का सहयोग आचार्य जी के लिये वैदिक वरदान रूप में मिला। इस सहयोग के कारण ही आचार्य जी को अपनी योजना को क्रियात्मक रूप देने में वह सफलता मिली जिस पर केवल आर्य समाज ही नहीं किन्तु सारा देश गौरव कर सकता है।

कन्या-गुरुकुल

जब उक्त कन्या—पाठशाला को विसवाँ-आचार्या जी की जन्मभूमि—से लाकर कन्या-गुरुकुल के रूप में चलाने की तैयारी हो रही थी, उन्हीं दिनों स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रेरणा से देहली के सुप्रसिद्ध दानी-सेठ रघुमल जी की ओर से कन्या-गुरुकुल खोलने के लिये 1 लाख रुपये के दान की घोषणा हुई। इस समाचार के पाते ही आचार्य जी का हृदय प्रसन्नता से खिल उठा। यह उनके लिये अपने चिर-वाँछित स्वप्न को मूर्तरूप देने का एक स्वर्णावसर था। सन् 1923 में दीपावली के अवसर पर देहली नगर में आर्य प्रतिनिधि पंजाब की संरक्षता में कन्या-गुरुकुल की स्थापना हो गई। गुरुकुल की पाठविधि बनाने का कार्य सौंपा गया आचार्य जी को। इस पाठविधि—की रचना में आचार्य जी की निराकार कल्पना साकार हो उठी। कन्या गुरुकुल की पाठविधि आचार्य जी की सूक्ष्म दर्शिता विद्त्ता, प्रतिभा और उदारता का सामूहिक रूप से प्रतिबिम्ब है; प्राचीनता और आधुनिकता का अद्भुत सम्मिश्रण है, आदर्श और व्यवहार का मधुर सामञ्जस्य है। प्राचीन आदर्शों की पृष्ठ-भूमि पर आधुनिकता के रंगों से नारी को चित्रित करने का अनुपम प्रयास है।

कन्या गुरुकुल आचार्य जी के जीवन की पुण्यतम आकाँक्षा उनके जीवन की अन्तिम साध थी। वैसे तो दोनों ही गुरुकुल उन्हें प्राणों के समान प्रिय थे। किन्तु उनका विचार था कि वैदिक आदर्शों की अमूल्य निधि की रक्षा जितनी स्त्री-जाति के द्वारा हो सकती है उतनी पुरुषों के द्वारा नहीं। स्त्री-जाति अपने स्वाभाविक गुणों के द्वारा आर्य जाति की अमूल्य सम्पत्ति—उसकी संस्कृति को सुरक्षित रखने के अधिक योग्य है। इसी कारण कन्या गुरुकुल से उनका विशेष स्नेह था। कन्या गुरुकुल के प्रति उनका कितना प्रगाढ़ अनुराग था इस संबन्ध में कई वैकल्पिक अनुभव उल्लेखनीय हैं।

कन्या गुरुकुल को खुले 5-6 वर्ष व्यतीत हो चुके थे उसको देहली से देहरादून लाया जा चुका था। उन्हीं दिनों में मैं एम० ए० की परीक्षा देकर लौटी थी और गुरुकुल कांगड़ी में रहती थी। एक दिन अचानक आचार्य जी मेरे पास आये और बोले—'कल तुझे मेरे साथ कन्या गुरुकुल चलना है।' मेरे इनके इस अचानक निमन्त्रण का कारण पूछने पर वे बोले—"आचार्या विद्यावती जी गुरुकुल से दीर्घावकाश लेकर चली गई हैं और गुरुकुल को संभालने वाला कोई नहीं है।" मैंने बिना गहराई से सोचे-विचारे लापरवाही के साथ कह दिया कि मैं तो इस समय वहाँ नहीं जाऊँगी। मेरा उत्तर सुनकर आचार्य जी चुप रह गये। मैंने कुछ क्षण बाद सिर ऊपर उठा कर देखा तो आचार्य जी की आँखों में आँसू थे। मुझे उस दिन ज्ञात हुआ कि आचार्य जी का हृदय कन्या गुरुकुल के प्रेम से कितना परिपूर्ण था।

आचार्य जी रहते गुरुकुल काँगड़ी में थे किन्तु कन्या गुरुकुल उनके ध्यान से कभी न उतरता था। मैं भी उन दिनों गुरुकुल काँगड़ी में ही रहती थी। जब कभी मैं उनसे मिलती प्रायः हमेशा ही बातचीत में वे कन्या गुरुकुल का जिक्र छेड़ देते और किसी न किसी ढंग से मुझे वहाँ जाने की प्रेरणा करते रहते थे। मुझे ऐसा लगता था कि उन्हें मेरा गुरुकुल काँगड़ी में रहना ही खटकता है। बात वास्तव में तो ऐसी नहीं थी किन्तु आचार्य जी की यह हार्दिक इच्छा अवश्य थी कि मैं कन्या गुरुकुल में ही अपना अधिकांश समय बिताया करूँ। आचार्य जी पढ़ी-लिखी लड़कियों को कन्या-गुरुकुल लाने में सदा प्रयत्नशील रहते थे और अक्सर सफल भी हो जाते थे। एक बार इसी दृष्टि से उन्होंने देहरादून की जितनी ग्रेजुएट महिलायें थीं सबको भोजन पर निमंत्रित किया। उन दिनों मैं भी कन्या-गुरुकुल में आई हुई थी। आचार्य जी घंटों उनसे कन्या गुरुकुल के ऊपर बातचीत करते रहे, इसकी विशेषताओं तथा आदर्शों को उन्हें समझाया। उनसे कन्या-गुरुकुल को अपनी सेवायें अर्पित करने का अनुरोध किया। आचार्य जी के प्रेमपूर्ण आग्रह तथा उनकी लगन से प्रभावित होकर उपस्थित महिलाओं में से एक-तिहाई ने अपने ग्रीष्मावकाश का समय गुरुकुल में लगाने का निश्चय कर लिया। गुरुकुल की कन्याओं की ऊँची-से-ऊँची शिक्षा देने, उन्हें पवित्र वातावरण में रखने तथा गुरुकुल को हर प्रकार से उन्नत देखने की उनकी हार्दिक अभिलाषा रहती थी। गुरुकुल के लिए आचार्य जी के वात्सल्यपूर्ण हृदय में पवित्र स्नेह की जो विमल-धारा हर क्षण बहती रहती थी उसकी कल्पना वे गिने-चुने व्यक्ति ही कर सकते हैं जो उनके सम्पर्क में आए हैं और जिन्होंने उनको कन्या गुरुकुल में कार्य करते देखा है।

आचार्य जी का गुरुकुल काँगड़ी से कन्या गुरुकुल 15 दिन में एक चक्कर तो अवश्य ही लग जाता था। वे जब यहाँ रहते थे, उनका एक-एक क्षण कन्या गुरुकुल की सेवा में व्यय होता था। कभी वे गुरुकुल की आर्थिक समस्याओं को सुलझाने की चिन्ता में व्यग्र होते तो कभी ऊँची श्रेणी की कन्याओं को किसी विषय की तैयारी करा रहे होते थे। कन्या गुरुकुल में उन दिनों योग्य शिक्षिकाओं की कमी रहने के कारण वे प्रायः ऊँची कक्षाओं को पूरे-पूरे विषय पढ़ाने की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेते थे। कन्याओं का सामान्य ज्ञान बढ़ाने की धुन में अपने आराम का समय भी उन्हें पढ़ाने में ही लगा देते थे। यही कारण था कि उस समय की कन्याओं की योग्यता बड़े-बड़े विद्वानों को चकित कर देती थी। देश के विख्यात शिक्षाविज्ञों और प्रतिष्ठित नेताओं को कन्या-गुरुकुल में लाने का आचार्य जी अवसर खोजते रहते थे। अपनी इस लगन के कारण ही आचार्य जी महात्मा गाँधी, पं० जवाहरलाल, राजेन्द्र बाबू, पुरुषोत्तमदास टंडन जैसे लब्धप्रतिष्ठ नेताओं को कन्या गुरुकुल लाने में सफल हुए। आज जो कन्या गुरुकुल देश की सर्वमान्य शिक्षण-संस्था बनी हुई है– यह आचार्य जी के अदम्य उत्साह का ही परिणाम है।

जिस समय गुरुकुल काँगड़ी जैसी विशाल संस्था का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व आचार्य जी के कन्धों पर था, उस समय भी कन्या गुरुकुल के लिए धन एकत्रित करने की जिम्मेवारी उन्होंने अपने ऊपर ले रखी थी। कन्या-गुरुकुल की आर्थिक दशा प्रारंभ से ही असन्तोषजनक थी। कोई भी इसको आर्थिक संकट से मुक्त करने का साहस न करता था। किन्तु आचार्य जी के लिए यह संभव न था कि वे कन्या गुरुकुल को संकट ग्रस्त देखकर भी चुपचाप बैठे रहें। परिणामत: जबसे कन्या गुरुकुल खुला तबसे मृत्यु पर्यन्त इसकी आर्थिक दशा को उन्नत करना उनका सबसे बड़ा कर्त्तव्य रहा। उन्होंने अपनी लगन, विद्वत्ता और अनथक परिश्रम द्वारा गुरुकुल के लिए लाखों रुपया जमा किया। गुरुकुल के आश्रम के भव्य-भवन जो आज हमारे सामने है, आचार्य जी के सतत उद्योग तथा सच्ची लगन की जीती जागती निशानियाँ हैं। किन्तु निरन्तर की चिन्ता और अत्यधिक परिश्रम ने समय से पूर्व ही उनके स्वास्थ्य को छिन्न-भिन्न कर दिया। किन्तु बीमारी की हालत में भी आचार्य जी कन्या गुरुकुल के लिए धन की अपीलें निकालते रहते थे। कन्या गुरुकुल को आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त करने की चिन्ता ने उन्हें अन्त समय तक न छोड़ा। मृत्यु से कुछ दिनों पूर्व भी वे गुरुकुल के लिए धन संग्रह करने देहली गए थे। गुरुकुल को उन्नत करने की उनकी ऐसी धुन थी कि उन्होंने अपना सुख आराम, अपना स्वास्थ्य और अपना सर्वस्व तक इस पर निछावर कर दिया।

सत्यानुराग, धर्म परायणता, अनथक परिश्रम निःस्वार्थ सेवा तथा अनुपम त्याग के वे ऊँचे आदर्श—जिनके लिए आचार्य जी जीवित रहे और अन्त में जिनके लिए वे मरे—आज भी इस कुलभूमि में बहने वाली पावन समीर के एक झोके के साथ ध्वनित हो रहे हैं, यहां की भूमि के रजकणों में ओत प्रोत हैं, कन्या गुरुकुल की दीवारों की प्रत्येक ईंट पर स्वर्णाक्षरों से अंकित हैं। कन्या गुरुकुल आचार्य जी के उच्चतम आदर्शों का प्रतीक है; उनकी पुण्यतम आकांक्षाओं की साकार प्रतिमा है, उनकी कोमलतम भावनाओं का जीवित-जागृत चित्र है।

किन्तु गुरुकुल तो आर्य जाति के इस सुधारक के जीवन चित्र का केवल एक पहलू था, उसके महान् लक्ष्य की सिद्धि का एक उपकरण मात्र था। आचार्य जी के जीवन का मुख्य लक्ष्य तो वैदिक आदर्शों की दृष्टि से आर्य जाति का पुनरुत्थान था। इसी लक्ष्य की सिद्धि में उन्होंने अपना सर्वस्व लगा दिया। जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जो कुछ उन्होंने किया सब इस महान् उद्देश्य की पूर्ति में ही था। उनके व्याख्यान, लेख, पुस्तकें, वैदिक मैगजीन तथा कन्या-गुरुकुल --सब एक ही राग के भिन्न-भिन्न आलाप थे। अपनी चौमुखी प्रतिभा द्वारा आचार्य जी ने आर्य जाति की महान् सेवायें कीं। ऋषि के आदर्शवाद को देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैला कर, वैदिक-संस्कृति के आदर्शों का शिक्षित जन समुदाय तक पहुँचा कर, स्त्री-जगत् में एक अनूठी शिक्षा प्रणाली उपस्थित करके आचार्य जी ने जो बहुमूल्य कार्य किया है वह आर्यसमाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखने योग्य है। जो अनुपम आदर्श उन्होंने अपने जीवन

काल में आर्य जगत् के सन्मुख उपस्थित किए वे आर्यजाति की अमूल्य सम्पत्ति हैं। आचार्य जी का आर्य जाति पर भारी ऋण है। उस ऋण से मुक्त होने के लिए आर्य जगत् में आचार्य जी का स्मारक बनाने की चर्चा है। किन्तु कन्या-गुरुकुल ही आचार्य जी का जीता-जागता स्मारक है। अतः आर्य जनता का, समस्त शिक्षा-प्रेमी नर-नारियों का कर्त्तव्य है कि आचार्य जी के इस सजीव और सच्चे स्मारक को—जो अभी अधूरा ही पड़ा है—पूरा करके आचार्य जी की—वैदिक संस्कृति के अनन्य भक्त की—पुण्य स्मृति को चिरस्थायी बनायें।

आचार्य रामदेव जी

(श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार)

उपनिषदों के नचिकेता ने जिस तरह मृत्यु का वरण किया था, उसी तरह आर्य-समाज के अनथक प्रचारक आचार्य रामदेव जी ने स्वेच्छापूर्वक वृद्धावस्था का वरण किया। आचार्य रामदेव जी के देहावसान से कुछ ही दिन पहले मेरा ध्यान इस तथ्य की ओर गया था। वर्तमान सदी की तीसरी दशाब्दी में, अपने विद्यार्थी-जीवन में, मैंने उन्हें अदम्य साहसी युवक के रूप में देखा था। यद्यपि उन दिनों वे अपनी युवावस्था के अपरान्ह पर थे। उनकी आयु तब चालीस के आस-पास थी। उन दिनों वे गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के आचार्य थे। गुरुकुल के संचालन का अधिकांश उत्तरदायित्व उन्हीं पर था। अपने उत्तरदायित्व से जरा भी गाफिल नहीं थे। इसके अतिरिक्त वे आर्य-समाज के द्वितीय नेता थे। आर्य-समाज के प्रथम नेता स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द अपने स्वास्थ्य के कारण उन दिनों दौरे आदि नहीं कर सकते थे। इस कारण आर्य-समाज के वास्तविक संचालन का बोझ आचार्य रामदेव जी ने अपने ऊपर ले लिया था और प्रतिवर्ष वे भारतवर्ष में 15 से लेकर 20 हजार मील तक का दौरा किया करते थे। आचार्य रामदेव जी उन दिनों क्रियाशीलता की प्रतिमूर्ति-से बने हुए थे। बस, जब देखो तब काम, काम और काम।

परन्तु चौथी दशाब्दी के प्रारम्भ के साथ-ही-साथ आचार्य रामदेव जी का स्वास्थ्य उनका साथ छोड़ने लगा। उधर उनके हृदय की सार्वजनिक सेवा की भावना और भी अधिक बढ़ने लगी और इसके साथ-ही-साथ उनकी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ भी विशाल रूप धारण करने लगीं। वे और भी जोरों से काम करने लगे और उतनी ही तेजी से वे जवान से बूढ़े बनने लगे। देखते ही देखते उनके सिर के सभी बाल श्वेत हो गये, उनका शरीर कांपने लगा और उनकी गणना अत्यन्त वृद्धों में होने लगी। इसके साथ-ही-साथ उनकी बीमारी भी उग्र रूप धारण कर गई और सन् 1938 तक यह प्रतीत होने लगा मानो वे साहस के साथ मृत्यु का मुकाबला कर रहे हैं और बीसवीं सदी की चौथी दशाब्दी के प्रारम्भ से केवल तीन सप्ताह पूर्व उनका देहावसान हो गया।

राजनीतिक उथल-पुथल और हलचल के इन दिनों में इन स्वेच्छा वृद्ध आचार्य रामदेव जी के आत्म-बलिदान की ओर देश का अधिक ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। परन्तु जो लोग अपने देश के अनथक समाज-निर्माताओं तथा कार्यकर्त्ताओं के जीवन चरित्रों में दिलचस्पी रखते हैं उन्हें आदरपूर्ण अचम्भे में डालने के लिये केवल इसी

एक तथ्य का निर्देश काफी है कि भारतवर्ष के सामाजिक पुनर्निर्माण-कार्य में दिन-रात व्यस्त रहने के कारण आचार्य रामदेव जी अपने जीवन की दो लम्बी-लम्बी मंजिलें केवल दस ही वर्ष में पार कर गए। अपनी धुन में आचार्य रामदेव ने अपने जीवन की सर्वश्रेष्ठ निधि अपनी युवावस्था की स्वेच्छापूर्वक कुर्बानी कर दी।

आचार्य रामदेव जी के समान अदम्य कार्यशील व्यक्ति मैंने अपने जीवन में बहुत कम देखे हैं। उनके विचारों अथवा उनकी कार्य-शैली की कड़ी आलोचना अवश्य की जा सकती है। अपने जीवन में उन्होंने भूलें भी कीं, और भूलें कौन नहीं करता? परन्तु उनकी कार्यशीलता के सन्मुख उनके कठोर-से-कठोर आलोचक को भी सिर झुकाना होगा। वे अपने जीवन के लगभग 20 वर्षों तक गुरुकुल-कांगड़ी के आचार्यत्त्व के साधारण उत्तरदायित्व के अतिरिक्त वे पूरे चार अन्तर महाविद्यालय की विभिन्न श्रेणियों के विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। उनके पढ़ाने के विषय भी अनेक थे। इतिहास, राजनीति-शास्त्र, धर्म, आचारशास्त्र, इस्लाम, ईसाइयत—ये सभी विषय वे पूरी तैयारी और पूर्ण सफलता के साथ पढ़ाते थे। इसके अतिरिक्त गुरुकुल के लिए धन संग्रह करने का अधिकांश बोझ भी उन्हीं पर था। अपने जीवन में आचार्य रामदेवजी ने गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के लिये कम-से-कम 10 लाख रुपया एकत्र किया और इस बड़ी राशि की अधिकांश रकमें मध्य श्रेणी के सज्जनों से एकत्र की गई। आचार्य रामदेव जी ने कम-से-कम 60 हजार व्यक्तियों से आर्य-समाज की विभिन्न संस्थाओं के लिए भिक्षा मांगी। आचार्य रामदेव जी आर्य-समाज के सर्वश्रेष्ठ वक्ता माने जाते थे, इसलिए तथा आर्य-समाज का व्यावहारिक नेतृत्त्व करने के लिए उन्हें प्रति सप्ताह किसी-न-किसी आर्य-समाज के उत्सव पर जाना पड़ता था। भारतवर्ष-के प्रायः सभी प्रमुख आर्य-समाजों के उत्सवों पर जाने के लिए वे उत्सुक-से रहते थे। सप्ताह के पाँच दिनों में गुरुकुल में अनथक काम करने के बाद, चाहे सरदी हो चाहे गर्मी, प्रायः प्रति सप्ताह लम्बे-लम्बे सफर करना, आर्य-भक्तों के आतिथ्य के अत्याचार सहना, उनके आपस के झगड़े निपटाना, उनकी शंकाओं का समाधान करने का प्रयत्न करना और उनके उत्सवों पर उच्चतम आवाज में दो-दो, तीन-तीन घंटे तक लेक्चर देना—यह सब आचार्य रामदेव जी के सहज और स्वाभाविक जीवन का एक भाग बन चुका था। बदकिस्मती यह कि उन्हें जैसे बोलने का व्यसन था। जितना अधिक वे पढ़ते, उतना ही अधिक वे बोलते। बरसों तक नियमित रूप से सभी सप्ताहान्तों में व्याख्यान देते रहने का परिणाम यह हुआ कि उनका गला अनेक बीमारियों से संक्रान्त हो गया। इस पर भी उन्होंने व्याख्यान देना बन्द नहीं किया। गरम दूध के सहारे जबरदस्ती अपने गले को खड़ा रखते और जब तक फेफड़े साथ देते, वे व्याख्यान देते चले जाते।

मैंने ऊपर कहा था—गुरुकुल आचार्यत्त्व के साधारण उत्तरदायित्व के अतिरिक्त, परन्तु वास्तव में गुरुकुल आचार्यत्व का साधारण उत्तरदायित्व बहुत-से असाधारण कार्यों से भी अधिक पेचीदा है। वहां विद्यार्थियों के जीवन को इतना अधिक बांधकर

रखने का प्रयत्न किया जाता है कि उनके वास्तविक अथवा कल्पित अपराधों की संख्या का ठिकाना ही नहीं रहता। सुबह 4·30 बजे के बाद उठना, रात को 10 बजे के बाद जागना, बालों को जरा सँवार लेना, कालर वाली कमीज पहनना, ये सब बातें वहाँ विकट अपराधों में गिनी जाती हैं, और इनके लिए विद्यार्थियों को अपने आचार्य के सन्मुख पेश किया जाता है। मुझे स्वयं अनेक बार देर में उठने और लैम्प जलाकर देर तक पढ़ते या लिखते रहने के अपराध में आचार्य रामदेव जी के सन्मुख पेश किया गया और मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि इन मामलों में मैंने उन्हें सदैव बहुत कठोर और जागरूक पाया। गुरुकुल में आचार्य विद्यार्थियों का आध्यात्मिक पिता माना जाता है। यह बात जुदा है कि विभिन्न स्वभाव के सैकड़ों विद्यार्थियों का एक ही व्यक्ति आध्यात्मिक पिता बन सकता है या नहीं; परन्तु फिर भी अपने विचारों के अनुसार, इस आदर्श को पूरा करने का भरसक प्रयत्न आचार्य रामदेव जी अवश्य करते थे।

\+ × ×

आर्य-समाज में आचार्य रामदेव जी अनुदार विचारों के प्रतिनिधि थे। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में वे स्वामी दयानन्द के विचारों को अन्तिम प्रमाण मानते थे। आर्य समाज में विचार-स्वाधीनता को वे सहन नहीं कर सकते थे। अपनी आयु पर्यन्त आचार्य रामदेव जी ने आर्य-समाज में विचार-स्वाधीनता को दमन करने का अधिकतम प्रयत्न किया। इस प्रयत्न में उन्हें अनेक बार अपने प्रिय-से-प्रिय व्यक्तियों का भी विरोध करना पड़ा; परन्तु अपने आदर्श के सन्मुख उन्होंने कभी व्यक्तिगत अनुभूतियों को तरजीह नहीं दी।

आचार्य रामदेव स्वामी श्रद्धानन्द के सहकारी थे, परन्तु वे आर्य-समाज में किसी भी तरह का परिवर्तन लाने के इतना विरुद्ध थे कि एक बार उन्हें अपने नेता स्वामी श्रद्धानन्द का भी खुले रूप में विरोध करना पड़ा। यद्यपि अपने जीवन के अन्त तक वे अपने को स्वामी श्रद्धानन्द का अनुयायी ही कहते और मानते रहे।

यह आचार्य रामदेव जी की अदम्य कार्यशक्ति का ही प्रभाव था कि सन् 1936 में उनकी रुग्णावस्था के दिनों में भी समय की लहर के साथ-साथ आर्य-समाज में बढ़ती हुई विचार-स्वाधीनता की धारा को इतना जबरदस्त प्रतिरोध मिला कि कुछ समय के लिए आर्य-समाज में उग्रतम कट्टरता का प्रभुत्त्व छा गया। नये विचारों का आर्य-समाज में से लगभग बहिष्कार-सा हो गया और आर्य-सार्वदेशिक सभा ने यह घोषणा कर दी कि आर्य-समाजी बनने के लिए न केवल आर्य-समाज के 10 नियमों का मानना ही आवश्यक है, अपितु स्वामी दयानन्द के 52 स्वमन्तव्यामन्तव्यों पर भी विश्वास होना लाजमी है। आचार्य रामदेव जी उस वर्ष पंजाब की आर्य-प्रतिनिधि-सभा के प्रधान तथा आर्य--सार्वदेशिक सभा के प्रमुख उप-प्रधान चुने गए।

× × ×

लगभग 16 वर्ष की आयु से आचार्य रामदेव जी ने अपने सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ किया था। उन दिनों उन्होंने मैट्रिक का इम्तहान पास किया था। तभी

से वे 'आर्य-पत्रिका' का सम्पादन करने लगे। आर्य-समाज के प्रचारक बनने का व्रत आचार्य रामदेव जी ने अपने कालेज जीवन के प्रथम वर्ष में ही ले लिया था। उसके बाद से, पूरे 40 वर्षों तक वे आर्य-समाज के प्रमुख प्रचारक बनकर रहे। इन 40 वर्षों में आचार्य रामदेव जी ने लगभग 5 हजार व्याख्यान दिये होंगे।

यह देखकर आश्चर्य होता है कि अपनी युवावस्था के प्रारम्भ में आचार्य रामदेव जी के जो विचार थे, उसी तरह के विचार उनके देहान्त तक बने रहे, यद्यपि ये विचार अध्ययन और अनुभव के साथ-साथ अधिकाधिक परिष्कृत और परिपक्व अवश्य होते चले गए। आचार्य रामदेव जी स्वयं यह कहा करते थे कि आर्य-समाज के सिद्धान्तों और स्वामी दयानन्द के मन्तव्यों में मेरी श्रद्धा और आस्था क्रमशः अधिकाधिक बढ़ती चली जाती है। यह नहीं कि वे नवीन विचारों से परिचित न हों। उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। पुस्तकें पढ़ना ही उनका सबसे बड़ा व्यसन था। उनके समान बहु-पठित व्यक्ति देश-भर में इने-गिने ही होंगे। उनके इस विशाल अध्ययन ने उनके विचारों को बहुत ही कम प्रभावित किया।

एक बार मैं लाहौर-आर्य-समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में दर्शक-रूप से गया था। मुझे बताया गया कि आज से 40 वर्ष पहले, आर्य-समाज के इसी भवन में जब कालेज के प्रथम वर्ष का विद्यार्थी रामदेव, इसी तरह के साप्ताहिक अधिवेशनों में, अपना जोशीला व्याख्यान दिया करता था, तब यह भवन श्रोताओं से खचाखच भरा रहता था और उस समय मैंने देखा कि आर्य-समाज का आधा भवन खाली पड़ा था। मुझे खयाल आया कि आज यदि आचार्य रामदेव जी की आत्मा यहाँ आकर देखे कि पूरे 40 बरसों तक दिन-रात मेहनत करने के बावजूद उनकी प्राणप्रिय संस्था आर्य-समाज की लोकप्रियता इतनी कम हो गई है, तो उन्हें कितनी पीड़ा अनुभव होगी? परन्तु दूसरे ही क्षण मुझे यह खयाल आया कि उस साहसी महापुरुष ने जीवन-भर अपने उद्देश्य की पूर्ति का अधिकतम प्रयत्न तो किया, कुछ बना या नहीं, यह प्रश्न जुदा है। उन्हें कम-से-कम इतना तो सन्तोष है कि उनसे जो कुछ बन पड़ा, उन्होंने किया—पूरे विश्वास और उत्साह के साथ किया।

× × ×

आचार्य रामदेव जी का व्यक्तित्व और स्वभाव अनेक परस्पर-विरुद्ध बातों का विचित्र और अनोखा मिश्रण था। एक तरफ वे अत्यन्त कठोर थे और दूसरी तरफ बहुत ही कोमल और क्षमाशील। प्लेटफार्म पर अपने प्रतिपक्षियों की धज्जियाँ उड़ाने के बाद जिन लोगों ने जरा-जरा-सी बातों पर उनकी आंखों में आँसू आते देखे हैं, उन्हें आचार्य रामदेव का व्यक्तित्त्व सदैव एक पहेली-सा दिखाई देगा: एक तरफ उनकी याददाश्त इतनी तेज थी कि एक चीज को पढ़कर वे बरसों तक नहीं भूलते थे और दूसरी ओर वे इतने भुलक्कड़ थे कि उन्हें यह भी याद नहीं रहता था कि हाल ही में उन्होंने क्या खाना खाया है।

अदम्य कर्मशील होने के साथ-ही-साथ आचार्य रामदेव जी अदम्य आशावादी भी थे। अपने जीवन के अन्त तक यहाँ तक कि मृत्यु के बहुत निकट पहुँच जाने पर भी,

उन्हें इस बात का पूर्ण विश्वास बना रहा कि उनका स्वास्थ्य सुधर रहा है और बहुत शीघ्र वे पुनः पूर्ण स्वस्थ हो जायेंगे। यहाँ तक कि मृत्यु का सामना भी उन्होंने पूरी वीरता और पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ किया।

सार्वजनिक जीवन में आचार्य रामदेव जी पूर्ण आशावादी बनकर रहे। उन्हें अन्त तक इस बात का पूर्ण विश्वास रहा कि आर्य-समाज का प्रभाव दिनों-दिन बढ़ रहा है और आर्य-समाज के सिद्धान्त बड़ी सफलता के साथ संसार के विचारों को प्रभावित कर रहे हैं।

अपनी महान् कार्यशीलता और महान् आशावादिता के कारण आचार्य रामदेव जी सचमुच एक महान् शक्ति बनकर रहे। अपने जीवन के अपराह्न काल में पहुँचकर देहरादून में उन्होंने कन्या-गुरुकुल नाम की जिस नई और विशाल संस्था की नींव डाली, वह उनके महान व्यक्तित्व का जीता-जागता उदाहरण है। जब तक कन्या-गुरुकुल देहरादून और गुरुकुल-विश्वविद्यालय कांगड़ी जीवित हैं, आचार्य रामदेव जी अमर हैं।

आचार्य रामदेव जी : एक उत्कृष्ट अध्यापक

(श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति 'वीर अर्जुन' देहली)

मुझे स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी के विद्यार्थी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, यों तो जीवन में उनके और मेरे कई प्रकार के सम्बन्ध रहे । मैं उनका विद्यार्थी रहा, शिक्षा समाप्त होने पर उनकी अध्यक्षता में शिक्षक का कार्य करता रहा, आर्य-समाज के कार्य-क्षेत्र में उनका सहयोगी रहा और पूज्य पिताजी से पुत्र तथा पुत्रसम के संबंधों के कारण मैं आचार्य जी का छोटा भाई तो सदा ही बना रहा । सम्बन्ध अनेक थे, परन्तु उन सब में जिस सम्बन्ध की स्मृति मेरे मन पर सबसे अधिक स्पष्टता से और मधुरता से अंकित है, वह अध्यापक और छात्र का सम्बन्ध है ।

आचार्य रामदेव जी में उस गुण की पुष्कल मात्रा विद्यमान थी, जिसके बिना कोई अध्यापक, अध्यापक नहीं बन सकता । वह गुण यह है कि अध्यापक में छात्रों का पढ़ाने की, जो उसे आता है वह सिखा देने की, अत्यन्त प्रबल इच्छा विद्यमान हो । जो अध्यापक केवल जाप्ता पूरा करने के लिए पढ़ाता है, वह अध्यापक पद का अधिकारी नहीं । सच्चा शिक्षक वही है जो स्वयं पाठ बनकर छात्र के मन में घुस जाता है । आचार्य रामदेव जी ऐसे ही अध्यापक थे ।

मैंने अनेक अध्यापकों से शिक्षा प्राप्त की है, मैं उन सबका आभारी हूँ । परन्तु यह कहने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं कि पढ़ने की प्रवृत्ति और ज्ञान की प्यास को जागृत करने के लिये मैं सबसे अधिक आचार्य रामदेव जी का अनुगृहीत हूँ । पढ़ाने के समय और पढ़ाने के समय के अतिरिक्त भी, विद्यार्थियों के मन में प्रश्न उत्पन्न करना और उन प्रश्नों का समाधान करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे, यह उनके स्वभाव का हिस्सा था । यह सभी लोग जानते हैं कि बोलने में उन्हें आलस्य नहीं था । उनकी सदा यह हार्दिक इच्छा रहती थी कि उन्हें जो कुछ आता है, वह दूसरे को बतला दें और यह भी कि जैसा वह जानते और मानते हैं, वैसा ही दूसरा भी जानने और मानने लगें । छात्र को इससे अधिक क्या चाहिये । जो अध्यापक छात्रों को पढ़ाने और सिखाने में अपनी सारी शक्ति लगादे, वह छात्रों को सौभाग्य से प्राप्त होता है । इसीलिये मैं मानता हूँ कि आचार्य रामदेव जी का छात्र बनना मेरे सौभाग्य का परिणाम था ।

शिक्षा देने की उनकी पद्धति का यदि कोई नाम ही रखना हो तो वह "सीधे आक्रमण" की पद्धति थी । वह विद्यार्थी के मस्तिष्क और पाठ्य विषय पर सीधा आक्रमण करते थे, फेर-फार और शिक्षा के पेचीदा मार्ग उनके शिक्षण-शास्त्र में नहीं थे । बहुत से शिक्षा शास्त्री यह जानकर आश्चर्यित होंगे कि जब उन्होंने हमें अंग्रेजी

पढ़ाना आरम्भ किया तो दो प्रारम्भिक किताब पढ़ाने के अनन्तर जे० एस० सी० ऐबट की लिखी हुई नैपोलियन बोनापार्ट की जीवनी हमारे हाथों में दे दी और इस परिश्रम और तत्परता से पढ़ाई कि एक सप्ताह में हम उसमें तल्लीन होकर कोष की सहायता से स्वयं पढ़ने का यत्न करने लगे।

उनके अध्यापन कार्य में अद्भुत स्मरण शक्ति भी बहुत सहायिका होती थी। आचार्य रामदेव जी की स्मरण शक्ति तो प्रसिद्ध ही थी। उनके परिचित समाज में उनकी अनेक दन्त-कथायें प्रसिद्ध थीं। एक बार किसी मित्र के यहां उन्होंने एक सज्जन का कई पृष्ठों पर लिखा हुआ लम्बा-चौड़ा अंग्रेजी पत्र पढ़ लिया। कुछ समय पीछे एक सभा में उस पत्र की चर्चा चली। पत्र के लेखक ने उस पत्र से इन्कार कर दिया। उसे यह खयाल था कि वह पत्र या उसकी प्रतिलिपि तो किसी के पास है ही नहीं, फिर इन्कार करने से क्या डर है। आचार्य रामदेव जी के मस्तिष्क में उस पत्र की पूरी प्रतिलिपि विद्यमान थी। जब पत्र के लेखक के सामने स्मृति-शक्ति का वह चमत्कार खोलकर रखा गया तो वह मानो आहत होकर स्तब्ध हो गया। आचार्य जी की स्मृति-शक्ति के ऐसे अनेक करिश्मे प्रसिद्ध थे। वह अपने मैट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने की एक घटना स्वयं सुनाया करते थे। गणित में बहुत कमजोर थे, इतने कमजोर थे कि गणित के पर्चे में उन्हें शून्य का मिलना किसी को आश्चर्य में नहीं डालता था। और परीक्षायें तो किसी तरह पास कर लीं, पर मैट्रिक की परीक्षा "किसी तरह" पास नहीं हो सकती, वह तो "ठीक तरह" से ही पास की जा सकती थी। उस समय आचार्य जी ने अपनी स्मरण-शक्ति की सहायता ली। वह सुनाया करते थे कि मैंने हिसाब की किताब में से बड़ी और मुख्य प्रश्नावलियों के सब कठिन प्रश्नों के उत्तर "घोट" डाले और उन्हीं की सहायता से मैट्रिक परीक्षा की नदी से पार हो गया।

वह स्मरण-शक्ति अध्यापन कार्य में उनकी बहुत सहायता करती थी। जिस अध्यापक को किसी प्रश्न का उत्तर टालना न पड़े, छात्रों पर उसका सिक्का जम जाता है, हम लोग प्रारम्भिक विद्यार्थी अवस्था में आचार्य जी को सर्वज्ञ मानते थे और उनके एक-एक वाक्य को दिल में स्थान देने का यत्न करते थे।

उन दिनों आचार्य जी हमें अंग्रेजी, इतिहास और अर्थशास्त्र पढ़ाया करते थे, उनका अध्यापन विद्यालय की सीमा में परिमित नहीं रहता था। रात को भोजन के पश्चात् खाली समय में, वह इतिहास और अर्थशास्त्र की शिक्षा को सामयिक राजनीति की घटनाओं को चर्चा द्वारा सम्पुष्ट किया करते थे। सामयिक राजनीति में उन्होंने हम लोगों की रुचि को खूब बढ़ा दिया था। जब कभी अनध्याय के दिन लम्बे भ्रमण के लिये जाते, तब भी मार्ग में सामयिक और ऐतिहासिक घटनाओं की चर्चा चलती रहती थी। जब तक उन पर प्रबन्ध आदि अतिरिक्त कार्यों का बोझ नहीं पड़ा तब तक उनका सारा समय विद्यार्थियों को शिक्षा देने के काम आता था। उन्हें सिखाने की धुन थी। विद्यार्थी थक जायें, पर वे नहीं थकते थे और उनके शिक्षण में इतनी स्फूर्ति थी कि विद्यार्थी भी आसानी से नहीं थकते थे।

आचार्य जी में अनेक गुण थे। उन सभी की चर्चा द्वारा लेखनी को सफल बनाया जा सकता है। उन सब गुणों में से मेरे व्यक्तिगत जीवन पर जिस गुण का सबसे पहला और गहरा प्रभाव पड़ा वह उनकी उत्कृष्ट अध्यापन शक्ति थी। मेरी राय में वह प्रकृति से अध्यापन कार्य के लिये ही बने थे। वह मानो उन्हें परमात्मा की ओर से सर्वोत्कृष्ट देन थी। जिन भाग्यशाली छात्रों ने उनसे पढ़ा है, वह उनके आभार को कभी नहीं भुला सकते।

आचार्य रामदेव जी के संस्मरण

(ले०—आचार्य श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, महाविद्यालय ज्वालापुर)

आज मैं महाविद्यालय में हूँ और हमारे मित्र आचार्य रामदेव स्वर्ग में हैं कभी हम एक ही स्थान में—गुरुकुल कांगड़ी (गंगापार) रहते थे और शिक्षा विभाग में कार्य करते थे।

सबसे पहले मैंने इन्हें गवर्नमेंट माडल स्कूल (लाहौर) के विस्तृत प्रांगण में, एक मैच में देखा था। पता नहीं फुटबाल मैच था कि क्रिकेट मैच था—कुछ भी याद नहीं। हम दोनों दर्शक के रूप में थे। श्री रामदेव जी डी०ए०वी० के बोर्डिंग में थे और मैं आर्य विद्यार्थी आश्रम में रहता था।

उपर्युक्त मैच में ही किसी ने परिचय कराया था। वैसे प्रति सप्ताह वच्छोवाली समाज के अधिवेशन में मिलते थे। उस समय रामदेव जी और डी० ए० वी० स्कूल अथवा कालेज के अधिकारियों में अनबन थी। रामदेव जी उन्हीं के यहाँ रहते हुए, उनके विरुद्ध आन्दोलन करते रहते थे, यही झगड़े का कारण था। रामदेव जी कभी-कभी हमारे आर्य विद्यार्थी आश्रम में भी आते रहते थे। उस समय हमारे आश्रम के निरीक्षक थे स्व० मास्टर तोलाराम जी। बीच में कुछ दिन के लिए भगत रेमल जी भी रहे थे—

उन दिनों लाहौर तो आपस के संघर्ष का एक विचित्र क्षेत्र था। एक ओर डी० ए० वी० स्कूल—कालेज तो दूसरी ओर डी० एच० स्कूल (दयानन्द हाईस्कूल), एक ओर डी० ए० वी० स्कूल बोर्डिग हाउस तो दूसरी ओर आर्य विद्यार्थी आश्रम। एक ओर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, तो दूसरी ओर डी० ए० वी० कालेज मैनेजिंग सोसाइटी। एक ओर वच्छोवाली आर्य समाज तो दूसरी ओर अनारकली आर्यसमाज। समाजों के उत्सव अलग-अलग, नगर कीर्तन अलग-अलग होते थे। म० मुन्शीराम जिधर थे वह महात्मा पार्टी और म० हंसराज जिधर थे वह कल्चर्ड पार्टी कहलाती थी। पहले पहले वच्छो वाले घासपार्टी के नाम से और अनारकली वाले मांसपार्टी के नाम से बोले जाते थे। अब ये पार्टियाँ गुरुकुल पार्टी तथा कालेज पार्टी के नाम से प्रसिद्ध हैं--

एक बात तो मैं भूल ही गया—इन दो पार्टियों के दो अपने-अपने अखबार थे। महात्मा पार्टी की आर्य पत्रिका और कल्चर्ड पार्टी का आर्य मैसेन्जर। दोनों अंग्रेजी में निकलते थे। आर्य पत्रिका के सम्पादक थे बाबा अर्जुनसिंह, तो आर्य मैसेंजर के सम्पादक थे उनके भाई बाबा छज्जूसिंह—इस तरह महाभारत का पूरा-पूरा दृश्य था। मा. दुर्गाप्रसाद जी हार्बिन्जर आफ हेल्थ नामक पत्र निकालते थे।

ऐसे वातावरण में श्री रामदेव जी कालेज पार्टी को छोड़कर महात्मा पार्टी में आ मिले—मैं लाहौर में 1894 नवम्बर से 1898 दिसम्बर तक रहा। फिर मैंने लाहौर छोड़ दिया—यह अवसर अपनी कहानी लिखने का नहीं है इसलिए अपनी बात यहीं छोड़ता हूँ।

उस समय लाहौर में श्री गोविन्दपुर, जिला गुरुदासपुर के डॉ० चिरञ्जीव भारद्वाज वहाँ रहते थे—उन्होंने आर्य बिरादरी चलायी थी। उसमें पं० विशम्भर-नाथ जी, स्व. डॉ० धर्मवीर जी (उस समय के नवनीतराय) तथा रामदेव जी भी थे। ये पार्टी सिर मुंडाया करती थी, इसलिए उस समय इस पार्टी का नाम सिर-मुन्नी पार्टी पड़ गया था। हमारे आर्य विद्यार्थी आश्रम में तो इस पार्टी का बड़ा जोर था। यह पार्टी सदा मरने-मारने के लिए तैयार रहती थी।

1899 ई. के पश्चात् मैं तो संयुक्त प्रान्त में चला आया और सन् 1906 में गुरुकुल में ही रामदेव जी और मेरी भेंट हुई। उस समय संस्कृत विभाग के अध्यक्ष थे पं. श्री गंगादत्त शास्त्री जी (पश्चात् के स्व. श्री 108 स्वामी शुद्धबोध तीर्थ जी) और अन्य विभाग के हैड थे श्री रामदेव जी।

उस समय रामदेव जी 'वैदिक मैगजीन' नामक अंग्रेजी मासिक पत्रिका निकालते थे। अच्छी धाक थी। इसमें बड़े-बड़े विद्वानों के लेख छपते थे। आर्य समाज में फिर ऐसा मैगजीन नहीं निकला।

गुरुकुल कांगड़ी को छोड़ने के पश्चात् हम लोगों के मार्ग पृथक हो गये तो भी रामदेव जी हमसे मिलने के लिए कभी-कभी आते थे और गुरुकुल के हमारे समीप आने पर तो सप्ताह में एक बार तो नहर की पटरी पर मिल ही जाते थे। जब गुरुकुल छोड़कर कन्या गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता बने, तब देहरादून में प्रायः मिलते ही रहते थे।

एक बार (जब वे गुरुकुल में आचार्य थे, तब) वे देहरे में हम से मिले तो कहने लगे कि चलिये फिर गुरुकुल चलिये, वहीं रहिए, बड़ा आग्रह करते रहे। मैंने कहा कि पहले अपनी जगह को तो संभालो, फिर देखा जायेगा। अब तो मैं सर्वत्र महाविद्यालय ज्वालापुर के प्रमुख कार्यकर्त्ता के रूप में प्रसिद्ध हूँ—अब कांगड़ी लौटने में मेरी कोई शोभा नहीं है। थोड़े दिन पश्चात् मैंने क्या देखा कि श्री रामदेव जी ने ही गुरुकुल को छोड़ा और कन्या गुरुकुल में आ विराजे। जब मिले तब मैंने कहा कि तुम तो मुझे बुलाते थे, मैं आ जाता तो आपके साथ मुझे भी गुरुकुल छोड़ना पड़ता। इसको सुन कर आप बड़े जोर से हँस पड़े।

श्री रामदेव जी जैसा विद्या-व्यसनी पण्डित मिलना कठिन है। वे इतिहास के तो पण्डित थे ही पर अन्य विषय में भी किताबों के कीड़े थे। वैसे चलते-फिरते मूर्ति-मान शब्दकोष थे। कोई बात पूछो झट कह देते थे कि अमुक स्थान में देखो। आपका व्याख्यान बड़ा मार्मिक और प्रमाणपूर्ण रहता था—लम्बा बोलते थे। इनके व्याख्यान में विबुधजन समाज के मनोरंजन की प्रचुर सामग्री रहती थी, और एक बात, वह यह

कि पाश्चात्य और पौरस्त्य धर्म, संस्कृति, दर्शन-शास्त्र आदि की इतनी अच्छी तुलनात्मक विवेचना करते थे कि ऐसा उत्तम कोटि का विवेचक अब आर्य विद्वानों में नहीं मिल सकता—मेरठ के श्री घासीराम जी एम. ए. थे पर उनमें वाक्-चातुरी का अभाव था—

पंजाब में तो नहीं, पर संयुक्त प्रान्त में कई बार ऐसे प्रसंग आये जब हम दोनों को अनेक उत्सवों पर मिलने और व्याख्यान देने का अवसर आ पड़ता था। जहाँ हम दोनों इकट्ठे हुए कि मैं उत्सवाधिकारी को स्पष्ट कह देता था कि मेरा व्याख्यान रामदेव जी के पहिले करालो, पीछे नहीं बोल सकता। नक्कारे की गूंज के पश्चात् छोटी-सी ढोलक की आवाज को कौन सुनेगा ?

महात्मा मुन्शीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द) के पीछे गुरुकुल कांगड़ी को संभाले रखने में और उसकी कीर्ति बढ़ाने में रामदेव जी का बड़ा हाथ था। फिर कन्या गुरुकुल को अखिल भारतीय संस्था बनाने में उनके दृढ़ अध्यवसाय ने बड़ा काम किया—सच पूछो तो कन्या गुरुकुल ही श्री रामदेव जी का सच्चा स्मारक हैं। जैसे महाविद्यालय—ज्वालापुर स्वर्गीय स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का अटल स्मारक है, वैसे गुरुकुल कांगड़ी स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी का दिव्य स्मारक है।

श्री रामदेव जी जब रुग्ण हुए—जब वे चल-फिर भी नहीं सकते थे। तब मैं देहरादून में कई बार मिला था—पर मैंने अनुभव किया, उनको अपनी बीमारी की इतनी चिन्ता नहीं थी जितनी कि कन्या गुरुकुल की। बैठे-बैठे, पड़े-पड़े भी वे कन्या गुरुकुल के निमित्त धन-संग्रह की चिन्ता करते थे, और वहीं पड़े हुए उन्होंने पत्रों द्वारा ही गुरुकुल के लिए सहस्रों रुपये एकत्रित कर लिए।

रामदेव जी सच्चे शिष्यों के लिए उत्तम कोटि के गुरु, धर्म-प्रचार के कर्म में उच्च कोटि के मिशनरी, उच्च कोटि के सम्पादक, अनुपम वक्ता, पक्के धुन के व्यक्ति थे—मैं समझता हूँ उनके स्थान की पूर्ति अभी नहीं हो सकी है। जब हो सके वही आर्य-समाज के लिए सुदिन– आर्य समाज में सब कुछ है पर रामदेव जी जैसे धुन के पक्के लोगों का अभाव-सा होता जा रहा है, यही दुर्दैव है। आर्य समाज में मैं देख रहा हूं प्रचार-काल में जो-जो भी प्रचारक, उपदेशक हुए उन जैसे धुन के प्रचारक और उपदेशक कहाँ हैं—जो भी विद्वान् उठ गया उसके स्थान की पूर्ति कोई न कर सका। ये कोई अच्छे लक्षण नहीं हैं। श्री रामदेव जी आर्य-समाज के सिद्धान्तों को अक्षरशः मानते थे, आर्य-समाज के सिद्धान्तों के खण्डन को कभी सहन नहीं करते थे। आर्य-समाज के कार्य में मर मिटने के लिए प्रतिक्षण संनद्ध रहते थे।

आचार्य रामदेव जी के सम्बन्ध में

संस्मरण

(आचार्य विश्वनाथ जी विद्यालंकार वेदोपाध्याय)

श्री आचार्य रामदेव जी के साथ मेरा बहुत दीर्घकाल तक सम्बन्ध रहा है। मुझे याद है कि जब मैं गुरुकृल काँगड़ी में अभी 5वीं श्रेणी में पढ़ता था, तब श्री आचार्य रामदेव जी का पदार्पण गुरुकुल काँगड़ी में हुआ था। तब से लेकर श्री आचार्य जी के स्वर्गारोहण के काल तक मेरा सम्बन्ध श्री आचार्य जी के साथ रहा है। 1914 ई. से पहले शिष्य-गुरू के नाते और 1914 के पश्चात् एक ही महाविद्यालय में सह-योगी के नाते। जिस दिन श्री आचार्य जी ने गुरुकुल में पदार्पण किया था, उसी दिन शोर मच गया कि एक मास्टर जी गुरुकुल में आए हैं, जो अंग्रेजी के बड़े विद्वान हैं। उन दिनों ब्रह्मचारियों पर श्री पं० गंगादत्त जी आदि संस्कृत के विद्वानों की गहरी छाप थी। हम लोग श्री आचार्य जी की ओर से कुछ काल तक उदासीन से रहे। पहले दिन ही जबकि सायंकाल के समय ब्रह्मचारी गङ्गा के तट पर गये, तब श्री आचार्य जी के हम सबने दर्शन किये। इनके दर्शन होते ही इन्होंने ब्रह्मचारियों से तरह-तरह के प्रश्न करने शुरू कर दिये। जैसे कि पहाड़ कैसे बने हैं, गङ्गा में रेत कहाँ से आती है, पहाड़ों पर बर्फ कहाँ से आती है—इत्यादि नाना प्रश्न इन्होंने किये। प्रश्नों के साथ-साथ इन्होंने हमें उनके उत्तर भी समझाए।

श्री आचार्य जी से जैसे-जैसे हमारा कुछ गहरा परिचय होता गया, हम भी श्री आचार्य जी की ओर अधिकाधिक खिचने लगे। लगभग दो-तीन मास के बाद हमारे दिलों में श्री आचार्य जी की छाप लगने लगी। पं० गङ्गादत्त जी हमें कारिका-वलि पढ़ा रहें थे। यह ग्रन्थ नवीन न्याय का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ से जब श्री पंडित गङ्गादत्त जी ने हमें यह पढ़ाया कि अप् अर्थात् जल तत्त्व है और अप् के अभेद्य पर-माणु (Atoms) हुआ करते हैं तब मैंने इस सम्बन्ध में बहुत अश्रद्धा प्रकट की। श्री आचार्य जी की बात-चीत में हम सुन चुके थे कि जल दो गैसों के मेल से बनता है और यह दो गैसों में फाड़ा भी जा सकता है—मैंने कहा कि "अप् के अभेद्य पर-माणुओं का होना",—यह सिद्धान्त अशुद्ध हैं। इस पर बड़ा गहरा साँस लेकर श्री पं० गङ्गादत्त जी ने कहा कि अब साइन्स का खण्डन करने के लिए मुझे भी साइन्स पढ़नी पड़ेगी। श्री आचार्य रामदेव जी की विद्वत्ता का प्रभाव हमारे जीवनों और विचारों पर शनैः-शनैः बद्धमूल होने लगा।

आचार्य जी के गुरुकुल प्रवेश के साथ-ही-साथ गुरुकुल के वायुमण्डल में संस्कृत के आचार्यों तथा श्री आचार्य जी में विचारों के सम्बन्ध में संघर्ष पैदा होने लगा। गुरुकुल जीवन में आधुनिकता को लाने का श्रेय श्री आचार्य रामदेव जी को है। गुरुकुल में चटाइयों और आसनों तथा तख्त और गद्दों के स्थान में शनैः-शनैः बेंचों, डक्सों तथा मेजों और कुर्सियों का प्रवेश हुआ। पहले परीक्षाएं हुआ करती थीं। प्रश्न पत्र दे दिया, बीच में भण्डार की घण्टी बजी, भोजन के लिए परीक्षार्थी चल पड़े। भोजन खाया जा चुका। एकाध घण्टा आराम भी भोजन के बाद ले लिया और फिर उसी प्रश्न-पत्र के उत्तर लिखने के लिए बैठ गये। परीक्षा के सम्बन्ध में भी वर्तमान पद्धति का प्रवेश श्री आचार्य रामदेव जी ने ही किया था। शनैः-शनैः वर्तमान समय के विषयों ने भी पाठ्यक्रम में प्रवेश पाया। विज्ञान, भूगोल, इतिहास, अंग्रेजी आदि विषयों का प्रवेश शनैः-शनैः होता गया। पढ़ाई के समय का टाईम-टेबिल बनाना, हर अन्तर के बाद घण्टियों का बजाना और श्रेणियों का बदलना, त्रैमासिक, षड्मासिक और वार्षिक परीक्षाओं का होना—इस सब पद्धति को गुरुकुल में स्थान मिला। इस आधुनिकता का यद्यपि पहले-पहल कुछ विरोध हुआ, परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया विद्यार्थियों ने इस पद्धति की उपयोगिता को समझना शुरू किया, और शिक्षा की इस नवीन पद्धति ने गुरुकुल में जड़ पकड़ ली।

(2)

आचार्य रामदेव जी की विद्वत्ता सर्व प्रसिद्ध थी। गुरुकुल कांगड़ी में महाविद्यालय विभाग में आचार्य जी समय-समय पर अंग्रेजी भी पढ़ाते रहे, अर्थशास्त्र भी पढ़ाते रहे, इतिहास और राजनीति शास्त्र भी पढ़ाते रहे हैं। इन विषयों में इनका पर्याप्त अध्ययन था। अंग्रेजीभाषा के संबंध में तो उनका लोहा पंजाब में माना जाता था। महात्मा पार्टी में वे सर्वश्रेष्ठ अंग्रेजी के लेखक तथा व्याख्याता समझे जाते रहे। वैदिक मैगजीन तथा The detractors of the Arya Samaj—इनके अंग्रेजी भाषा के उच्चज्ञान के प्रमाण हैं। इनका विचार था कि अंग्रेजी भाषा के परिज्ञान के लिये Intensive study (एक ही पुस्तक को अधिक घोटा लगाने) की बजाय Extensive study (अधिकाधिक पुस्तकों को पढ़ते चले जाना) अधिक लाभप्रद है। अपने इसी विचार के अनुसार गुरुकुल में ये अँग्रेजी पढ़ाया करते थे। अंग्रेजी भाषा के परिज्ञान कराने के निमित्त आप अंग्रेजी भाषा के व्याकरण पर बहुत कम जोर देते थे। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में ये एक प्रामाणिक विद्वान् थे। भारतवर्ष की प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं का इन्होंने पुस्तक के रूप में संग्रह भी छपवाया था। इतिहास की दृष्टि से आपने पुराणों का भी गहरा मंथन किया था। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के स्वाध्याय के कारण भारत की प्राचीन सभ्यता पर इनकी उग्र श्रद्धा थी। जहाँ-जहाँ भारतीय सभ्यता के उपादेय अंश इन्हें मिल सकते थे, उनके संग्रह के लिए ये बहुत यत्न करते थे। भारत की प्राचीन स्थानों की खुदाइयों, शिलालेखों आदि के सम्बन्ध में लिखे साहित्यों का इन्होंने प्रायः अध्ययन कर लिया था। इनका स्वाध्याय बहुत व्यापी था। संस्कृत साहित्य के उन ग्रन्थों को, जिनका कि अनुवाद अंग्रेजी में मिल सका, इन्होंने पढ़ लिया था। वेदों, ब्राह्मण-ग्रन्थों, उपनिषदों, धर्मसूत्रों, स्मृतियों आदि वैदिक तथा संस्कृत-साहित्य के ग्रंथों

के अंग्रेजी अनुवाद आचार्य जी ध्यान पूर्वक पढ़ लिये थे। गुरुकुल कांगड़ी के पुस्तकालय को देखें तो इन अंग्रेजी अनुवादों में स्थान-स्थान पर श्री आचार्य जी के लगाए चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं,। बौद्धों का साहित्य, जैनियों का साहित्य तथा इसी प्रकार अन्य हिन्दू साहित्य का भी अध्ययन अंग्रेजी अनुवादों के द्वारा श्री आचार्य जी ने कर लिया था। जिन्होंने वैदिक मैगजीन को नियमपूर्वक पढ़ा है, वे श्री आचार्य जी की विद्वत्ता को अच्छी प्रकार अनुभव कर सकते हैं। अपने व्यापी अध्ययन में आर्य सिद्धांतों सम्बन्धी या भारत के प्राचीन गौरव सम्बन्धी जो-जो घटनाएँ तथा वर्णन इन्हें प्राप्त थे, उनका सुन्दर संग्रह वैदिक मैगजीन में हमें मिलता है। कई वैदेशिक विद्वान् वैदिक मैगजीन के द्वारा ही इनके प्रशंसक बन गये थे। श्री आचार्य जी की विद्वत्ता की छाप इनके दिये व्याख्यानों पर भी होती थी। व्याख्यानों में व्यर्थ की किस्से-कहानियां सुनाकर सुनने वालों के समय को इन्होंने कभी नष्ट नहीं किया। जब वे मंच पर खड़े होते थे तो उससे पूर्व ही मंच की मेज किताबों से लाद दी जाती थीं। इन किताबों से उद्धरणों पर उद्धरण जब श्री आचार्य जी अपने व्याख्यानों में दिया करते थे, उस समय इनकी विद्वत्ता से जनता विस्मित हो जाया करती थी। इस प्रकार के व्याख्यान के जन्मदाता श्री आचार्य जी ही थे। इनके व्याख्यानों ने आर्य-समाज में एक विशेष युग ला दिया था, जो कि श्री आचार्य जी के स्वर्गारोहण के साथ-साथ समाप्त प्रायः हो गया है। इनके पीछे आर्य-समाज के इने-गिने विद्वानों ने इस व्याख्या परिपाटी को कभी-कभी अपनाया भी। परन्तु वे इस व्याख्यान परिपाटी में सफल न हो सके। क्योंकि इस व्याख्यान-परिपाटी में वही व्याख्याता सफल हो सकता है जो दिन-रात स्वाध्याय में लगा रहे। आचार्य जी के स्वाध्याय की यह विशेषता थी कि वे बिना स्वाध्याय के रह न सकते थे। स्वाध्याय उनके लिये अन्न था, श्वासोच्छ्वास था। टाँगे पर बैठे हुए, रेल-गाड़ी में यात्रा करते हुए भी ये अध्ययन न छोड़ सकते थे। एक बार मुझे भी आचार्य जी के साथ गुरुकुल-चन्दे के निमित्त क्वेटा से नोशकी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जाते समय गाड़ी में इनकी पुस्तक समाप्त हो गई। नोशकी में जाकर इन्होंने अनुभव किया कि इनके पास कोई पुस्तक नहीं रही जिसका कि ये अध्ययन करें। जिस सज्जन के घर में हम जाकर टिके थे, उनके पास केवल गुरुग्रंथ साहिब के कुछ खण्ड पड़े थे। श्री आचार्य जी ने उन्हें ही पढ़ना आरम्भ कर दिया। एक बार की एक और घटना याद आ गई। मैं और श्री आचार्य जी लाहौर से हरिद्वार जा रहे थे। गाड़ी में पढ़ने के लिये इस बार भी इनके पास कोई पुस्तक न थी। इनके पास रेलवे टाईम-टेबल था। उसके नियमों आदि को ही इन्होंने आद्योपान्त पढ़ डाला। इस प्रकार इनमें अध्ययन के लिये एक लग्न थी। अध्ययन के बिना यह रह ही न सकते थे। ऐसा अध्ययन-प्रेमी व्यक्ति ही अपने व्याख्यानों को उद्धरणों से भरपूर कर सकता है, और यह विशेषता केवल श्री आचार्य जी में ही थी।

(३)

श्री आचार्य जी का व्यक्तित्व भी गौरवान्वित था। श्री आचार्य जी रहन-सहन में बहुत सादे थे। कभी भी इनके देह पर शौकीनी के वस्त्र पैंने नहीं देखे।

पोशाक की सादगी के साथ-साथ पोशाक की स्वच्छता पर उनका विशेष ध्यान रहता था।

श्री आचार्य जी की स्मृति शक्ति कमाल की थी। जो एक बार पढ़ जाते वह इन्हें याद हो जाता था। कभी इनसे यदि कोई उद्धरण माँगा गया तो ये आसानी से उस उद्धरण को निकाल दिया करते थे। किसी चिट्ठी को एक बार पढ़ लें तो इन्हें याद हो जाती थी।

इस स्मृति-शक्ति के कारण इनकी तर्कशक्ति भी महान् थी। गुरुकुल-वास में मैंने इन जैसा तार्किक और कोई नहीं देखा। चूंकि यह पर्याप्त अध्ययन करते थे और अध्ययन किया हुआ इन्हें स्मरण रहता था, इसलिये इनके साथ विरोधी पक्ष लेकर बहस करना कठिन हो जाता था। अपने पक्ष में प्रमाण इनके पास इतने अधिक होते थे कि अन्त में हार माननी ही पड़ती थी। मुझे याद है कि गुरुकुल में एक बार इनमें तथा स्वर्गीय प्रोफेसर बालकृष्ण जी एम. ए. में गुरुकुल की वाग्वर्धिनी सभा में पक्ष-विपक्ष रूप में विवाद हुआ। सभापति श्री महात्मा मुन्शीराम जी बने थे। श्री आचार्य जी का पक्ष था कि बड़ी-बड़ी मिलों से संसार को अन्ततोगत्वा नुकसान होता है और प्रोफेसर बालकृष्ण जी का पक्ष था कि इनसे संसार का भला होता है। दो घण्टों तक वाद-विवाद जारी रहा। अन्त में श्री आचार्य जी का पक्ष भारी रहा। अन्य भी वैयक्तिक तथा सामाजिक वाद-विवादों में मैंने देखा है कि श्री आचार्य जी प्रायः बाजी ले जाया करते।

श्री आचार्य जी के व्यक्तित्त्व में आकर्षण भी था। लोग चाहा करते थे कि श्री आचार्य जी के साथ भ्रमण करने का मौका मिले या इनके साथ बैठने-उठने का मौका मिले। घण्टों इनके पास बैठे रहने से भी दिल उकताता न था। इस सहवास में इनसे नई-से-नई ज्ञान-वार्त्ताएँ प्राप्त होती थीं। सहवास में प्रायः आचार्य जी ही अधिक समय तक बोलते रहा करते थे। इसका भी कारण वही था कि इनकी स्मरण शक्ति के उग्र होने के कारण ये अधिक काल तक दूसरे को अपने अभिमुख कर सकने की योग्यता रखते थे। गुरुकुल में प्रायः बाहर से दर्शक आया करते थे। अच्छे-अच्छे दर्शकों को गुरुकुल के दिखाने में, उन्हें गुरुकुल के आदर्शों के प्रति झुकाने में, और उन पर गुरुकुल की छाप लगा देने में श्री आचार्य जी की अपूर्व योग्यता दृष्टिगोचर होती थी। किसी नामी दर्शक के आ जाने पर श्री आचार्य जी ही उस नामी दर्शक के साथ प्रायः बैठते घूमते और टहलते प्रतीत होते थे।

श्री आचार्य जी के व्यक्तित्त्व का प्रभाव भारत के तथा बाहर के नेतागण पर भी था। महात्मा गाँधी जी भी इनके गुणों के प्रशंसक रहे हैं। सर रेमजे मेकडानल्ड ने भी इनकी प्रशंसा मुक्त-कण्ठ से की थी। स्वर्गीय गोखले, महामना मालवीय, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी, श्री आशुतोष मुकर्जी जी आदि हर प्रकार के तथा भिन्न-भिन्न रुचियों के महानुभावों के साथ भी इनका गहरा परिचय था और उन पर इनका प्रभाव था।

श्री आचार्य जी प्रोपेगण्डा तथा कनवेसिंग में भी सिद्धहस्त थे। इनकी इन योग्यताओं को वह व्यक्ति खूब अनुभव कर पाता था जिसे कभी गुरुकुल के लिए चंदा पार्टी में इनके साथ जाने का मौका मिलता था। ये बिना चन्दा लिए उठा न करते थे। जिसके दिल में चन्दा न देने का ख्याल हो, उससे भी चन्दा ले लिया करते थे, तथा जो थोड़ी रकम देना चाहे उससे भी ये बड़ी रकम निकलवा लिया करते थे। यह सब कुछ इनके प्रभावक व्यक्तित्त्व के कारण ही होता था और लोग इनके प्रभावक व्यक्तित्त्व में दबकर इनका कहना मान लिया करते थे।

श्री आचार्य जी में अतिथि सेवा का भाव कूट-कूटकर भरा हुआ था। इसलिए इनकी आर्थिक सम्पत्ति सदा घाटे में रहा करती थी। मित्रों और अतिथियों के लिए इनका बटुआ सदा खुला रहता था। यह कहा करते थे कि इनकी सारी सम्पत्ति इनके बटुए में सदा रहा करती है। धन की लालसा इनमें रत्ती-भर न थी। जो कुछ मासिक मिला, उसके द्वारा घर की, मित्रों की और अतिथियों की इन्होंने सेवा कर दी। इस प्रकार श्री आचार्य जी के व्यक्तित्त्व में भी पर्याप्त विशेषता और प्रभाव मुझे सदा प्रतीत होता रहा है।

आचार्य रामदेव जी

(पं० गोपाल जी भूतपूर्व मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ)

श्री आचार्य रामदेव जी के साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध उस समय कायम हुआ जब वह प्रो० बालकृष्ण जी को गुरुकुल में काम करने की प्रेरणा करने के लिए गवर्नमेंट कालेज में पधारे। यह 1900-1910 का जिक्र है। मैं उस समय थर्ड इयर में पढ़ता था और प्रोफेसर बालकृष्ण जी एम० ए० में पढ़ते थे। मैं आचार्य जी की सादगी योग्यता तथा कर्त्तव्यपरायणता से उसी समय बहुत प्रभावित हो गया था—उनको उस समय एक ही धुन थी कि जितने आर्य नवयुवक हैं, वे गुरुकुल की सेवा में आ जाएँ। प्रो० बालकृष्ण जी एम. ए. पास करते ही गुरुकुल में काम करने के लिए चले गये और आचार्य जी मुझे प्रेरणा कर गए कि बी. ए. पास करके तुमने भी गुरुकुल में ही काम करना है। उसके बाद मैं कई बार आचार्य जी से मिलता रहा और हमेशा बातचीत इसी विषय पर समाप्त होती थी कि गुरुकुल की सेवा को ही मैं अपना लक्ष्य बनाऊँ।

मैंने अपने विद्यार्थी काल में शायद ही कोई ऐसा वर्ष व्यतीत किया हो, जब मैं गुरुकुल के उत्सव में शामिल न हो सका। 9वीं श्रेणी से लेकर एम. ए. की परीक्षा तक मैं गुरुकुल के उत्सवों में बतौर एक स्वयंसेवक के रूप में शामिल होता रहा हूँ—विद्यार्थीकाल की समाप्ति के पश्चात् मैंने आचार्य जी की इच्छानुसार 26 वर्ष गुरुकुल की सेवा में ही व्यतीत किए हैं।

इन 26 वर्षों में मुझे किसी व्यक्ति ने यदि विशेष रूप से गुरुकुल में प्रभावित किया है तो वह श्री आचार्य रामदेव जी हैं, जिन्होंने गुरुकुल के लिए अपना सर्वस्व प्रदान किया—इस गुरुकुल के लिए उन जैसे तपस्वी, त्यागी विद्वान् ने अपने सांसारिक अभ्युदय पर लात मारी—यदि वह चाहते तो किसी बड़े सरकारी पद पर आरूढ़ हो सकते थे। परन्तु उनको एक धुन थी और धुन यह थी कि किसी प्रकार संसार भर में वैदिक संस्कृति और सभ्यता का प्रचार हो जाय। न उन्हें खाने की सुध थी और न ही पहनने की। वह गुरुकुल की उन्नति के लिए मतवाले थे और दर-दर भिक्षा करते थे और लोगों को अपने क्रियात्मक जीवन से प्रभावित करते थे।

मैंने उन्हें तीन रूपों में देखा है—एक आचार्य के रूप में, दूसरा आर्य समाज के नेता के रूप में और तीसरा देश के नेता के रूप में।

जो महानुभाव उनके आधीन काम करते रहे हैं—और जो ब्रह्मचारी उनसे शिक्षा ग्रहण करते रहे हैं—वे भली प्रकार जानते हैं कि जिस विषय को उन्होंने अपने हाथ में लिया उसमें उन्होंने पूर्णतया दक्षता प्राप्त की और सबको उनकी दी शिक्षा से

लाभ पहुँचा। उनका स्वाध्याय बहुत विस्तृत था। अनेक कामों के करते हुए भी उन्होंने अन्त समय तक अपने स्वाध्याय को नहीं छोड़ा, प्रत्येक विषय में चाहे अर्वाचीन हो या प्राचीन हो –उन सब पर उन्होंने निपुणता प्राप्त की। गुरुकुल में उन दिनों बड़े-बड़े विद्वान् और नेता पधारते थे, उनके साथ केवल आचार्य जी ही बातचीत कर सकते थे, शेष किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि उनके साथ वाद-विवाद कर सके।

श्री आचार्य जी के जमाने में गुरुकुल में शिक्षा का Standard बहुत ऊँचा था। विद्यार्थियों को स्वाध्याय का बहुत शौक पैदा हो गया।

जो इस समय गुरुकुल का पुस्तकालय है उसको इस क्रम में लाने का श्रेय श्री आचार्य रामदेव जी को ही है—शिक्षा का वायुमण्डल पैदा करना, अच्छे-अच्छे योग्य शिक्षकों का संग्रह करना और शिक्षा को उन्नत करने के लिए सब प्रकार की सामग्री का इकट्ठा करना—ये आचार्य के मुख्य कर्त्तव्य है, इन कर्त्तव्यों से आचार्य जी कभी च्युत नहीं हुए—इससे किसी को कोई भी इन्कार नहीं है।

गुरुकुल को किसी सरकारी साधन द्वारा सहायता नहीं मिलती। जितना धन और जायदाद इस समय गुरुकुल के पास है उनका अधिकाँश भाग उन्हीं का ही इकट्ठा किया हुआ है। आज गुरुकुल के विशाल भवनों से कई लोग प्रभावित होते हैं परन्तु वे भूल जाते हैं कि इन भवनों के निर्माण के लिए दर-दर भिक्षा माँगने वाले आचार्य रामदेव जी इस समय ईश्वर की गोद में खेल रहे हैं। एक शिक्षक के रूप में जितना अन्तरीय प्रबन्ध तथा नियन्त्रण उनके जमाने में था उसका सौवां भाग भी इस समय मौजूद नहींहै इससे कौन इंन्कार कर सकता है ?

गुरुकुल का सारा स्टाफ उनके साथ था। हमने कभी भी अनुभव नहीं किया था कि वह हमारे अफसर हैं, प्रत्युत सब यही अनुभव करते थे कि वह हमारे बड़े भाई हैं। सचमुच गृहस्थ में रहते हुए भी वे एक सच्चे संन्यासी थे –जिनके पास सारी सम्पत्ति वही थी जो उनकी (पाकेट) जेब में आ सकती थी। वह हंसी में कहा करते थे कि मेरी सारी जायदाद मेरे साथ चलती फिरती रहती है और इस जेब में भरपूर है। वह एक सच्चे ब्राह्मण थे। सच्चा ब्राह्मण ही सच्चा शिक्षक बन सकता है। दूसरा रूप उनका वह था जब वह आर्य समाज के नेता के रूप में हमारे सन्मुख प्रकट हुए, वह आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान रहे और आर्य समाज का सारा नवयुवक मण्डल उनका दायां अंग था। शायद ही पंजाब की कोई आर्य समाज हो जहाँ उन्होंने जाकर वहाँ की जनता को अपने उपदेशामृतों से लाभ न पहुँचाया हो। रात और दिन गाड़ी की लम्बी यात्राओं ने उनके शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव डाला परन्तु वह अपने ध्येय की ओर बढ़ते ही गये। यदि वह आज पेशावर हैं तो दूसरे दिन कराची की यात्रा के लिए तैयार हैं। उनमें व्याख्यान देने की शक्ति अद्भुत थी। हजारों नर-नारी उनके व्याख्यानों को, बड़े प्रेम से सुनते और प्रभावित होते थे। वेदप्रचार को उन्नत करने के लिए उन्होंने दयानन्द सेवा सदन, की बुनियाद डाली जिसमें उन आर्य नवयुवकों को आजीवन सेवा करने के लिए व्रत लेना पड़ता था जो जो स्वयं सेवी निर्धन जीवन को

अपना लक्ष्य बनाते थे परन्तु वह संस्था बहुत उन्नत न हो सकी। आर्य प्रतिनिधि सभा की जो वर्तमान उन्‍ त अवस्था है उसमें अधिकतर उनका ही विशेष भाग है।

आर्य प्रतिनिधि सभा में जिन योजनाओं पर इस समय अमल हो रहा है वे लगभग सब योजनाएँ उन्हीं की तैयार की हुई हैं। वह केवल वक्ता ही नहीं थे प्रत्युत एक बड़े लेखक भी थे। वदिक मैगजीन नामक अंग्रेजी पत्र के वह सम्पादक थे उस मैगजीन की न केवल भारतवर्ष में ही माँग थी प्रत्युत विदेश में भी उसको बड़ी प्रतिष्ठा की निगाह से देखा जाता था।

मुझे पंजाब में एक भी ऐसा आर्य नहीं मिला जिन्होंने उनकी सच्चाई सादगी, ईमानदारी तथा कार्य तत्परता की प्रशंसा न की हो—सच्चा आर्य और क्रियात्मक आर्य यदि कोई व्यक्ति कहा जा सकता है तो वह आचार्य रामदेव जी को ही कहा जा सकता है। आर्य समाज का नेतृत्त्व जब तक ऐसे महानुभावों के हाथों में रहा तब तक आर्य समाज का स्थान इस संसार में ऊँचा रहा है। आर्य समाज की गिरावट उस समय आरम्भ हुई जब इसका नेतृत्त्व बाबुओं और धनाढ्य पुरुषों के हाथ में आ गया जो विद्वानों को Exploit करने में हमेशा तत्पर रहते हैं।

तीसरा रूप उनका वह है जब उन्होंने असहयोग के दिनों में महात्मा गाँधी के आदेश के अनुसार देश की सेवा आरम्भ की और जेल यात्रा के लिए प्रस्थान किया। आप महात्मा गाँधी के सच्चे अनुयायी थे। और महात्मा गाँधी भी उनको बड़ी इज्जत की निगाह से देखते थे। जेल यात्रा के पश्चात् उनका शरीर बहुत शिथिल होने लगा।

उनकी अन्तिम कृति कन्या गुरुकुल है और अपनी आयु के अन्तिम वर्ष उन्होंने इस संस्था को दिये। यह कन्या गुरुकुल भारत वर्ष की एक अद्वितीय संस्था है। जो कुछ इस संस्था ने उन्नत्ति की है वह सब उन्हीं के उद्योग का फल है।

शोक है वह जल्दी हम से बिछुड़ गये। जो उनकी पूर्ण स्कीम थी वह पूरी न हो सकी।

परमात्मा ऐसी शुद्ध आत्माओं को अपने यहाँ जल्दी बुला लेते हैं और हम सब का धैर्य का परीक्षण करते रहते हैं।

ईश्वर के नियम न्यारे हैं उन्हें कोई टाल नहीं सकता।

वे व्यक्ति नहीं, संस्था थे

(ले०—श्री आनन्द प्रिय बी० ए० एल० एल० बी०बड़ौदा)

आर्यसमाज का प्रारम्भिक इतिहास त्याग, तप और बलिदान का एक उज्ज्वल इतिहास है। उस समय एक-एक मन्दिर के निर्माण में एक एक संस्था की स्थापना में अनेकों व्यक्तियों के त्याग, तप और बलिदान की गाथायें जब हम पढ़ते हैं, हमारा मस्तक श्रद्धा से उन विभूतियों के चरणों में झुक जाता है। आर्यसमाज का वह युग स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

आचार्य रामदेव जी ने बाल्यकाल समाप्त कर जब संसार में पदार्पण किया उन्होंने अपने आपको आर्यसमाज के उस प्रेरणामय युग के बीच में पाया। जब एक-एक आर्यसमाजी वेद का झण्डाधारी बन अपने आपको संदेश वाहक के रूप में मानता था। ग्रेजुएट होने के पश्चात् वे चाहते तो किसी अच्छी नौकरी को पाकर सुख से जीवन बिताते, परन्तु उनकी हृदय तंत्रियाँ झंकृत हो चुकी थीं। उन्होंने युवावस्था में पदार्पण करने के साथ ही अपना तन, मन, धन आर्यसमाज के चरणों में अर्पित कर दिया। शीघ्र ही वे व्यक्तित्त्व मिटा कर संस्था बन गये।

पंजाब में उन दिनों दो दल थे। दोनों ही दलों के व्यक्ति कर्मवीर थे। रामदेव जी थोड़े ही काल में गुरुकुल विभाग के नेता महात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी के दाहिने हाथ बन गए। जिस समय उन्होंने अपना आर्यसमाजिक क्षेत्र में कार्यारम्भ किया, उस समय अमृतसर में हमारे घर पर, सह-कुटुम्ब कई महीनों तक वे रहे थे। पूज्य पिता जी (मास्टर आत्माराम जी) कहा करते थे, उन जैसा स्वाध्यायशील, अनथक कार्यकर्त्ता भाग्य से ही प्राप्त होता है। स्वाध्यायशीलता के अनुपम गुण ने उनको रिसर्च स्कालर बना दिया। वे शीघ्र गुरुकुल काँगड़ी के उपाध्याय पद पर नियुक्त हो गये और उनका इतिहास का अनुशीलन अनुपम रहा। आर्यों के वेद कालीन इतिहास पर जो सुन्दर पुस्तक उन्होंने लिखी है, वह उनके गहरे अनुशीलन पर सुन्दर प्रकाश डालती है।

अपने जीवनकाल में वे 'वैदिक मैगजीन' नामक एक अत्युत्तम अंग्रेजी मासिक पत्रिका निकालते रहे और उनकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो रायल एशियाटिक सोसायटी ने उनको अपना मानद सभ्य बनाया था। गुरुकुल में जाने के पश्चात् स्वर्गीय रामदेव जी ने आर्यसमाज जगत् में एक उत्तम लेखक, उत्तम वक्ता तथा उत्तम प्रबन्धकर्त्ता के रूप में ख्याति प्राप्त की। उनका गुरुकुलीय जीवन भी आदर्श जीवन था। मोटा खाना, मोटा पहिनना और चौबीस घण्टे आर्यसमाज के उत्कर्ष का ही कार्य करना उनका

जीवन-ध्येय रहा। उन्होंने जितने भी विद्यार्थी पढ़ाए वे उनके समान ही इतिहास के प्रोफेसर बन कर निकले। आर्य जगत में गवेष्णा पूर्ण व्याख्यानों की धूम मच गई। उनकी स्मरण शक्ति भी आश्चर्यजनक थी। व्याख्यान में एक के पश्चात् एक पुस्तक, लेखक तथा आचार्यों का मत वे रखते जाते और लोग उनकी सागर सम विद्वत्ता पर मन्त्र मुग्ध हो जाते।

महात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ काम कर वे पारसमणी बन गये थे। शीघ्र ही गुरुकुल का आचार्यत्त्व उन्हें प्रदान किया गया। महात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी के पश्चात् जिस योग्यता से उनके आचार्यत्त्व में गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी का संचालन हुआ ये किसी से छिपा नहीं है। श्रद्धानन्द जी की परम्परा को चालू रखने में तथा तेजस्वी शिष्य मण्डल उत्पन्न करने में उन्होंने सम्पूर्ण सफलता प्राप्त की थी। आज भी अनेक तेजस्वी स्नातक उन्हीं के आचार्य काल की प्रसादी है।

आचार्य रामदेव जी ने उत्तरावस्था में कन्या गुरुकुल देहरादून का भार उठा कर आर्य जगत् में एक महान् कमी को पूरा किया। हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सेठ रघुमल जी से कन्या गुरुकुल के लिए एक लाख रुपया प्राप्त किया। देहली अनुकूल स्थान न होने से, यह गुरुकुल देहरादून में ही पनप सका। पर इसका कर्णधार महात्मा रामदेव जी को बनाया गया। कुमार गुरुकुल को चलाना सहज है पर कन्या गुरुकुल का निर्माण करना, उसका उत्तमता पूर्वक संचालन करना एक बड़ा भारी जिम्मेदारी का काम है। प्रो० रामदेव जी देहरादून कन्या गुरुकुल के सच्चे पिता के रूप में जीवन की अन्तिम घड़ियों तक सेवा करते रहे। आज देहरादून कन्या गुरुकुल इस महान् तपस्वी का एक अनुपम स्मृति मंदिर है।

देश के कुमार एवं कुमारियों के अन्दर नव जीवन प्रगटाने वाले उनको वैदिक संस्कृति का पुजारी बनाने के लिए अपने जीवन को बत्ती बनाकर शनैः शनैः जलाने वाले आज भौतिक शरीर से चले गये। आज भले ही आचार्य रामदेव जी इस संसार में न हों परन्तु वे असंख्य शिष्य और शिष्या मंडल की हृदय तंत्रियों को झंकृत करते हुए आज भी अमर संदेशवाहक के रूप में वे विराजते हैं।

पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के कर्णधार बन उसकी नीति और संचालन की बागडोर हाथ में रख समस्त पंजाब में महर्षि दयानंद के मिशन को जीवित और जागृत रखने वाले एक उच्चतम कोटि के नेता के रूप में हम उन्हें पाते हैं।

आज महर्षि दयानन्द के परम शिष्य, महात्मा श्रद्धानन्द जी के लेफ्टिनेन्ट, आर्यसमाज के नेता, आर्य शिक्षण के प्रस्तोता, आर्य जगत् में नव निर्माण करने वाले महान स्वप्न द्रष्टा, उत्कृष्ट लेखक, अनेक संस्थाओं के प्राण, मातृ मंदिर के महान् पुजारी, महात्मा आचार्य रामदेव जी की पुण्य स्मृति में हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करते हैं। आर्य समाज आज इसलिए अमर संस्था है कि उसमें आचार्य रामदेव जी जैसी अमर विभूतियाँ उत्पन्न करने की क्षमता है।

भगवान् इस देश में अनेक रामदेव उत्पन्न करें, जिससे भारतवर्ष आर्य संस्कृति का स्रोत रहता हुआ, संसार का फिर आचार्य पद धारण कर सके।

आचार्य रामदेव जी

(लेखक—बाबू पूर्णचन्द्र जी ऐडवोकेट आगरा)

आचार्य रामदेव जी का जीवन हर दृष्टिकोण से अनुकरणीय व आदर्श था। उनके जीवन में एक विशेष लगन थी। उन्होंने बी० ए० पास करके ही आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को अपना जीवन अर्पण कर दिया। वह इसके आजीवन सदस्य बन गए और सारे जीवन भर अपनी इस प्रतिज्ञा को निभाया। उनका जीवन एक त्याग का जीवन था। वह संन्यासी नहीं बने पर गृहस्थ में भी उन्होंने संन्यासवृत्ति का परिचय दिया।

उनके जीवन में तप भी था और त्याग भी। यदि वह किसी कालिज में होते व सरकारी नौकरी करते तो बहुत सा रुपया पैदा कर सकते थे। लेकिन धन की परवाह न करके सारा जीवन त्याग का बिताना कोई साधारण बात नहीं। तप व त्याग के साथ-साथ स्वाध्याय की प्रवृत्ति उनका तीसरा विशेष गुण था। वह हर समय पढ़ते रहते थे, जो पढ़ते थे नोट कर लेते थे। वह लेखक भी थे और लेक्चर देने वाले भी। वैदिक मैगजीन मासिक पत्रिका के बरसों सम्पादक रहे, और जिसने उस समय के वैदिक मैगजीन को पढ़ा है वह जानता है कि वह किस शान से निकलती थी। उन्होंने न केवल स्वदेश में प्रचार किया वह विदेश भी गए। दक्षिण अफ्रीका और केनिया में आज तक लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। उनका जीवन क्रियात्मक जीवन था, वह गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रचारक और पोषक थे। उन्होंने अपने दोनों लड़कों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराया और वहाँ का स्नातक बनाया।

कन्या गुरुकुल देहरादून का संचालन किया और सब पुत्रियों को वहाँ पर पढ़ाया। उन्हें आर्य समाज के प्रचार की बड़ी लगन थी, मुझे खूब याद है कि जब वे बीमार थे, तब भी उन्हें आर्य समाज के प्रचार की चिन्ता लगी रहती थी।

जब बीमार थे वह सार्वदेशिक सभा के अधिवेशन में आए थे और बोल न सकते थे, तब भी कार्यवाही में भाग लेते रहे।

वह दर्शन और इतिहास के पण्डित थे। उनका लिखा 'भारतवर्ष का इतिहास' चिरकाल तक जीवित रहेगा।

आचार्य जी से मेरा पुराना परिचय था। जब कभी आगरे आते थे मेरे यहाँ ठहरा करते थे, उनके बड़े पुत्र पं० यशपाल जी भी उनके चरणचिह्नों पर चल रहे हैं, उनके छोटे पुत्र सत्यभूषण जी ने कविता में काफी ख्याति प्राप्त कर ली है।

उनको धन संग्रह करने का अच्छा अभ्यास हो गया था। मुझे एक घटना याद है। वह आगरे आये थे और मेरे यहाँ ठहरे हुए थे। वह एक दिन आबागढ़ राजा के

पास गए और गुरुकुल के लिए धन की सहायता ले आए। उनकी बातचीत करने का ढंग ऐसा था जिससे सब प्रभावित हो जाते थे।

मुझे उनकी यह बात सदैव याद रहेगी। अजमेर में अर्धशताब्दी थी। सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा का अधिवेशन वहाँ बुलाया गया था। उस वर्ष मैं संयुक्त प्रान्त प्रतिनिधि सभा का प्रधान तथा सार्वदेशिक सभा का भी सदस्य था। अन्तरंग सभा के सामने प्रश्न यह था कि आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब को सार्वदेशिक सभा में प्रविष्ट किया जाए या नहीं ? आचार्य जी ने उनके प्रवेश का बहुत विरोध किया। भारत वर्ष की प्रतिनिधि सभाओं के प्रतिनिधि एक तरफ थे तथा पंजाब के प्रतिनिधि एक तरफ। बहुमत से निश्चिय हुआ कि प्रविष्ट कर लेना चाहिए वह पहला अवसर था जब कि मैंने आचार्य जी का खुला विरोध किया है। सब सदस्यों ने समझौते का कार्य मेरे सुपुर्द किया पर कोई नतीजा न निकला इससे यह निश्चय निकाला जा सकता है कि वे माँस भक्षण को कितनी घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनका यह विचार था कि जब सार्वदेशिक सभा माँस भक्षण को वेद विरुद्ध मानती है तो प्रादेशिक सभा को क्यों सम्मिलित किया जाए।

वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के पोषक थे। आगरे में एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए उन्होंने कहा था कि हिन्दू-मुस्लिम पृथक धर्मों को मानते हुए भी एक हैं, क्योंकि हम सब आर्यों की संतान है। जब इस्लाम का जन्म भी न हुआ था तब से आर्य जाति चली आ रही है, और इसी आर्य जाति के वंशजों ने इस्लाम स्वीकार किया है।

वह कांग्रेस के भी कार्यकर्त्ता थे। आजीवन उन्होंने खादी धारण की। उनके कपड़े बहुत सादा होते थे।

वह कर्मकाण्ड के बड़े प्रेमी थे। बिना अग्नि-होत्र तथा संध्या किये कभी भोजन न करते थे।

उनकी यह भी इच्छा थी कि भारत वर्ष के सब गुरुकुल एक सूत्र में बंध जावें। उन सब को मिला कर एक विश्वविद्यालय बनाया जावे। कई बार वे गुरुकुल वृन्दावन के वार्षिक उत्सव पर पधारे और इस विषय पर बातचीत की, पर दुःख है कि उनकी यह अभिलाषा पूर्ण न हो सकी।

आचार्य रामदेव जी का नाम आर्य समाज के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

आचार्य रामदेव जी

(लेखक—पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय)

आर्यसमाज के निर्माताओं में श्री आचार्य रामदेव जी का स्थान बहुत ऊँचा है। गुरुकुल काँगड़ी के संचालन में तो उनका हाथ आरम्भकाल से ही रहा, वह श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के दाहिने हाथ थे और उनके शरीरान्त के पश्चात् गुरुकुल का संचालन मुख्यतः उन्हीं के हाथ में रहा।

श्री आचार्य जी हिन्दी तथा अंग्रेजी के असाधारण विद्वान्, अपूर्व व्याख्याता और निर्भीक कार्यकर्त्ता थे, उनका प्रभाव जनता पर बहुत ही अधिक था। उनके त्याग का एक मात्र प्रमाण तो यही है कि उन्होंने आर्य समाज की कड़ी सेवा में अपना जीवन अर्पण कर दिया और अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी नहीं किया।

श्री आचार्य जी की सेवायें इतनी अधिक हैं कि उनका विस्तृत उल्लेख इस छोटे से लेख में नहीं आ सकता, उन्होंने कई प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी। इस शताब्दी के आरम्भ में जब आर्य समाज पर विपत्तियाँ आई तो श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के सहयोग से उन्होंने The detractors of the Arya Samaj लिखा जो कई अर्थों में एक अद्वितीय पुस्तक है। भारतवर्ष का इतिहास भी वैदिक संस्कृति की दृष्टि से बहुत ही आदरणीय कृति है। श्री आचार्य जी के व्याख्यानों में बड़ा ही आकर्षण था। वह इतनी जल्दी बोलते थे कि मानों मेल ट्रेन छूट रही है। आचार्य जी धनसंग्रह करने में कुछ कम दक्ष नहीं थे।

गुरुकुल काँगड़ी के कोष का बहुत बड़ा अंश उन्हीं के उद्योग का फल है। कन्या गुरुकल देहरादून की बागडोर उनके अन्तिम जीवन में उन्हीं के हाथ में थी।

श्री आचार्य जी की बहुत बड़ी इच्छा अमेरिका जाने की थी। उन्होंने अपने व्याख्यानों में भी इसकी सूचना दे दी थी। यदि वह अमेरिका जा सकते तो वस्तुतः पाश्चात्य देशों में वैदिक धर्म का अच्छा प्रचार हो सकता था। दुर्भाग्य का विषय है कि लकवे के प्रकोप के कारण वह अपने उस मिशन की पूर्ति न कर सके। मैंने रुग्ण अवस्था में भी उनके दर्शन किये थे। उस समय भी यद्यपि वह बोल नहीं सकते थे तथापि उनका मन आर्यसमाज में ही लगा हुआ था। उनका परिश्रम अथक था। वह आर्यसमाज के लिए इतना कार्य करते थे कि उनके शरीर को विश्राम लेने का अवसर प्राप्त नहीं हो सकता था। मेरा तो विचार यह है कि उनकी आयु की दीर्घता में इसी कारण बाधा पड़ी। श्री आचार्य जी का जीवन आर्यसमाज के लिए एक गौरव की वस्तु थी। हम इससे अपने लिए बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

आचार्य रामदेव जी के जीवन
की
एक झलक

(स्वामी ज्ञानानन्द जी परिव्राजक)

अंग्रेजी के एक प्रसिद्ध कवि लोंगफेलो (Longfellow) ने एक स्थान पर लिखा है कि महान् पुरुषों के जीवन नवयुवकों के लिए ज्योतिस्तम्भ का काम देते हैं। उनका अनुकरण करने से मृत प्राय जीवनों में नवीन प्राणों का संचार होता है और उनके कारनामे अगली आने वाली सन्तति के लिए मार्ग-दर्शन का काम करते हैं। आर्यसमाज के उज्ज्वल रत्नों में से स्व० आचार्य रामदेव जी एक देदीप्यमान हीरे थे। सन् 1896 में मैंने पहली बार उन्हें लाहौर में देखा और 1897 में मास्टर शिवदयाल जी एम० ए० ने उनसे मेरा परिचय कराया। उन दिनों आर्यसमाज के नवयुवकों में धार्मिक भावनायें पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थीं।

1895 में ला० लाजपतराय, पं० गुरुदत्त जी इत्यादि ने आर्यसमाज वच्छोवाली में एक साप्ताहिक डिवेटिंग क्लब जारी की। इसकी कार्यवाही पहले उर्दू भाषा में हुआ करती थी। पश्चात् प्रो० शिवदयाल जी एम० ए० इसके प्रधान नियत हुए। उस समय इसकी कार्यवाही अंग्रेजी भाषा में हुआ करती थी। उन दिनों आचार्य रामदेव जी इसमें धाराप्रवाह इंगलिश में भाषण दिया करते थे। यद्यपि वे उस समय एफ० ए० के विद्यार्थी थे। आरम्भ से इन्हें आर्यसमाज के प्रती लगन थी। रामदेव जी की स्मरणशक्तिअद्भुत थी। वे किसी बात को एक बार सुनने पर ही कण्ठाग्र कर लिया करते थे। उस समय डी० ए० वी० कालेज के प्रिंसिपल महात्मा हंसराज जी थे। यह दोनों मौसेरे भाई थे। परन्तु इनके विचारों में बड़ा भेद था। विद्यार्थी जीवन में भी रामदेव जी अपने विचारों को प्रगट करने में कभी संकोच न करते थे। बचपन से ही इन्हें पढ़ने का वहुत शौक था। यह अपना समय कभी व्यर्थ न गँवाते थे। एफ० ए० पास करने के बाद आप विक्टर हाई स्कूल जालन्धर के सफल हैड मास्टर थे। इसी से इनकी योग्यता का अन्दाजा लगाया जा सकता है। ये प्राय: आर्यसमाजों के उत्सवों पर भी जाया करते थे। इनके व्याख्यानों की उस समय भी आर्यसमाजों में बड़ी धूम मची हुई थी। 1901 में युवक रामदेव जी आर्य समाज मुलतान के उत्सव पर आये। उस समय मैं आर्यसमाज मुलतान का उपप्रधान था, यह मेरे मकान पर ही ठहरे। उत्सव पर इनके दो व्याख्यान हुए। व्याख्यानों का जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। उस समय आम जनता का यह विचार हो गया कि यह नौजवान भविष्य

में न केवल एक ऊँचे दर्जे का व्याख्याता ही होगा प्रत्युत आर्यसमाज का पथ-प्रदर्शक नेता बनेगा। 1902 में जब म० मुंशीराम जी ने गुरुकुल की स्थापना की, उस समय रामदेव जी ने जीवन की सब महत्त्वाकांक्षाओं को लात मार कर अपना जीवन गुरुकुल को समर्पित कर दिया। आप गुरुकुल के पहले मुख्याध्यापक बने और उन्नति करते करते गुरुकुल के आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता बने। आपके समय में गुरुकुल की अभूत-पूर्व उन्नति हुई। आपके ही प्रयत्नों से गुरुकुल एक साधारण पाठशाला से बढ़कर विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित हुआ। अधिक कार्य करने की शक्ति आश्चर्यजनक थी। आप अनथक कार्य करने वाले थे। आप द्वारा सम्पादित "वैदिक मैगजीन" एक ऊंचे दर्जे का धार्मिक पत्र था। इस पत्र का यश यूरोप तक फैल चुका था। आपका स्वाध्याय बड़ा विस्तृत था। अंग्रेजी भाषा में वैदिक धर्म के सम्बन्ध में जितने आक्षेप पत्रों में प्रकाशित होते थे उन सब का युक्तियुक्त उत्तर आप "वैदिक मैगजीन" में लिखा करते थे। गुरुकुल पुस्तकालय में शायद ही ऐसी कोई पुस्तक हो जोकि इन्होंने न पढ़ी हो। आर्यसमाज बच्छोवाली लाहौर के उत्सव पर होने वाले आपके व्याख्यानों को सुनने के लिए जनता का समुद्र उमड़ा करता था। आपके व्याख्यानों की प्रसिद्धि सारे भारतवर्ष में फैली हुई थी।

आपके ख्यालों को सुनने के लिए मुसलमान तथा ईसाई भी भारी संख्या में आया करते थे। जिस समय आपके व्याख्यान आर्यसमाज बच्छोवाली के मन्दिर में हुआ करते थे उस समय सारा मंदिर श्रोताओं से ठसाठस भरा हुआ होता था। जिस समय गुरुकुल में वार्षिक अवकाश हुआ करता था उस समय भी आप विश्राम न करके डेपूटेशन लेकर गुरुकुल के लिए धन संग्रहार्थ चले जाया करते थे। जबकि गंगा की बाढ़ से गुरुकुल की सब इमारतें गिर गईं उस समय आप अफ्रीका जाकर गुरुकुल के लिए एक लाख रुपया एकत्रित करके लाये थे। गुरुकुल को सर्वप्रिय बनाने में आपका बड़ा हाथ था। स्वामी श्रद्धानन्द जी के पश्चात् आप ही वास्तविक अर्थों में उनके उत्तराधिकारी थे। रात-दिन गुरुकुल का कार्य करते हुए प्रचार के लिए बाहर जाते हुए, "वैदिक मैगजीन" का सम्पादन करते हुए भी आप प्रतिदिन स्वाध्याय करने में कभी नागा न करते थे। इतने कार्यों के होते हुए भी जब सभा ने कन्या गुरुकुल की स्थापना की तो उसके चलाने का उत्तरदायित्त्व भी आपके कन्धे पर पड़ा। कन्या गुरुकुल देहरादून को वर्तमान अवस्था तक पहुँचाने का श्रेय आपको ही है। धार्मिक भावनाओं के अतिरिक्त ब्रह्मचारियों में स्वदेशभक्ति की भावना पैदा करने में भी कभी आप पीछे नहीं रहे। आपको एक राजनैतिक उत्सव के सभापति बनने के कारण से एक वर्ष के लिए ब्रिटिश सरकार का अतिथि भी रहना पड़ा। अधिक कार्य करने के कारण से आपको उन्निद्र रोग हो गया था और कारावास के कष्टों ने इसे और भी बढ़ा दिया। 1935 ई० में आप सभा की स्वर्ण जयन्ती तथा प्रतिनिधि सभा के प्रधान निर्वाचित हुए। प्रधान बनते ही आपने आर्यसमाजों का दौरा प्रारम्भ कर दिया और आर्यसमाजों में एक नई जागृति का संचार कर दिया। इस समय किन्हीं कारणों से आपके आजीवन मित्र आपसे अलग हो चुके थे और उनका सहयोग आपको प्राप्त न

हो सका। इस कार्य का इतना बोझ आप पर पड़ा कि आपका स्वास्थ्य दिन-दिन बिगड़ता चला गया। सभा की जयन्ती अपूर्व सफलता से समाप्त हुई। कहा जाता है कि उस समय जो जुलूस निकाला गया वह लाहौर के इतिहास में अभूतपूर्व था। श्री आचार्य रामदेव जी वह इंजिन थे जो कि कभी भी थकते नहीं थे। आराम करना और अपने सुख की चिन्ता करना उनके भाग्य में न था। इनकी उन्होंने कभी परवाह ही नहीं की। आपके लिखे हुए "भारतवर्ष के इतिहास" ने ऐतिहासिक जगत् में क्रान्ति पैदा की। आपके जीवन की यह विशेषता थी कि आप जो मानते थे उसे क्रिया में भी करते थे। आपने अपने बच्चों के विवाह जात-पात तोड़ कर किये। आपने प्राय: सब बच्चों को गुरुकुल में पढ़ाया। आपका स्वभाव बड़ा सरल और उदार था। आपका जीवन बड़ा सादा और तपस्वी था। साँसारिक प्रलोभन आपके मार्ग में कभी बाधा न पहुँचा सकते थे। आप अपने तप, त्याग, विद्वत्ता, सादगी, धर्म तथा स्वदेश प्रेम इत्यादि गुणों के कारण सदा नवयुवकों के लिए प्रकाश स्तम्भ रहेंगे। आपके अभाव की पूर्ति अभी तक नहीं हो सकी। आपके जीवन में अकर्मण्यता लेशमात्र भी न था।

आचार्य रामदेव जी

(ले०—पं० धर्मपाल जी विद्यालंकार, बदायूँ)

श्री आचार्य रामदेव जी के समय का आर्य समाज—आजकल के नेता विहीन आर्य समाज जैसा न था। देश के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में आर्यसमाज की विभूतियाँ अनेक प्रकार से नेतृत्त्व कर रही थी। शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल शिक्षा पद्धति का परीक्षण अनेक स्थानों में हो रहा था - गुरुकुल काँगड़ी का परीक्षण उन सब में मुख्य था। उस समय के आर्य पुरुषों के उत्साह को कौन भूल सकता है?

हम उन दिनों गुरुकुल काँगड़ी में अध्ययन करते थे। यौवनावस्था में प्रवेश करते समय ज्ञान की नई ज्योति की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था। हम अपने आपको नये संसार में, नई परिस्थिति में, नये आदर्शों में पाते थे। यह अनुभव होता था कि आर्य संसार किन्हीं विशेष आदर्शों के लिए हमें तैयार करने में संलग्न है। आर्य जगत् का ब्रह्मचारियों के लिए विशेष सम्मान और विशेष प्रेम प्रदर्शित करना और संसार भर में वैदिक धर्म के प्रचारक तैयार करने के लिए सब प्रकार के त्याग करने के लिए उद्यत होने से आर्य समाज का वातावरण उत्साह पूर्ण हो रहा था। कुछ महानुभावों का विचार था कि केवल वेद-वेदाङ्ग आदि ग्रंथ ही पढ़ाये जावें और अन्यों का यह विचार था कि इस वैज्ञानिक युग में आर्य और नवीन वैज्ञानिक शिक्षा का सामञ्जस्य स्थापित किये बिना ज्ञान में अधूरापन रहेगा।

आर्य समाज के एकमात्र ज्योतिस्तम्भ श्री महात्मा मुन्शीराम जी के प्रभाव से प्रभावित होकर श्री आचार्य रामदेव जी एक बड़े हाई स्कूल के मुख्याध्यापक पद को लात मारकर, धन और यश की माया-ममता छोड़कर गुरुकुल आ गये। आज शायद इस त्याग की विशेषता को हम लोग उतना अनुभव न करें परन्तु 40-50 वर्ष पहिले, धन और सन्मान की दृष्टि से इस पद को छोड़ना असाधारण बात थी। उन दिनों हम छोटे-छोटे थे। देखा—एक देदीप्यमान प्रकांड विद्वान्—जिसमें व्यक्तित्त्व के साथ-साथ उनके चारों ओर त्याग और सादगी तथा वैदिक धर्म प्रचार की लग्न की ज्योति बिखरी पड़ती थी, आदर्श रूप में उपस्थित हैं। लग्न इतनी तीव्र थी कि वह आत्म विस्मृति तक पहुँच गई थी।

मुख्याधिष्ठाता और आचार्य महात्मा मुन्शीराम जी को गुरुकुल के लिए दान संग्रह तथा आर्यसमाज के अन्य कार्यों से गुरुकुल में अधिक रहने को न मिलता था अतः श्री आचार्य रामदेव जी के गुरुकुल में आने से पठन-पाठन व्यवस्था ठीक चलने लगी। महात्मा जी को एक ऐसा नवयुवक सहयोगी मिला जो आर्य समाज में उनका योग्य

उत्तकाधिकारी सिद्ध हुआ। इसका एक यह भी परिणाम हुआ कि गुरुकुल केवल एक संस्कृत पाठशाला मात्र न होकर विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित हो गया।

जिस प्रकार सभी ब्रह्मचारी महात्मा मुन्शीराम जी को अनन्य श्रद्धा से पिता के समान समझते थे, अपनी ज्ञान पिपासा की शान्ति के लिए उसी प्रकार आचार्य रामदेव जी को देखने लगे। दैनिक जीवन में उनके संपर्क में आने के बड़े विचित्र और अनेक संस्मरण हैं। यह अनुभव होने लगा कि आचार्य रामदेव जी के रूप में पं० गुरु दत्त अवतरित हुए हैं। वैदिक मैगजीन द्वारा उनके वैदिक धर्म सम्बन्धी लेखों की धूम मच गई। 'भारतवर्ष का इतिहास' नामक पुस्तक आज भी आर्य पुरुषों में ज्ञान निधि के रूप में विद्यमान है। प्लेटफार्म पर उनके विद्वत्तापूर्ण निराले व्याख्यान आर्य जनता को मन्त्र मुग्ध करने लगे।

सन् 1917-18 में आचार्य रामदेव जी को पिता और गुरु रूप में देखा। श्री महात्मा मुन्शीराम जी सन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानन्द जी के रूप में विस्तृत कार्य-क्षेत्र में प्रविष्ट हो चुके थे। हम भी कुछ अधिक आयु के हो चुके थे और वह आयु कुछ उद्धतपन की होती ही है—आचार्य रामदेव जी स्वभावतः अनुशासन प्रिय थे। यदि उस समय आचार्य जी का वात्सल्यपूर्ण अनुशासन न होता तो कौन कह सकता था कि हमारा जीवन अधिक दोषपूर्ण न होता।

कुछ समय बाद ही आचार्य रामदेव जी ने गुरुकुल के प्रबन्ध से मुक्त होकर कन्याओं की शिक्षा में अपना समय लगाया और 'कन्या गुरुकुल देहरादून' की वर्तमान उन्नति उनके अनथक परिश्रम का फल है।

वैदिक धर्म प्रचार के लिए उन्होंने दयानन्द सेवा सदन की स्थापना की जिसमें श्री चमूपति जैसे विद्वान् प्रचारार्थ सम्मिलित हुए।

आचार्य रामदेव जी के जीवन के पिछले 30-40 वर्ष आर्यसमाज की उन्नति के इतिहास के वर्ष हैं और वही आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की उन्नति के वर्ष हैं। वस्तुतः गुरुकुल काँगड़ी और कन्या गुरुकुल ही आर्य प्रतिनिधि सभा की उन्नति और जीवन के द्योतक हैं और आचार्य रामदेव जी इन सभी संस्थाओं के जीवन का एक मुख्य भाग थे। अतः श्री आचार्य रामदेव जी के संस्मरण के बिना सभा की हीरक जयन्ती नहीं मनाई जा सकती।

आर्य समाज की स्थिति को देखिये, चारों तरफ नजर डालिये। वह पुराना आर्य समाज कहाँ है? वह वैदिक धर्म के प्रचार की लग्न कहां है? वैदिक धर्म, वैदिक सिद्धान्तों में निष्ठा कहाँ हैं? आर्य जाति अपने नेतृत्त्व और मार्ग प्रदर्शन कहाँ से प्राप्त करे? यद्यपि कुछ पुराने कार्यकर्त्ता महारथी हैं, वे भी न जाने कहाँ बहे जा रहे हैं।

अब आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की हीरक जयन्ती पर विचारणीय यह है कि वैदिक धर्म की उन्नति और आर्य समाज की प्रगति कैसे हो?

आचार्य रामदेव जी से मेरी मित्रता

(ले० – रायसाहब ला० गंगाराम जी, अमृतसर)

आचार्य रामदेव जी के जीवन सम्बन्धी एक विस्तृत लेख लिखने के लिए मुझे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की हीरक जयन्ती के मन्त्री महाशय की तरफ से कई पत्र पहुँचे और स्वयं मेरे मन में कई बार ख्याल भी पैदा हुआ है कि मैं श्री रामदेव जी के जीवन का वह पहलू भी पब्लिक के सामने रखूं जो अतिरिक्त उनके गहरे दोस्त के, दूसरे सज्जनों को मालूम करना कठिन है। यह सम्भव है कि वह अपने जीवन में इस अध्याय को प्रगट करने के लिए कभी भी अपने किसी मित्र को आज्ञा न देते परन्तु अब वह इस संसार में नहीं हैं और यह बात उनके मित्रों पर निर्भर है कि वह जिस रूप में इन बातों को प्रकट करना चाहते हैं, करें। मेरा धर्म है कि मैं हू-बहू जिस प्रकार उनके जीवन की कुछ घटनाओं को जानता हूँ वैसे ही जनता के समक्ष रखूं, क्योंकि गलत रंग देकर मैं अपने स्वर्गीय मित्र के साथ किसी प्रकार के अन्याय का भार अपने ऊपर नहीं लेना चाहता।

(1)

आचार्य रामदेव जी से मेरा परिचय सन् 1908 में हुआ था, जिन दिनों मैं आर्यसमाज शिमला का सभासद् बना था। मैं नहीं कह सकता कि उनके अन्दर क्या आकर्षण था कि परिचय के कुछ दिनों के अन्दर ही उन्होंने मुझे अपना मित्र बना लिया, उसके पश्चात् वह जब कभी शिमला पधारे मेरे पास ही ठहरे चाहे वे शिमले में एक घड़ी ठहरते या एक मास, वह यही पसन्द करते कि वह मेरे पास ही ठहरें हालांकि उनके मित्रों का दायरा बड़ा विस्तृत था। सन् 1909 ई० में जब आर्यसमाजियों के विरुद्ध राज-विद्रोह का प्रसिद्ध केस पटियाला रियासत में आरम्भ हुआ तो रामदेव जी उन दिनों गुरुकुल काँगड़ी में बतौर उपाचार्य काम करते थे और महात्मा मुन्शीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) गुरुकुल के आचार्य व मुख्याधिष्ठाता थे। मैं बड़े दिन की छुट्टियों में कलकत्ते से गुरुकुल पहुँचा और रामदेव जी के पास ठहरा, मुझे स्मरण है कि एक दिन मेरी उपस्थिति में रामदेव जी ने श्री महात्मा मुन्शीराम जी से कहा कि मुझे समझ नहीं आता कि आर्यसमाजियों के विरुद्ध पटियाला रियासत में बगावत का केस चले और आप अभी तक गुरुकुल में मौजूद हैं। यदि मैं वकील होता तो सब कुछ छोड़कर और वकालत का गाऊन पहनकर रियासत पटियाला को एक दफा मजा चखा देता। आचार्य रामदेव जी की भाषा किसी कदर कठोर थी और उनके मित्र जानते हैं कि वह अपने मनोभावों को प्रगट करते समय किसी का लिहाज नहीं किया करते थे। महात्मा मुन्शीराम जी उसी समय कुर्सी पर से उठे और कहने लगे कि मेरी

अनुपस्थिति में गुरुकुल को सम्हालो मैं पटियाले जाता हूं, रियासत से दो चार हाथ करके ही वापस लौटूंगा, यह कैसे सम्भव है कि मैं आर्य समाज पर अत्याचार होते देखूं और चुप रहूँ।

(2)

सन् 1916 ई० में लुधियाना निवासी ला० लब्भूराम जी नैय्यर शिमला आर्य समाज के उत्सव पर आये थे और मेरे पास ठहरे हुए थे। म० कृष्ण, पं० विश्वम्भरनाथ और श्री रामदेव जी भी वहीं थे। एक दिन शाम के वक्त हम समरहिल की तरफ सैर करने चले गये। मार्ग में म० मुन्शीराम जी के सम्बन्ध में कुछ बातें हुई। श्री रामदेव जी बहुत-सी बातें सुन रहे थे। श्री ला० लब्भूराम नैय्यर को न जाने क्या ख्याल आया वह भी म० मुन्शीराम जी के विषय में कुछ बात कहने लगे, बस फिर क्या था। श्री रामदेव जी ने हाथ से लब्भूराम जी का गला पकड़ लिया और कहा कि तुम म० मुन्शीराम जी के विषय में कोई ऐसी वैसी बात कहोगे तो गला घोंट दूंगा। उस समय हम लोगों की हंसी बन्द न होती थी और रामदेव जी बार-बार यही कहते जा रहे थे। ला० लब्भूराम जी बड़े हैरान हुए और अन्त में चुप हो गये।

(3)

सन् 1917 ई० में श्री रामदेव जी आर्यसमाज शिमले के जलसे पर आये और बीमार हो गये। उन दिनों लायलपुर निवासी श्री मा० गुरुदित्ताराम जी वकील भी मेरे पास आए हुए थे। एक दिन जब प्रातः मैं दफ्तर जाने लगा तो श्री मास्टर जी और रामदेव जी मेरे साथ हो लिए। मार्ग में हम खूब बहस करते जा रहे थे। रामदेव जी को कुछ थोड़ी हरारत भी थी। उनका विचार था कि सैर करने से वह टेम्परेचर जाता रहेगा। जब हम छोटे शिमले पहुँचे तो उन्होंने थर्मामीटर माँगा ताकि यह देख सकें कि टेम्परेचर कितनी है। जब थर्मामीटर लगाया गया तो बुखार $103 \cdot 6^0$ था। वह तत्काल घर लौट आये और बिस्तरे पर लेट गये। थोड़ी दूर आगे जाकर ध्यान आया कि श्री रामदेव जी के पास सेवा के लिए रहना चाहिए। मैंने दफ्तर जाने का विचार छोड़ दिया और घर को लौट पड़ा। डा० केदारनाथ जी मुझे रास्ते में मिल गये। मैंने उनसे कहा कि रामदेव जी को ज्वर आ गया है, आप उनको देख आयें। वह कहने लगे कि एक शर्त पर देख सकता हूँ कि रामदेव जी मुझ से यह बहस न करें कि डायगनोजेज-निदान क्या है, मैं क्योंकर इस परिणाम पर पहुँचा हूँ। वह मेरे साथ प्रश्नोत्तर न करें क्योंकि उनको सन्तुष्ट करना मेरे बस की बात नहीं।

मैंने घर पर लौटकर रामदेव जी से यह बात कह दी तो वह कहने लगे कि आश्चर्य है कि डाक्टर लोगों को भी अपनी साइंस पर विश्वास नहीं है और हमेशा अहमक मरीजों की तलाश में रहते हैं। खैर कोई बात नहीं, मैंने उसी समय टेलीफोन किया कि आपकी शर्त मंजूर है आप चले आवें। दो घड़ी के बाद डाक्टर साहब आ गये और रामदेव जी को देखने लगे। सबसे पहले उन्होंने नब्ज देखी तो रामदेव जी बोल उठे कि डाक्टरों को नब्ज देखनी तो आती नहीं और ढोंग पूरा करते हैं। डाक्टर

जी मेरी तरफ देखने लगे और मैंने रामदेव जी को इशारा किया कि आप चुप रहें। रामदेव जी कुछ और बोलना चाहते थे किन्तु मेरे संकेत से वह चुप हो गये। इतने में डाक्टर साहब ने स्टैथस्कोप (Stethescope) लगाकर फेफड़ों को देखना शुरू किया, बस रामदेव जी उस वक्त फिर बोल उठे—यह दूसरा ढोंग है जो भोले-भाले मरीजों को धोखा देने के लिए डाक्टर लोग किया करते हैं। आप लोगों को तो कुछ सिखाया भी जाता होगा लेकिन लाहौर में एक बड़े वैद्य हैं जो स्टैथस्कोप का भी प्रयोग करते हैं। डा० केदारनाथ जी बोले आप 'वन' 'टू' कहें इस पर रामदेव जी बोले—"यस, नो" क्यों न कहूँ। यह सुनकर मेरी और मा० गुरुदित्ताराम जी की हंसी निकल पड़ी। डाक्टर साहब कहने लगे अच्छा आप "यस, नो" ही कह देवें। देख भाल के बाद जब डाक्टर जी जाने लगे तो रामदेव जी ने पूछा निदान क्या है? डाक्टर साहब ने उत्तर दिया कि निदान न बतलाने की मेरी पहली शर्त थी। मैं दवाई भेजता हूँ आप एक एक घण्टे के बाद उसे पियें। ज्वर कल प्रातः तक उतर जायेगा। इसके उत्तर में रामदेव जी कहने लगे कि जिस डाक्टर को निदान बताने का साहस न हो उसकी दवाई हरगिज नहीं पी सकता। दूसरे मुझे पता होना चाहिए दवाई में क्या-क्या है। इस पर मैंने डाक्टर जी से कहा आप दवाई भेज दें, मैं इनको पिला दूंगा।

(4)

अप्रैल 1921 ई० में मैं एक वर्ष की छुट्टी पर अमृतसर चला आया यहाँ पर मैंने हाता बाजार के पास एक मकान किराये पर लिया। आर्यसमाज अमृतसर ने मुझे अपना मन्त्री चुन लिया। उन दिनों रामदेव जी प्रायः मेरे पास आते-जाते थे। यह वह दिन थे जब प्रकाश पार्टी अपनी उन्नति के शिखर पर थी। रामदेव जी की भाषण शक्ति और म० कृष्ण जी की लेखन शक्ति पं० विश्वम्भरनाथ जी की प्रबन्ध शक्ति और लेखक की सिपाहियाना शक्ति यह सब चीजें हमारी पार्टी को दृढ़ बनाये हुए थी। हम में से यदि कोई बिगड़ जाता तो अपनी अपनी शक्ति का प्रयोग करके प्रीति के व्यवहार को स्थिर रखते। यद्यपि हमारे परस्पर बहुत से मतभेद थे फिर भी हम सब एक स्वरूप ही समझे जाते थे। आचार्य रामदेव जी उन दिनों गुरुकुल से बाहर थे—बाहर रहते हुए भी उनको गुरुकुल का ध्यान रहता था क्योंकि उन्होंने अपनी अनथक सेवा से गुरुकुल को इस अवस्था तक पहुँचाया हुआ था। एक दिन मेरे मकान पर रामदेव जी को रात्रि में ध्यान आया कि हम लोगों का ध्यान गुरुकुल की तरफ कम होता जा रहा है इसका कुछ प्रबन्ध होना चाहिए। श्री स्वामी जी को देश सेवा के लिए दूसरी जमातें बुलाती रहती हैं, उनके पास अब अधिक समय भी नहीं है कि गुरुकुल की तरफ पूरा ध्यान दे सकें; उन्होंने त्यागपत्र भी दे रखा है। मैंने उत्तर में निवेदन किया कि उचित समझें तो पं० विश्वम्भरनाथ जी को गुरुकुल भेज दिया जाये। रामदेव जी ने कहा मुझे कोई आपत्ति नहीं। इस पर मैंने विश्वम्भरनाथ जी को मजबूर किया कि वह अवश्य गुरुकुल जायें। उन्होंने मान लिया और वह मुख्याधिष्ठाता बन कर गुरुकुल चले गये। श्री स्वामी सत्यानन्द जी से जब यह प्रार्थना की

गई कि वह कुलपति का ओहदा स्वीकार करें, पहले तो वह कुछ ननु-नच करते रहे पर पीछे उन्होंने स्वीकार कर लिया। पं० विश्वम्भरनाथ जी गुरुकुल में लगभग 5 वर्ष रहे और कोई परिवर्तन न कर सके अन्त में रामदेव जी को गुरुकुल पुनः जाना पड़ा क्योंकि गुरुकुल इनका देह और प्राण समझा जाता था।

(5)

मुझे रामदेव जी की बहुत-सी घटनाएँ याद हैं और मेरे पास उनके सैकड़ों पत्र विद्यमान हैं जो मुझे वह एक मित्र की हैसियत से लिखते रहे। वह मेरे दोस्त थे और जब तक देहली में आर्यससाज का झगड़ा पैदा नहीं हुआ था, वह मेरे पक्के मित्र रहे। देहली के झगड़े के बाद हम एक दूसरे से बहुत दूर हो गये इसीलिए सन् 1932 के के पीछे उनके साथ क्या बीती मुझे कुछ पता नहीं। मैं केवल उनके सम्बन्ध में इतना ही कह सकता हूँ कि यदि वह दोस्त वनते थे या यदि किसी से उनका मतभेद हो जाता था तो विरोधी को उनके विषय में कभी संदेह भी नहीं होता था कि वह उनके अनुकूल हैं।

आचार्य रामदेव जी

(ले० – श्री नारायण स्वामी जी महाराज)

(1)

श्री आचार्य रामदेव जी से मेरा परिचय उस समय हुआ था जब वे अपनी कॉलिज की पढ़ाई समाप्त करके गुरुकुल काँगड़ी में अंग्रेजी भाषा के अध्यापक पद पर नियुक्त होकर आये थे। उन्होंने न केवल गुरुकुल में रहकर अध्यापक पद का काम किया, अपितु आर्यसमाजों में प्रचार के लिए भी जाना शुरू किया। गुरुकुल का काम उन्होंने इतनी लएन से किया कि स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द के बाद उन्होंने वहाँ के आचार्य का उच्चपद ग्रहण किया। मैं उस समय गुरुकुल वृन्दावन में था। वहाँ के उत्सवों में जाने से मेल-जोल और भी अधिक बढ़ गया। एक बार गुरुकुल वृन्दावन के उत्सव पर एक आर्य सम्मेलन में उन्होंने यह कह दिया था कि राज्य और प्रवन्ध संबंधी मामलात में ब्राह्मणों को क्षत्रियों के अधीन रहना पड़ेगा। इससे कुछेक ब्राह्मण जाति के पक्षपातियों ने शोर मचाया था अंत में उस कॉंफ्रेंस को बीच ही में बन्द कर देना पड़ा। उन दिनों पं० अखिलानन्द आर्यसमाज का काम करते थे। इस सम्मेलन में विघ्न के सबसे अधिक हेतु वे ही हुए। स्वर्गीय पं० तुलसीराम स्वामी को भी उन्होंने उल्टी-सीधी बातें कहकर अपने पक्ष का बना लिया। ब्राह्मण और बाबू पार्टी का प्रारम्भ यहीं से हुआ। कुछ दिनों यह पार्टी विरोधी बन गई। इससे आचार्य जी और गुरुकुल वृन्दावन के सम्बन्ध में कुछ अन्तर नहीं पड़ा। वे बराबर गुरुकुल जाते रहे।

(2)

आचार्य रामदेव स्वाध्याय के धनी थे। दिन हो रात हो जब भी अवकाश मिले पुस्तक उनके हाथों में हुआ करती थी। बहुत से अंग्रेजों के वाक्यों का समावेश व्याख्यानों में करने का आरम्भ तो स्वर्गीय मास्टर आत्माराम ने किया था परन्तु बहुत अधिक उसके प्रचलित करने का कारण श्री रामदेव जी ही हुए। वे केवल उत्कृष्ट व्याख्याता ही नहीं थे अपितु उत्कृष्ट लेखक भी थे। आर्यसमाज के सम्बन्ध में उनका लिखा हुआ "Arya Samaj and its detractors" नामक ग्रन्थ जो श्री स्वामी श्रद्धानन्द के साथ मिलकर उन्होंने लिखा था उनकी विशाल स्वाध्यायशीलता का परिचायक है। वे भारतीय संस्कृति और सभ्यता के बड़े हामी थे। विदेशियों के लिखे ग्रन्थों के उद्धरणों से, उसकी पुष्टि करने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। उनके लिखे हुए भारतीय इतिहास ग्रन्थ, यद्यपि उन्हें इतिहासज्ञों ने इतिहास स्वीकार नहीं किया परन्तु उनसे उनका देश और सभ्यता प्रेम भली भाँति प्रकट होता है। वैदिक मैगजीन जिसका प्रारम्भ उन्होंने ही किया था, उनके अंग्रेजी के उत्कृष्ट लेखक होने को प्रमाणित करता है।

(3)

महात्मा गांधी ने 1923 ई० में जब मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली के प्रभाव से, आर्यसमाज के विरुद्ध एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने ऋषि दयानन्द पर भी कुछ आक्षेप करने का दुस्साहस किया था उसका मुंह तोड़ जबाव श्री रामदेव जी ने ही दिया था। देश भर में उनके अच्छे व्याख्याता होने की धूम थी और सभी ओर से वे निमन्त्रित किये जाते थे।

(4)

कन्या गुरुकुल देहरादून उनका अंत का काम था। उस संस्था को क्रियात्मक जीवन प्रदान करना उन्हीं का काम था। उन्हीं के प्रभाव से श्रीमती विद्यावती सेठ बी० ए० ने अपना सारा समय गुरुकुल को उन्नत अवस्था में लाने के लिए लगा रखा था।

(5)

श्री रामदेव जी सादगी, त्याग, तपस्या और उच्च आचार की मूर्ति थे। उनके साथ, विदेश प्रचार आदि की जो आशायें आर्यसमाजों को थीं और उचित रीति से थीं, वे सभी उनकी असमय और अकाल मृत्यु से धूल में मिल गई। वे मस्तिष्क को जितना उन्नत बनाने की चिन्ता में मस्त रहा करते थे, शरीर की उतनी परवाह नहीं करते थे और कदाचित यही कमी उनके हम सबसे शीघ्र वियोग का कारण हुई। उनकी सभी बातों पर समष्टि तौर से विचार करने से यह बात साफ प्रकट हो जाती है कि वे आर्यसमाज के चमकते हुए रत्न थे और उनके न रहने से आर्यसमाज को असीम हानि उठानी पड़ी।

दयानन्द के संदेश वाहक

आदर्श प्रचारक आचार्य रामदेव जी

(ले०—श्रीयुत भीमसेन विद्यालंकार, लाहौर)

आचार्य रामदेव जी के नाम का कीर्तन और चित्रदर्शन सहसा आँखों के सामने ऋषि दयानन्द के अनथक निर्भय संदेशहर की जीती-जागती मूर्ति को ला उपस्थित करता है। आचार्य रामदेव जी जनता के सामने अध्यापक, प्रोफेसर (उपाध्याय) आचार्य; लेखक, सम्पादक, सम्वाददाता; तार्किक (डिबेटर) व्याख्याता, प्रवक्ता, सभापति, उपदेशक; अधिष्ठाता, (वेदप्रचार, पुस्तकालय) मुख्याधिष्ठाता, सभा प्रधान विदेशी सरकार के समालोचक, भारतीय स्वराज्य आन्दोलन के समर्थक और भारतीय सत्याग्रह आन्दोलन के एकाधिकारी (डिक्टेटर); आर्यसमाज और गुरुकुल के लिए 'देने वाले का भला हो न देने वाले का भला हो" की अलख जगाने वाले; गाँव शहर और राजधानियों में भिखारी के रूप में, निर्धन-धनी और करोड़पतियों को दान की प्रेरणा करते हुए, गुरुकुलों में, समाज मन्दिरों में! स्वदेश में, विदेशों में वाणी और लेखों द्वारा दयानन्द की अलख जगाते हुए; स्वस्थ, निरोग और रोगशय्या पर हैदराबाद सत्याग्रह आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिए अधीर होते हुए; मृत्युशय्या पर डाक्टरों के मना करने पर भी अन्तिम क्षण तक कन्या गुरुकुल की चिन्ता करते हुए, अनेक रूपों में अनेक प्लेटफार्मों पर दिखाई देते थे।

परन्तु इन सब अनेक रूपों और अनेक नामों को एक सूत्र में पिरोने वाली भावना, ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में अटूट व अटल श्रद्धा थी। साधारण से साधारण गाँव की कुटिया में रहने वाले किसान मजदूर के सामने और बड़े-बड़े प्रासादों तथा राजमहलों में रहने वाले, धनियों और राजाधिराज, सरकारी अफसरों, वायसरायों और बड़े से बड़े प्रभावशाली विद्वान् व्यक्तियों के सामने, इस श्रद्धा को प्रकट करते हुए उनमें संकोच तो क्या—उत्सुकतापूर्ण प्रतिद्वन्द्वी को, दयानन्द का भक्त बनाने का प्रबल अभिलाषा पग-पग पर प्रकट होती थी। वह जो कुछ पढ़ते थे, लिखते थे और बोलते थे वह सब कुछ ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों के समर्थन और प्रचार के लिए अर्पित करते थे। ऋषि दयानन्द द्वारा पुनः प्रचालित गुरुकुल शिक्षा प्रणाली और आर्यसमाज द्वारा प्रसारित वैदिक धर्म के प्रचार के लिए उन्होंने अपना विद्यार्थी जीवन युवावस्था का चमकता हुआ होनहार जीवन और उसके बाद मृत्युपर्यन्त जीवन का एक एक क्षण और दिन-रात सब अर्पित किया हुआ था। उन्हें कहीं किसी रूप में, घर से बाहर और घर के अन्दर देखें—सब जगह वह समान रूप से दयानन्द के संदेशहर के

रूप में दिखाई देते थे। इसी धुन में, अपने जैसे दयानन्द के संदेशहर' पैदा करने के लिए 'उन्होंने दयानन्द सेवा सदन' की स्थापना की। अनेक नवयुवकों को इसमें दीक्षित किया, स्वयं भी दीक्षित हुए। क्या आज सभा की हीरक जयन्ति के अवसर पर उनके प्रति श्रद्धाँजलि अर्पित करते हुए हम उनकी भावना के मूर्तरूप 'दयानन्द सेवा सदन को पुन: जीवित जागृत करने का संकल्प नहीं कर सकते ? आर्यसमाज के वैतनिक अवैतनिक सेवक क्या स्वयं दयानन्द सेवासदन में दीक्षित होकर आचार्य रामदेव द्वारा प्रवाहित दयानन्द भक्ति की धारा सदा प्रवाहित नहीं कर सकते ?

+ × ×

उनके क्रियाशील जीवन की घटनाओं का अविकल वर्णन एक लेख में समाप्त नहीं हो सकता। उनकी स्मृति में उनके प्रति श्रद्धाँजलि प्रकट करने के लिए उनके जीवन की कुछेक झाँकियाँ अङ्कित करने का यत्न किया जाता है।

जिस प्रकार हनुमान और तुलसीदास जी को सब जगह 'राम ही राम' दिखाई देता था, उसी प्रकार इन्हें सब जगह, मानव जीवन के सब क्षेत्रों तथा पहलुओं में, ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों की विजय ध्वनि सुनाई देती थी। शिक्षा, राजनीति, धर्मनीति, समाजनीति सब विचार क्षेत्रों में वह ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के अदम्य प्रचारक थे। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के लिए अपना जीवन अर्पित किया। मास्टर जी, प्रोफेसर जी, आचार्य जी सब स्थितियों में वह दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। उनके द्वारा प्रकाशित भारतवर्ष के इतिहास को तीनों भागों को सत्यार्थ प्रकाश का भाष्य कहा जा सकता है। इन पुस्तकों में ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का अकाट्य प्रमाणों से समर्थन किया गया है।

जिस प्रकार लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' लिखकर गीता को संसार भर के साहित्य में सर्वोत्तम स्थान पर अधिष्ठित किया, उसी प्रकार इस कथन में अत्युक्ति नहीं कि आचार्य रामदेव जी ने भारतवर्ष के इतिहास के तीनों भागों में, स्वामी दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश में प्रतिपादित सिद्धान्तों पर; पाश्चात्य तथा पौर्वात्य विद्वानों की ओर से संभावित आक्षेपों को रिराकरण कर उन्हें विद्वज्जन समाज के सामने अकाट्य रूप में प्रकट किया। उनके व्याख्यानों में; यूरोपियन तथा अन्य विदेशी विद्वानों के ग्रन्थों में दयानन्द की विचारधारा का समर्थन करने वाली प्रमाणधारा और युक्तिधारा की गंगा-यमुना बहती दिखाई देती थी। विकासवाद और प्राकृतिक नास्तिकवाद की मनमोहक युक्तियों का खण्डन उन्हीं के ग्रन्थों के उद्धरणों द्वारा किया जाया था। पग-पग पर इन वादों के समर्थकों को चूनौती देकर उपस्थित जनता के द्वारा दयानन्द की विजय ध्वनि से सभा मण्डप को गुंजा देते थे।

× × ×

गंगा के उस पार की बात है। अचानक कुल भूमि में शोर हुआ—आग लग गई, आग लग गई। परिबारों में आग लग गई। सब कुलवासी बधर दौड़े. देखा

प्रोफेसरों के क्वाटरों में आग लग रही है। आचार्य रामदेव जी के निवास स्थान पर अग्निदेव प्रचंड रूप में, कुपित पवन के साथ सातों जीभों के साथ उनके घरेलू पुस्तकालय की एक-एक पुस्तक को राख कर रहा है। इधर आग को शान्त करने की पूरी कोशिश हो रही है। उधर देखो, एक व्यक्ति गंभीर मुद्रा के साथ अपने जीवन भर के संचित ज्ञानधन को राख की ढेरी बनते देख रहा है। देखते देखते हवा की गति शान्त हुई, आग भी मन्द हुई। कुलवासी आचार्य जी के चारों ओर खड़े हैं।—"क्या सुना—चलो अच्छा हुआ इस आग ने पाश्चात्य सभ्यता को राख कर दिया। अंग्रेजी पुस्तकों के ढेरों और अंग्रेजी ढंग के फर्नीचर को स्वाहा कर दिया।" उन्हें इस अग्निकांड की लपटों में भी ऋषि दयानन्द और आर्य सभ्यता की विजय दिखाई दी। यह उद्‌गार आचार्य रामदेव जैसे आर्य सभ्यता और ऋषि दयानन्द के भक्त के हृदय से ही निकल सकता है।

गंगा के इस पार गुरुकुल कांगड़ी के नए भवन बन रहे हैं। गुरुकुल कांगड़ी का वार्षिकोत्सव आ गया है। नये भवन खड़े हो रहे हैं। शाहपुराधीश इन भवनों की आधारशिला रखेंगे। जनता कुल भूमि में भारी संख्या में एकत्रित है। इतने में कहीं कैम्प में आग लगने की आवाज सुनाई दी, भगदड़ मच गई। आग की लपटों को नियंत्रित करने के लिये कोशिश की जा रही है। इतने में भयंकर आंधी का जोर शुरू हुआ, आग और भी भयंकर हो गई। चारों तरफ़ जिधर देखो 'त्राहि त्राहि' मची हुई है। इतने में देखते देखते—आकाश से पानी बरसने लगा। आग आंधी सब शान्त हो गये। आचार्य रामदेव जी गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता आचार्य रूप में जनता के सामने सभा मंच पर आए। आते ही उन्होंने कहा—भाइयो! परमात्मा ने इस आग, आंधी और वर्षा द्वारा हमारी ऋषिभक्ति और गुरुकुल भक्ति की परीक्षा ली है। अपनी भक्ति का परिचय दीजिये— देखते देखते गुरुकुल की झोली में लाखों रु० इकट्ठे हो गये। सच्चे भक्त की भावना अधूरी नहीं रहती।

+ + +

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः"—मनुष्य को निरन्तर कर्म करते हुए, जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए। आचार्य रामदेव जी इस वेद वाक्य की ज्वलन्त मूर्ति थे। उनकी दिनचर्या का कोई क्षण नहीं था जिसमें वह खाली रहते हों। आराम के समय भी पुस्तकों का अनुशीलन होता था। बीमारी के समय डाक्टरों ने उन्हें आराम करने को कहा। परन्तु पता लगा कि वह आराम नहीं कर सकते। उनके निरन्तर क्रियाशील जीवन ने तन मन तथा आत्मा को सतत गतिशील बना दिया था। दिन-रात वह किसी न किसी विचारधारा में लीन रहते थे। निरन्तर विद्याभ्यास की प्रकृति ने उन पर कभी किसी सांसारिक ऐश्वर्य की कामना को प्रबल नहीं होने दिया। कठोपनिषद् के 'विद्याभीप्सितं नचिकेतसंमन्ये नत्वा कामा बहवो लोलुपन्त, की सच्चाई उनके जीवन में लिखित थी। उनके सामने अनेक सांसारिक प्रलोभन आये परन्तु उन्होंने दयानन्द सेवा सदन की दीक्षा की भावना के अनुसार व्रत पालन की धुन

में, किसी काम को स्वीकार नहीं किया। दयानन्द, गुरुकुल और आर्यसमाज उनके लिये फर्स्ट लव (First Love) थे इसीलिये वह आदर्श प्रचारक का नमूना हमारे सामने रख सके और आने वाले प्रचारकों के सामने ऐसा उदाहरण रख गए जिस पर चलना किन्हीं विरले व्यक्तियों का ही कार्य है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ सब आश्रमों में आर्यसमाज का प्रचार करते रहे। अध्यापक, सम्पादक व्याख्याता तथा सभाप्रधान होते हुए भी स्वयं धर्म प्रचार करते रहे। आर्यसमाज के लिए आज भी ऐसे प्रचारकों की आवश्यकता है।

आचार्य रामदेव जी

(लेखक—श्री गंगाप्रसाद रिटायर्ड चीफ जज टिहरी)

१—उनसे मेरा परिचय

श्री आचार्य रामदेव जी आर्य समाज के एक उज्जवल रत्न थे। मेरा परिचय उनके साथ कांगड़ी गुरुकुल की स्थापना से पहले से, अर्थात् लगभग 50 वर्ष से था, जब कि वे शायद जालन्धर में किसी स्कूल के मुख्य अध्यापक थे। काँगड़ी गुरुकुल की स्थापना के पीछे वह परिचय बढ़ता ही गया क्योंकि उस समय (सन् 1902 से 1905 तक) मैं जिला गढ़वाल के लैंसडौन इलाके का सब-डिविजन अफसर था जिसकी सीमा काँगड़ी से मिली हुई है। इसलिए गुरुकुल स्थापित होने के 3 या 4 वर्ष तक मैं उसके वार्षिक उत्सव में (जिसने उस समय आर्य जगत् में एक अत्यन्त आकर्षक नवीन मेले का रूप धारण कर किया था) अवश्य सम्मिलित होता था, और इस प्रकार श्री म० मुन्शीराम जी से जिनकी मुझ पर विशेष कृपा थी तथा आचार्य रामदेव जी से भी अनायास मिलने का अवसर सुलभ होता था।

२—आचार्य जी की अपार विद्वत्ता

आचार्य जी के स्वाध्याय और विद्वत्ता की कोई थाह नहीं थी। गुरुकुल कांगड़ी का विशाल पुस्तकालय भी जिसके बनाने में उनका विशेष हाथ था, उनके लिये पर्याप्त न था और उसके बाहर की भी अनेक पुस्तकों का वे पाठ करते रहते थे। जहां कहीं जाते थे नवीन पुस्तकों की तलाश में रहते थे और जहां भी मिलती थी उनको बड़ी रुचि के साथ पढ़ते थे। मैंने आगरे में उनको रद्दी व पुरानी पुस्तक बेचने वालों के यहां से भी पढ़ने योग्य पुस्तकें निकाल कर संग्रह करते देखा। स्वाध्याय में उनका बहुत समय लगता था।

३—उनकी विचित्र स्मरण-शक्ति

आचार्य जी की स्मरण शक्ति अद्भुत और विलक्षण थी। जो पुस्तकें एक बार पढ़ लीं वह याद हो गई, मैंने अपने सुदीर्घ काल के अनुभव में केवल एक और ऐसा विद्वान्, देखा, जिनकी स्मरणशक्ति की तुलना श्री रामदेव जी से की जा सकती है—वे थे श्री ए. सी. वाई. चिन्तामणि प्रयाग के सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र 'लीडर" के मुख्य संपादक।

४ – उनकी विलक्षण भाषण-शक्ति

श्री रामदेव जी को भारत वर्ष के सभी भागों में व्याख्यान देने के लिये जाना पड़ता था। कोई बड़ा आर्य समाज उनको अपने वार्षिक उत्सव पर अथवा अन्य अवसरों

पर निमंत्रित करने से नहीं चूकता था और उनको ऐसे निमंत्रण वहुत अंश में स्वीकार ही करने पड़ते थे। व्याख्यान में प्रमाणों की झड़ी लग जाती थी। उनके व्याख्यानों में बहुदा ऐसे नये प्रमाण मिलतेथे जिनको सुनकर सुशिक्षित श्रोता भी कभीकभी भौचक्का रह जाते थे, यह आचार्य जी के अपार स्वाध्याय और अद्‌भुत स्मरणशक्ति का ही फल था। किसी बड़ी संस्था व समाज के मुख्य उत्सव पर वे बहुधा कोई नया व्याख्यान तैयार करने का यत्न करते थे।

५— उनकी लेखन शक्ति

श्री आचार्य जी की लेखनी में भी कुछ कम शक्ति न थी। उनके रचे हुए पुस्तकों के नाम भी दिये जाते हैं—

१. पुराण मत पर्य्यालोचन। 2. भारतवर्ष का इतिहास (३ भाग) 3. आर्य और दस्यु।

६— वैदिक मैगेजीन का संपादन

परन्तु उनके लेखन कार्य में मुख्य स्थान "वैदिक मैगजीन" के सम्पादन कार्य ही को देना चाहिये, जिनको वे सं० १९७० से १९९० तक (बीस वर्ष) बराबर करते रहे, मेरा 'फाउनटेनहेड आफ रीलिजन' पुस्तक रूप में छपने से पूर्व पहली बार वैदिक मैंगेजीन में ही क्रम से प्रकाशित हुआ। इसका एक कारण श्री आचार्य जी की इच्छा को पूर्ण करना ही था।

आचार्य रामदेव जी अंग्रेजी में बड़ी श्रेणी के लेखक थे, आर्य समाज की सीमा के बाहर भी भारतवर्ष में अंग्रेजी भाषा पर ऐसा प्रभुत्त्व रखने वाले गिने चुने ही विद्वान् होंगे।

आरंभ में श्री रामदेव जी के अंग्रेजी लेखों में कुछ ऐसे कठिन शब्द कई बार आ जाते थे जिनका अर्थ जानने के लिए कोष देखने की आवश्यकता होती थी। परन्तु कुछ काल के पीछे यह बात जाती रही और उनकी भाषा ने परिमार्जित होकर सरल या सुगम रूप धारण कर लिया।

७—गुरुकुल कांगड़ी में उनकी सेवा

श्री रामदेव जी ने सन् १९०५ से १९३२ तक अर्थात् २७ वर्ष गुरुकुल कांगड़ी में कार्य किया। इस बीच में १९२७ से १९३२ तक अर्थात् ६ वर्ष तक वे गुरुकुल के आचार्य पद पर रहे। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के पश्चात् गुरुकुल कांगड़ी की सेवा में दूसरा स्थान श्री आचार्य जी का ही है। यदि स्वामी श्रद्धानन्द जी गुरुकुल की आत्मा थे तो आचार्य रामदेव उसके प्राण रूप थे।

८—कन्या गुरुकुल देहरादून में उनका सेवा कार्य

कन्या गुरुकुल देहरादून के तो श्री रामदेव जी वास्तव में प्राण ही थे। श्रीमती विद्यावती जी सेठ बी. ए. ने उक्त गुरुकुल की आरंभ काल से जीवन भर सच्ची लगन

से अनथक सेवा की । इस सब सेवा कार्य में श्री रामदेव उनके परम सहायक रहे । आचार्य रामदेव जी का अन्त समय सं० १९९१ से १९९६ तक कन्या गुरुकुल ही में व्यतीत हुआ जो रुग्ण अवस्था का था । क्योंकि शरीर छोड़ने से कुछ वर्ष पहले से उनको कठिन पक्षाघात का रोग हो गया था । कन्या गुरुकुल के अन्तिम वार्षिकोत्सव पर वे इस रुग्ण दशा में भी एक आराम कुर्सी पर लेटे हुए उत्सव में उपस्थित रहे । उनकी आँखों से आँसू बहते थे—पर इसका मुख्य कारण शायद उनकी रुग्ण अवस्था थी न कि केवल दुःख या भावना । श्री रामदेव जी के देहावसान के पश्चात् श्रीमती विद्यावती सेठ को कन्या गुरुकुल की सेवा कार्य में कठिनाई प्रतीत हुई और इसलिये वह वहां से चली गई । मैं इसको गुरुकुल के लिये एक दुःखमय घटना ही समझता हूं उनका मुख्य कारण कुछ भी हो ।

६—आचार्य रामदेव जी का रहन सहन

श्री आचार्य जी का रहन सहन बहुत सीधा-सादा था । दिखावट या बनावट उनको छू तक नहीं गई थी । वेश-भूषा और केशों को संवारना आदि काम उन्होंने अपने लिये वर्जित कर रक्खे थे, शायद उनको ऐसे कामों के लिये अवकाश भी नहीं मिलता था । वे बड़े परिश्रमी थे, कहा जाता है कि सभा में दलबन्दी होने के कारण उनका परिश्रम अन्तिम वर्षों में बहुत बढ़ गया था । यदि उसके कारण उनका रोग भी बढ़ गया हो तो आश्चर्य की बात नहीं ।

आचार्य रामदेव जी आर्य समाज की एक विशेष विभूति थे, ईश्वर उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करे ।

त्याग तपोनिधि स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी के कुछ सुखद संस्मरण

(लेखक—पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक धर्मार्य सभा, सम्पादक 'सार्वदेशिक' देहली)

मैं जब कभी स्व० आचार्य रामदेव जी का स्मरण करता हूँ, तो उनके त्याग, तपस्या, आदर्शवाद, अनेक विषयों की अगाध विद्वत्ता आशावाद और वैदिक धर्म तथा संस्कृति के प्रचार विषयक अदम्य उत्साह इत्यादि के अनेक स्पष्ट उदाहरण मेरे सम्मुख आते हैं और मैं उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने में एक विशेष गौरव अनुभव करता हूँ। अपने गुरुकुलीय जीवन में मुझे जिन महानुभावों ने विशेष रूप से प्रभावित किया और जिनके अनेक अद्‌भुत गुणों ने मेरे मन पर अमिट छाप लगा दी उनमें धर्मवीर आचार्यवर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज और आचार्य रामदेव जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मुझे इन दोनों मान्य महानुभावों के चरणों में बैठ कर विद्याभ्यास करने और उनके प्रियशिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था जिसे मैं अपने पूर्व जन्म के पुण्यकर्मों का परिणाम समझता हूँ। जहां श्री पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की श्रद्धा, त्याग, तपस्या, उदार हृदयता और जीवन की अनुपम पवित्रता को देख कर मेरा मस्तक श्रद्धा पूर्वक उनके चरणों में नत हो जाता था वहां आचार्य रामदेव जी के धर्म और तत्त्व ज्ञान के अद्‌भुत तुलनात्मक अनुशीलन, वैदिक धर्म तथा संस्कृति के प्रचारार्थ लगन, उत्तम भाषण और लेखन शक्ति तथा त्याग तपस्यामय सरल जीवन को देख कर उनके प्रति अत्यन्त आदर का भाव मेरे मन में सदा विद्यमान रहता था और अब भी वह पूर्ववत् बल्कि उससे अधिक मात्रा में विद्यमान है। सुप्रसिद्ध अंग्रेज कवि वर्ड्‌स्वर्थ के 'Plain living and high thinking' अर्थात् सरल जीवन और उच्च विचार के वे मूर्त रूप थे। उनकी सादगी तथा बाह्य वेश-भूषा की उपेक्षा का उपहास करने वाले कितने ही सज्जन थे किन्तु ऐसे व्यक्तियों की समालोचना की उन्होंने कभी पर्वाह न की थी और वे दिन-रात, सोते, उठते-जागते, गुरुकुल को सब दृष्टियों से उन्नत करने' उसे एक आदर्श विश्वविद्यालय बनाने और वैदिकधर्म तथा संस्कृति के गौरव का भाषणों तथा वैदिक मैगजीन आदि द्वारा डंका बजाने में मस्त थे। बाह्याडम्बर और वेशभूषा की चिन्ता करने का उन्हें सचमुच अवकाश ही न था। उन्होंने नियमपूर्वक संस्कृत का अभ्यास न किया था किन्तु यह देखकर मुझे तथा अन्य सब विद्यार्थियों को आश्चर्य होता था कि वेद, उपनिषद, दर्शनशास्त्र, स्मृति, रामायण, महाभारत तथा काव्य नाटक सम्बन्धी कोई ग्रन्थ कठिनता से ऐसा होगा जिनका उन्होंने आर्य भाषा व अंग्रेजी अनुवाद द्वारा अध्ययन न किया हो। पुराणमत पर्या-

लोचन तथा भारतवर्ष का इतिहास आदि उनके ग्रन्थों से इस विषयक विशाल अध्ययन का अच्छा परिचय मिलता है। बौद्ध, जैन तथा ईसाई मत विषयक ग्रन्थ उनसे पढ़ने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था और उनके विशाल अनुशीलन को देखकर हम विद्यार्थी चकित हुए बिना नहीं रह सकते थे। इन विषयों को पढ़ाते हुए वे पुस्तकों का इतना बड़ा भण्डार (जिसे वे मखौल में जङ्गल के नाम से पुकारा करते थे।) अपनी मेज पर रख छोड़ते और आवश्यकतानुसार उसमें से निरन्तर उपयोगी उद्धरण देते जाते थे कि हम विद्यार्थी उनके विशाल अध्ययन पर लट्टू हो जाते थे। वे स्वयं एक चलते फिरते पुस्तकालय थे ऐसा कहने में अणुमात्र भी अत्युक्ति न होगी। ईसाईमत के विषय में कोई उत्तम पुस्तक न थी जो उन्होंने न पढ़ी हो और बाईबल के प्रायः सब आवश्यक स्थलों को उन्होंने इतना कण्ठस्थ कर रक्खा था कि एक शास्त्रार्थ के अवसर पर उन्हें सम्बोधित करते हुए एक प्रसिद्ध पादरी महोदय ने कहा था कि 'Professor Ram Deva ! You know my Bible more than myself.' अर्थात् आपको मेरी बाईबल का मुझ से भी अधिक ज्ञान है। यह उनकी ही कृपा थी कि दक्षिण भारत में प्रचार कार्य करते हुए उन द्वारा प्रारम्भ करवाया हुआ ईसाई मत का अनुशीलन मेरे इतना काम आया कि बड़े से बड़े ईसाई प्रचारकों से भी शास्त्रार्थ करने में मुझे कभी संकोच नहीं हुआ।

"Arya Samaj and its detractors" नामक स्व० आचार्य रामदेव जी की सन् १९१० में लिखी पुस्तक उनके ईसाई मत तथा इस्लाम आदि विषयक विशाल अध्ययन का प्रबल प्रमाण है।

स्व० आचार्य रामदेव जी का हम विद्यार्थियों से बड़ा प्रेम था और वे हर प्रकार से हमें उन्नत करने का प्रयत्न करते और प्रोत्साहित करते थे। उनकी कृपा से समाज शास्त्र विषयक विशेष अध्ययन करके जब मैंने 'भारतीय समाज शास्त्र' नामक अपनी पुस्तक की प्रति उनके पास मुलतान सेन्ट्रल जेल में भिजवाई तो १४-९-३३ को उन्होंने मेरे नाम निम्न पत्र भेजने की कृपा की जो उनकी मेरे प्रति स्नेह और कृपा-दृष्टि का सूचक है। पत्र निम्न प्रकार है :—

प्रियवर धर्मदेव जी, सप्रेम नमस्ते !

आपकी पुस्तक भारतीय समाज शास्त्र बहुत उत्तम पुस्तक है। उसमें वैदिक-धर्म के दृष्टिकोण से समाज शास्त्र के सिद्धान्तों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उस पुस्तक में विशेष गुण यह है कि उन समस्याओं का जो वर्तमान सभ्य संसार को पीड़ित कर रहीं हैं बड़ा सुन्दर और उपयुक्त हल बताया गया है। पुस्तक संग्रह योग्य है।

प्रेमपात्र
रामदेव

इसी पत्र में से एक निम्न वाक्य भी उल्लेखनीय है कि "मेरा स्वास्थ्य आगे से अच्छा है किन्तु काम का भार इतना है कि स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने का समय नहीं मिलता।" इस स्वास्थ्य की उपेक्षा ने ही उन जैसे आर्य धर्म और सभ्यता के सुयोग्य दीवाने को शीघ्र हम से छीन लिया इसमें सन्देह नहीं।

सन् १९३३ में सत्याग्रह आन्दोलन में पंजाब कांग्रेस के डिक्टेटर के रूप में भाग लेने पर आचार्य रामदेव जी को १ वर्ष का दण्ड मिला तो मुलतान जेल में रहते हुए भी उन्होंने वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या में अंग्रेजी में एक विस्तृत पुस्तक लिखनी शुरू कर दी और उसका बहुत सा भाग वहीं लिख लिया जैसा कि उन्होंने मेरे नाम जेल से लिखे दो पत्रों में सूचित किया। उस पत्र में उन्होंने यह भी लिखा था कि मैंने यह निश्चय किया है कि जेल से छूटने के बाद गुरुकुल का चार्ज न लूं किन्तु अंग्रेजी में साहित्य तैयार करूँ और विदेशों में जाकर प्रचार करूँ। खेद है कि अस्वस्थता के कारण यूरोप अमेरिका में जाकर प्रचार करने की आचार्य जी की प्रबल इच्छा पूरी न हो सकी अन्यथा इससे बड़ा लाभ होता। सन् १९०९ में जब ऐसी सम्भावना थी कि सरकार 'सत्यार्थ प्रकाश' को जब्त कर लेगी उस वर्ष नवम्बर मास में लाहौर (बच्छोवाली) आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर कहे हुए उनके निम्नलिखित स्फूर्तिदायक शब्द आज भी हम सबके लिये विशेष उपयोगी हैं। उन्होंने अपने भाषण में कहा था "भारतवर्ष पर आक्रमण करने वाले मुस्लिम राजाओं ने कई बार इस देश के बड़े २ पुस्कालयों को जला जलाकर खाक में मिला दिया और सैकड़ों आर्य विद्वानों को मृत्यु के विकराल मुख में झोंक दिया तो भी हमारे पूर्वजों ने वेद शास्त्र तथा अन्य वैदिक साहित्य को नष्ट नहीं होने दिया था। उन्होंने वंश परम्परा से वेदों को कण्ठ करके उनकी रक्षा की थी। हम उन्हीं आर्यों के वंशज हैं। हम भी 'सत्यार्थप्रकाश' की एक-एक पंक्ति कंठ कर लेंगे और उसे नष्ट न होने देंगे। सरकार का कानून कागज पर छपी हुई पुस्तक को जब्त कर सकता है, आर्यों के हृदयों में सुरक्षित उनके ज्ञान को नहीं।"

आज आर्यसमाज में ऐसे ही जोशीले वैदिकधर्म के दीवानों की आवश्यकता है जो उसमें नवजीवन का संचार कर दें। 'वैदिक मैगजीन' के द्वारा आचार्य जी ने वैदिक धर्म का सन्देश यूरोप अमेरिका के सुशिक्षित महानुभावों तक जिनमें टॉलस्टाय जैसे उच्चकोटि के जगद्विख्यात विचारक भी सम्मिलित थे पहुंचाया था। उन्होंने एक बार गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर अपने भाषण में बताया था कि उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' का अंग्रेजी अनुवाद टालस्टाय के पास भेजा था जिसके वानप्रस्थ विषयक पञ्चम समुल्लास को पढ़ने पर वे (टालस्टाय) इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने वान प्रस्थाश्रम में प्रवेश का निश्चय करके घर छोड़कर जंगल का रास्ता लिया। लोकमान्य तिलक जैसे सुप्रसिद्ध विद्वानों ने अपने 'गीता रहस्य' इत्यादि ग्रन्थों में बड़े आदर के साथ कई स्थानों पर वैदिक मैगजीन का निर्देश किया है। इसमें बड़े बड़े विद्वानों के उत्तम लेख प्रकाशित करवाने का स्व० आचार्य जी सदा विशेष ध्यान रखा करते थे। खेद है कि उच्च कोटि की अंग्रेजी मासिक पत्रिका के बन्द होने के पश्चात् आर्य समाज के पास अपने नवविश्वनिर्माणादि विषयक सन्देश की पाश्चात्य जनता तक पहुंचाने का कोई उत्तम साधन नहीं रहा जिसकी बड़ी भारी आवश्यकता है। अन्त में मैं उन त्याग तपोमूर्ति आचार्य रामदेव जी के प्रति पुनः श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं।

श्रद्धेय प्रो. आचार्य रामदेव जी

(लेखक—राजस्थान केसरी कुंवर चाँदकरण जी शारदा)

वर्तमान आर्यसमाज के निर्माता अंग्रेजी के असाधारण विद्वान् अपूर्व व्याख्याता, अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी के सच्चे अनुयायी, सच्चे देश भक्त, प्रो० श्रद्धेय श्री रामदेव जी को मैं अपने विद्यार्थी जीवन से ही जानता था। उनके जोशीले भाषण और वैदिक मैगजीन में बम्बास्टिक अंग्रेजी वाले लेख हमारे हृदयों में वैदिक धर्म की छाप बैठाते थे। वास्तव में उनका वैदिक धर्म और महर्षि दयानन्द के प्रति इतना अगाध प्रेम था कि उन्होंने आर्य समाज के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। वे केवल वाणी और लेखों से ही आर्य समाजी नहीं थे, परन्तु नित्य प्रति के जीवन में, मामूली बोल चाल में, खाने पीने में, प्रत्येक उनके सहवास में रहने वाला कह सकता था कि यह सच्चे आर्य समाजी थे।

इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर हम नवयुवकों ने उन्हें आज से ३१ वर्ष पहले आश्विन शुक्ला ७, ८ एवम् ९ संवत् १९७१ विक्रमी को पंचम अखिल भारत वर्षीय आर्य कुमार सम्मेलन अजमेर का सभापति चुना था। मेरे सामने वह दृश्य अब भी विद्यमान है जब कि हमने आपके अजमेर पधारते ही बैण्ड के मधुर गान के साथ करतलध्वनियों से उसका स्वागत किया था। सारा अजमेर स्टेशन वैदिक धर्म के जय-घोषों से गुंजा दिया था और पुष्प मालाओं से उन्हें लाद दिया था। इनके जलूस में दयानन्द हाई स्कूल के ६०० विद्यार्थी पंक्ति बनाकर चल रहे थे। इसी सम्मेलन का अत्यन्त रोचक और चित्ताकर्षक अंग आर्य टूर्नामेन्ट "Arya tournament" खेल कूदों" का प्रोग्राम प्रारम्भ किया था। जिसमें प्रतियोगिता के लिये सारे भारतवर्ष के आर्यकुमार निमन्त्रित किये गये थे।

श्री प्रोफेसर साहेब ने आर्य कुमारों के कर्त्तव्यों की जो विवेचना की वह आर्य समाज के गौरव का विस्तार करने वाली थी। यहां पर ही आपने "वेदों के प्रकाश में विकास सिद्धान्त" पर बड़ा ही महत्त्वपूर्ण भाषण दिया था और आर्य कुमारों को निम्न सन्देश दिया था। "प्रिय आर्य कुमारों, मैं चाहता हूं कि आप लोग जी जान से कोशिश करें और वैदिक धर्म को संसार भर में फैलावें। सेन्ट पाल के गिर्जे पर 'ओ३म्' का झंडा लहरावें। बर्लिन के बाजारों में वेद मन्त्रों का गान हो। मक्के की मस्जिद में संसार को प्रकाशित करने वाला हवन हो। एक बार बोलो "वैदिक धर्म की जय", वे मेरे पास ही ठहरे थे। उनका नित्य प्रति नियमित रूप से हवन करना, संध्या करना तत्पश्चात् वेदों का स्वाध्याय करना हरेक नवयुवक पर इनके आर्यत्व की छाप बैठाता

था। मेरे बड़े भाई स्वर्गवासी श्री सूर्यकरण जी शारदा मेरे छोटे भाई डाक्टर दानकरण जी शारदा तथा मेरे चाचा दीवान बहादुर हरविलास जी शारदा मेरे पिता जी राय साहेब रामविलास जी शारदा सबसे आर्यत्त्व के नाते एक परिवार का सा संबंध था और उनसे पवित्र वैदिक धर्म के प्रचार के संबंध में ही वे वार्तालाप किया करते थे। उनके अतुलित जोश की बातें और व्याख्यान अब तक मेरे कानों में गूंज रहे हैं। और मैं अपने व्याख्यानों में अब भी उनका प्रयोग करता रहता हूँ। मैं यह अपना गौरव समझता हूँ कि मैंने उनके प्रधानत्त्व में अखिल भारतवर्षीय आर्य कुमार सम्मेलन के उपमंत्री का कार्य आज से ३१ वर्ष पहले किया था। चतुर्थ आर्य कुमार सम्मेलन के प्रधान पूज्यनीय नेता महात्मा मुँशीराम जी (स्वामीश्रद्धानंद जी) थे। अत: पंचम आर्य कुमार सम्मेलन के प्रधान उनके दाहिने हाथ कर्मवीर रामदेव जी का चुनना सर्वथा उपयुक्त था। उस समय भय और संकोच के बादल आर्यकुमार परिषद् के आकाश पर उमड़ घुमड़ कर आ रहे थे और भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् तथा आर्य प्रतिनिधि सभाओं में इनके संगठन पर नाना प्रकार के दोष भयभीत आर्य सज्जन लगा रहे थे। श्रीमान् प्रोफेसर साहेब ने अपनी चतुरता से सारे भय के बादल छिन्न-भिन्न कर दिए तथा भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद तथा आर्य कुमार सभाओं के संगठन की उत्तम दृष्टि से ऐसी आम नियमावली वना दी जो आर्य समाज के लिए सदा लाभदायक सिद्ध होगी। सच पूछो तो उनके सभापतित्व में अजमेर सम्मेलन में ही आर्य कुमार परिषद को स्थायित्त्व दिया गया और उसकी अजमेर में रजिस्ट्री कराई गई।

आर्य टूर्नामेन्ट सेवा समितियां खोलना आदि रचनात्मक कार्य इसी सम्मेलन से प्रारम्भ हुए जब जब मैं गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर जाता था तो प्रोफेसर रामदेव जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी की पवित्र भावनाओं की छाप ब्रह्मचारियों स्नातकों तथा सारे गुरुकुल के वातावरण में दृष्टि गोचर होती थी। वे अन्त समय तक आर्य समाज और वैदिक धर्म के प्रेम में दीवाने रहे। यद्यपि वे आज हमारे मध्य में नहीं है परन्तु उनका सदाचार, उनकी देश भक्ति, उनका त्याग, तप, बलिदान आज भी हमें हमारे जीवन को पवित्र बनाने के लिए तथा प्यारी मातृभूमि भारत को स्वतंत्र करने के लिए उत्साहित कर रहा है। परमात्मा करे कि आर्य समाज में प्रो० रामदेव जी जैसे सच्ची लगन के, त्यागी, तपस्वी, उपदेशक उत्पन्न हों ताकि देश-देशान्तरों तथा द्वीप द्वीपान्तरों में पवित्र वैदिक धर्म का प्रचार हो और हम सारे विश्व को आर्य बनावें।

श्री प्रो० रामदेव जी के जीवन से हमें यही सबक लेना चाहिए कि हम अपने ऊपर ऋषियों के नामों को जीवित रखने के लिये, उनकी सभ्यता, आचार, विचार, रीति, नीति का प्रचार करें।

आर्य जाति को पराधीनता, निर्बलता, और अवनति के दलदल से निकालें। पवित्र चरित्र के मार्ग पर पांव बढ़ावें। भ्रम में फंसे मनुष्यों को इस्लाम ईसाईयत आदि धर्मों से निकाल कर एक पवित्र वैदिक धर्म के स्नेह के अटूट तार में बांध कर सारे विश्व में सुख और शान्ति फैलावें।

आचार्य रामदेव जी

(लेखक—श्री पं० अमरनाथ जी सप्रू, पूर्व कार्यालयाध्यक्ष गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी)

मैं लगभग ६ वर्ष तक गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य श्री रामदेव जी के समय में कार्यालयाध्यक्ष रहा । इस नाते से मैं प्रतिदिन ही कागज-पत्र लेकर आज्ञा प्राप्त करने के लिए उनकी सेवा में उपस्थित होता था। इस बीच में मैंने उनके अन्दर जो ज्वलन्त व्यक्तित्व की झाँकी पाई, वह महान् पुरुषों की ही विशेषता है । उसी के कुछ पहलू इस लेख द्वारा पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ।

स्वर्गीय श्री आचार्य रामदेव जी में आचार्यत्त्व की अग्नि विशेष रूप से प्रदीप्त थी। आचार्य को केन्द्र बना कर जैसे समूचा आचार्यकुल संगठित रहता है, उसी प्रकार उन में यह एक विशेष शक्ति थी कि अपने गुरुकुल मे समस्त सहकारी वर्ग को विशेष आकर्षण से उन्होंने बाँध रखा था। एक बार की बात है कि मैं किन्हीं कारणों से रुष्ट हो गया और गुरुकुल की सेवा त्याग कर जाने को उद्यत हो गया। मुझे बुलाकर कहने लगे—'जाइये ! देखूं तो भला, कैसे जाते हैं यहाँ से आप । जाइये ! भाग के जाइये । देखूं, कैसे भागते हैं ! कहाँ भाग के जायेंगे ! जहाँ जायेंगे, वहीं से पकड़ लाऊँगा।' इस अपनेपन से भरे तिरस्कार से मेरा जाने का विचार स्थगित हो गया। इस स्नेहभरी फटकार को सुनकर किसमें हिम्मत थी भला, जो एक भी कदम खिसक सकता।

दुनिया भर में प्रायः सर्वत्र अधिकारी और मातहत कर्मचारी के बीच पार्थक्य और वैषम्य की एक गहरी खाई रहा करती है । परन्तु गुरुकुल कांगड़ी में यह बात नहीं है, और स्वर्गीय श्री आचार्य जी का तो अधिकारी-रूप से इस सम्बन्ध में अपने मातहतों के प्रति व्यवहार बड़ा ही स्निग्ध होता था। अपने कर्मचारियों की सिफारिश करने में, उन्हें प्रोत्साहित करने में, उन्हें तरक्की देने में तथा अन्य सभी सम्भव उपायों द्वारा सहायता करने में वे सदा उद्यत रहते थे। व्यवहार भी उनका अत्यधिक उदार एवं स्निग्ध होता था। मातहतों पर उनका विश्वास भी अत्यधिक होता था। अर्थात् सर्वाधिकारी होते हुए भी वे मातहतों के प्रति हर प्रकार से हमदर्दी रखते थे। और इस सब के बीच उनकी बुजुर्गाना महानता अक्षुण्ण बनी रहती थी । जब भी कभी मैं अपने कार्यालय के किसी सहकारी की तरक्की की सिफारिश करता था, तो यदि अनिच्छा हो तो भी वे उसके प्रति बड़ी उदारता प्रकट किया करते थे। अपने स्वभावानुसार जल्दी-जल्दी में दोहरा-तिहरा कर कहते, 'मैं नहीं जानता, सप्रू जी जानते हैं!' और स्वीकृति सूचक हस्ताक्षर कर देते।

अधिकारी होने पर भी हमारे साथ वे कोमल और मधुर भ्रातृत्व सम्बन्ध सदा रखते थे। अतः कभी कभी हम जब परिहास भी करते थे तो उसमें भी वे पूरा-पूरा आनन्द लेते थे।

उनके कृपापूर्ण तथा प्रेमपूर्ण व्यवहार की एक सुन्दर घटना मुझे स्मरण हो आई। १४ वर्ष पूर्व की बात है। मेरी एकमात्र कन्या के शुभ विवाह का अवसर था। मेरे निवास-स्थान स्यालकोट में कार्य सम्पन्न होना था। आचार्य जी उन दिनों देहली में गुरुकुल कार्यार्थ अतिव्यग्र थे, तथा कुछ अस्वस्थ भी थे। तो भी सूचना पाते ही शुभाशीर्वाद से कृतार्थ करने के लिये स्यालकोट आ पधारे। मैंने सादर प्रणाम करके कृतज्ञता प्रकाशित की तो बोले, 'भाई और काम तो चलते ही रहेंगे। अन्य किसी मित्र के किसी संस्कार या शुभावसर पर पहुँचूं या नहीं कोई हर्ज की बात नहीं। परन्तु तुम्हारा तो यही शुभावसर प्रथम और अन्तिम है, तो भला मैं कैसे न पहुंचता।' अर्थात् बड़ी इच्छापूर्वक और अपनेपन के साथ वे उस अवसर पर उपस्थित हुए थे।

अपनी धुन के वे बड़े पक्के थे। उनका दिमाग भी बड़ा तेज चलता था। जो कुछ सोचा और ठीक समझा; बस, उसे निर्भय होकर कर डाला। किसी विषय को लटकाना और टरकाना तो वे जानते ही न थे। इसीलिये कार्यालय की प्रत्येक बात को वे अवश्य सुन लेते थे, परन्तु फिर तत्काल ही अथवा यथाशीघ्र तत्सम्बन्धी आज्ञा दे देते थे। इसीलिये कार्यालय में सारे मामले अविलम्ब सुलझते और निबटते जाया करते थे।

रुपए-पैसे के बारे में आचार्य जी बड़े ही लापरवाह थे। जमाजोड़ के पचड़े में वे कभी नहीं पड़े। इसीलिए इस सम्बन्ध में वे उदार भी बहुत रहे।

गुरुकुल की एक पाई भी खरच कर डालना वे महापाप समझते थे। कार्यालय में उनकी एक स्थिर आज्ञा थी, 'मेरे नाम जो निजी ऋण हो या व्यय हो, वह सप्रू जी के हस्ताक्षरों से मेरे नाम डाल दिया जावे—मुझे स्वीकार्य होगा।'—परन्तु, मुझे आये दिन चेतावनी दिया करते थे—'देखना, कभी किसी तरह गुरुकुल का एक पैसा भी मेरी तरफ न आ जावे, अन्यथा तुम पाप के भागी होगे।'

चन्दे के दौरे से लौटते ही तत्काल मुझे बुलवाते थे। झट पैसे टके का बटुआ बिना गिने उलट देते, दानियों की सूची तथा मार्ग-व्यय-विवरण की कापी मेरे सुपुर्द कर देते। और अपने स्वभावानुसार द्रुतगति से दोहरा-तिहरा कर कहते, 'जल्दी-जल्दी हिसाब कर लो, जल्दी-जल्दी, जल्दी-जल्दी।' मैं रुपया गिनकर दफ्तर में आ जाता। हिसाब करने पर और मार्ग-व्यय का विवरण देखने पर पता चलता कि अमुक राशि कम है। जाकर पूछने पर उसी प्रकार से जल्दी-जल्दी में उत्तर मिलता 'न्यून राशि मेरे नाम ऋण कर दो और दानियों को रसीदें भेज दो।' हमें भी चिन्ता होती। एक तो वैसे ही गरीबी को घर बैठे निमन्त्रण दिये रहते हैं उस पर यह और भी भार कैसे डालें। लौट कर पुनः हिसाब किया जाता तो पता चलता कि अमुक स्थान पर गए हैं तो रेल का किराया भी दर्ज नहीं किया, अमुक स्थान पर अन्य आवश्यक व्यय नहीं

लिखा। इत्यादि-इत्यादि दोबारा जाकर इस संबन्ध में पूछा जाता तो उसी तरह से कहते, 'हाँ-हाँ-हाँ, रह गया है, जोड़ दो। ऐसा करने पर भी प्रायः हर बार ही कुछ न कुछ ऋण उनके नाम डालना ही पड़ता।

विचार और विवेचनाशक्ति इतनी तीव्र थी कि छूटते ही बोलते थे इतना शीघ्र, मानों तूफान मेल हो। और ऐसे दुहराते-तिहराते थे, मानों 'शण्टिङ् इञ्जिन्' हों। सब मिला कर एक ऊँचे दिमाग वाला सचेतन ग्रामोफोन का रिकार्ड प्रतीत होता, जिसकी धारा-प्रवाह गति दूसरे से युक्तियों में विजय प्राप्त करके ही रुकती।

पढ़ने का तो उन्हें व्यसन था। हजारों बार मैं उनके पास गया, पर हर बार और हमेशा उन्हें पढ़ता ही पाया। दुनिया का शायद ही कोई ऐसा अधिकारी हो जो हर समय पढ़ता ही पाया जाय। एक बार उन्हें रक्तचाप (Blood Pressure ब्लड प्रैशर) की तकलीफ होने के कारण डाक्टरों ने मेरे सामने आग्रह पूर्वक पढ़ने से मना किया। उन्हें इस मनाही से बड़ी परेशानी महसूस हुई। बोले—'बीमारी तो रहेगी ही, तो क्या पढ़ना भी छोड़ दूं! दो-चार दिन के वास्ते कहो तो बन्द कर भी दूं, अधिक दिनों की पढ़ने की बन्दिश तो मेरे बस की नहीं। तो क्या भला, सौ पृष्ठ भी रोज न पढ़ूं।'

गुरुकुल ही उनका सर्वस्व था। जब भी जरूरी कागज-पत्र उनके सामने पेश किए जाते और उनपर आज्ञा ली जाती तो स्पष्ट ही पता चलता कि हर वक्त उनके दिमाग में गुरुकुल के हित की बात चलती रहती है—स्टाफ कैसे जुटाया जावे, चन्दा कैसे लाया जावे, इत्यादि-इत्यादि। कमरे में, हवा में, दिमाग में—सब तरफ बस गुरुकुल ही गुरुकुल। इसी गुरुकुल की हित चिन्ता में ही वे सदा रमे रहते। इसके सिवा उनका अपना निज जीवन मानों कुछ— था ही नहीं।

गुरुकुल ही गुरुकुल उनके दिल-और दिमाग में था गुरुकुल-हित की चिन्ता उनके जीवन में गहरी जड़ जमाए हुए थी। और मुझे विश्वास है कि दिवंगत हो चुकने के बाद भी पुनः वे गुरुकुल में ही उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवेंगे, शायद आते ही होंगे।

आचार्य रामदेव जी

ले०—महाशय कृष्ण जी

शब्द के प्रचलित अर्थों में वे शहीद हों या न हों किन्तु वस्तुतः वे शहीद थे। वे जिन्दा शहीद थे। उन्होंने अपना जीवन आर्यसमाज पर न्योछावर कर दिया। वे चाहते तो कुछ वर्ष और जी सकते थे किन्तु आर्य समाज के प्रेम ने उन्हें जीने न दिया। इसलिए आज जबकि मैं उनके जीवन के कुछ संस्मरण लिखने बैठा हूँ, मैं उन्हें उसी प्रकार प्रणाम करता हूँ जिस प्रकार आर्य समाज के दूसरे शहीदों को।

क्रिसमस १९३६ की एक रात को आचार्य रामदेव और मैं दोनों ला० वृन्दावन सोन्धी के घर पर जालन्धर में ठहरे हुए थे। दोनों वहां आर्य समाज के वार्षिक उत्सव के उपलक्ष में गए थे। दोनों के रात्रि को व्याख्यान हुए। ग्यारह बजे के पश्चात् आचार्य रामदेव का व्याख्यान समाप्त हुआ। वे १॥ घण्टे से कम क्या बोले होंगे। अपने स्वभाव के अनुसार वे खूब गरजे और वैदिक धर्म की जय भी गुन्जाई। सोने का समय आया तो उन्होंने कहा कि शरीर में पीड़ा है। पूर्ववत् उन्होंने Adaline (एक औषधि) की पांच-पांच ग्रेन की तीन गोलियां निकालीं और खाकर लेट गए। बारह बजे के लगभग उन्होंने बिजली का बटन दबाया और मैं जाग उठा। पूछा—'क्या बात है?' उन्होंने उत्तर दिया—'बेचैनी बहुत है। सारे शरीर में दर्द है। और नींद नहीं आती!' मैंने कहा—जब आपका स्वास्थ्य आपको व्याख्यान देने की आज्ञा नहीं देता तो आप क्यों देते हैं। व्याख्यान देना सर्वथा बन्द कर दें। और यदि आप नहीं कर सकते तो आप पौन घण्टे से अधिक न बोलें। किन्तु मुसीबत यह है कि आप कभी १॥, २ घण्टे से कम नहीं देते। और आपकी यह इच्छा होती है कि जो कुछ आपके दिमाग में है वह सब श्रोताओं के सामने उडेल दूं।" उन्होंने Adaline की दो और गोलियां लीं और सो रहे। दूसरी प्रातः मैं लाहौर चला आया और वे हरद्वार चले गए। तीसरे या चौथे दिन हरद्वार से एक पत्र आया, जिसमें यह लिखा था कि आचार्य रामदेव का फालिज गिरा है। उसके कुछ दिन पश्चात् ला० नारायणदत्त जी और मैं देहरादून पहुँचे। जो कुछ सुना था उसे अपनी आँखों देख लिया।

दिसम्बर १९३६ में वे इस रोग से ग्रस्त हुए जो उनके लिए मृत्यु का सन्देश लेकर आया था। वस्तुतः इस रोग का आरंभ कई बरस पहले से हो चुका था। उनका Blood pressure (खून का दबाब) बहुत बढ़ा हुआ था। डाक्टरों ने कई बार उन्हें

चेतावनी दी कि आप सार्वजनिक जीवन से छुट्टी ले लें, वर्ना परिणाम अच्छा न होगा। किन्तु उनका आर्य समाज की सेवा का शौक कुछ इस तरह बढ़ा हुआ था कि वे किसी भी चेतावनी को खातिर में न लाते थे। देहान्त से चन्द बरस पहले वे आर्य समाज के किसी काम पर कलकत्ते गए। उन दिनों उनका खून का दवाव बड़ा हुआ था। डाक्टरों ने आराम करने की सलाह दी। किन्तु वे जमशेदपुर चले गए। वहां के डाक्टर ने उनकी शारीरिक परीक्षा की तो खून का दबाव बहुत अधिक निकला। और परामर्श दिया कि आप लेटे रहें किन्तु उनके व्याख्यान की घोषणा हो चुकी थी। डाक्टर के आग्रह पर निश्चय हो गया कि व्याख्यान स्थगित कर दिया जाए। और ऐसी घोषणा करने के लिए समाज के अधिकारी समाज मन्दिर को चल दिए। किन्तु जब यह घोषणा हो रही थी कि रुग्णावस्था के कारण उनका व्याख्यान स्थगित कर दिया गया है, आचार्य रामदेव वहां जा पहुंचे और व्याख्यान देने को खड़े हो गए। उनके शब्द मुझे इस समय तक स्मरण हैं—'डाक्टर कहते हैं कि मैं न बोलू, किन्तु मैंने मौन को चैलेन्ज दे रखा है।

डाक्टर कहते हैं कि यदि तुम व्याख्यान देते रहे तो शीघ्र मर जाओगे, किन्तु मैं अपने आचरण से सिद्ध करना चाहता हूँ कि मैं आर्यसमाज की सेवा के लिए जीवित रहूँगा।" यह उनके जीवन की एक घटना है। मैं कई ऐसी घटनाएँ बता सकता हूँ जिनमें उन्होंने आर्य समाज की खातिर अपनी जिन्दगी को खतरे में डाला। १९३२ में स्वाधीनता आन्दोलन के सम्बन्ध में सहस्रों हिन्दुस्तानियों ने गांधी जी के आदेश पर जेल बसाए। आचार्य रामदेव ने भी जेल जाने का निश्चय किया। इसी उद्देश्य से उन्होंने गुरुकुल का आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता पद त्यागा। उन दिनों भी उनका ध्यान इस ओर दिलाया गया कि जेल में आपका शरीर आपका साथ न देगा। किन्तु वे जेल जाने का निश्चय कर चुके थे। उन्होंने सत्याग्रह किया और १।। वर्ष के लिए कारागार में डाल दिए गए। पहले वे रावलपिण्डी जेल में रहे फिर मुलतान जेल में। रावलपिंडी में मुझे उनसे मुलाकात करने की आज्ञा न दी गई। किन्तु मुलतान जेल में तो मैं मास में एक वार अवश्य उनके दर्शन करता रहा। जब मैं उनसे मिलने के लिए रावलपिंडी जेल में गया तो सुपरिंटेंडेण्ट ने उनसे पूछा—Is he a brother of yours (क्या ये आपके भाई हैं?) उन्होंने उत्तर दिया—He is more than a brother to me (ये मुझे भाई से अधिक प्रिय हैं) सुपरिन्टेंडेण्ट ने जवाब दिया (Brother) भाई तो मिल सकता है लेकिन more than a brother नहीं मिल सकता। मेरे आन्दोलन करने पर यह पाबन्दी उड़ गई और मैं मुलतान जेल में कई बार उनके दर्शन कर पाया। मुलतान जेल में उनकी अवस्था और भी शिथिल हो गई। खून का दबाब भी बढ़ गया और दिल की धड़कन और भी तेज हो गई। इस पर मैं स्वर्गीय डाक्टर धर्मवीर जी को जो रामदेव जी के बड़े प्रियमित्र थे मुलतान ले गया। उन्होंने उनकी परीक्षा की तो Pseudo angina का रोग बताया। मेजर फजलदीन आई. एम. एस. उन दिनों मुलतान सेन्ट्रल जेल के सुपरिन्टेंडेंट थे,

उन्होंने भी रामदेव जी की शारीरिक परीक्षा की और इसी परिणाम पर पहुंचे। उन्होंने पंजाब सरकार को उनकी रिहाई के लिए लिख दिया। जिस पर वे एक वर्ष की कैद के पश्चात् रिहा कर दिए गए। वे ९ मई १९३३ में छूटे। उनकी रिहाई का दिन मुझे याद है। क्योंकि उसी दिन मेरे ज्येष्ठ पुत्र वीरेन्द्र का Appendieitis का आपरेशन हुआ था। इसके पश्चात् वे पूर्ववत् आर्य समाज की सेवा करते रहे। किन्तु उनका स्वास्थ्य सुधरने में न आया। १९३५ में वे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान निर्वाचित हुए। उसी वर्ष सभा की स्वर्ण जयन्ती मनाने का निश्चय हुआ। निश्चय यह था कि दिसम्बर १९३५ में जयन्ती मनाई जाए किन्तु कारणवश १९३६ के ईस्टर में मनाई गई जयन्ती के कार्य ने Last straw (आखिरी तिनके) का काम किया। मेरे भाई ने अपने ऊपर वह बोझ लिया जो उनके कन्धे उठा न सकते थे। उनका शरीर दिन-प्रतिदिन शिथिल होता जा रहा था। उचित तो यह था कि वे एकान्त में निवास करके अपने शरीर, और मस्तिष्क को आराम देते। किन्तु उन्हें स्वर्ण जयन्ती के सफल बनाने के लिए निरन्तर भ्रमण करना पड़ा। जिसका परिणाम यह हुआ कि जयन्ती के समाप्त होते ही वे लेट गए। अर्धांग के दौरे के पश्चात् वे डाक्टर के परामर्श पर आचरण करते तो उनका जीवनकाल बढ़ सकता था। किन्तु वे रोग ग्रस्त होने पर भी काम करते रहे। उनके जीवन का बड़ा भाग गुरुकुल कांगड़ी की सेवा में व्यतीत हुआ। उनके जीवन के अन्तिम वर्ष कन्या गुरुकुल की सेवा में गुजरे। पहले उन्होंने जाति के पुत्रों की शिक्षा अपने हाथ में ली तत्पश्चात् जाति की पुत्रियों की। उन्हें पुत्रों की अपेक्षा पुत्रियों से अधिक प्रेम था।

इसलिए उन्हें गुरुकुल काँगड़ी की अपेक्षा कन्या गुरुकुल से अधिक प्रेम था और वे अपने जीवन में कन्या गुरुकुल को आर्थिक व अन्य प्रकार से सुरक्षित कर देना चाहते थे। जनवरी 1939 में आर्यसमाज ने अपने धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिए हैदराबाद दक्षिण में सत्याग्रह करने का निश्चय किया। मुझे छठे सर्वाधिकारी के रूप में वहाँ जाने की आज्ञा हुई। मैंने 6 जून को अपने जत्थे के साथ औरंगाबाद में सत्याग्रह किया। उससे 1 मास पूर्व मैंने सारे पंजाब का दौरा किया। इसी सम्बन्ध में मैं हरद्वार भी पहुँचा। भाई रामदेव जी उन दिनों गुरुकुल काँगड़ी में थे। उनकी अवस्था उस समय बहुत शिथिल हो रही थी। मुझे उनका अन्त स्पष्ट दीख रहा था। किन्तु मैं रुक न सकता था। उन्होंने कहा यदि मैं अच्छा होता तो मैं भी सत्याग्रह करता। मुझे सन्तोष है कि तुम सत्याग्रह के लिए जा रहे हो। मैं उनसे विदा हुआ तो उनकी आँखों में भी आँसू थे और मेरी आँखों में भी। यद्यपि हम दोनों ने जवान से कुछ न कहा कि दोनों के दिलों में यह बात जरूर थी कि शायद यह अन्तिम दर्शन हो। सत्याग्रह अगस्त 1939 में समाप्त हो गया। सितम्बर में मैं उनके दर्शनों को देहरादून पहुँचा। उनकी अवस्था और भी शिथिल हो गई थी। मेरे कहने पर उन्होंने दिल्ली जाना मान लिया। मैं भी दिल्ली पहुँच गया। वे वहाँ कई सप्ताह रहे उनके स्वास्थ्य में उतार-चढ़ाव आते रहते थे। दिल्ली में उनके स्वास्थ्य का चढ़ाव था किन्तु जब वे यह समझ कर कि

अब स्वास्थ्य अच्छा होता जाएगा देहरादून को लौटे तो उतार का आरम्भ हो गया। मैं दिल्ली में था जब सूचना मिली कि उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है। ला० नारायणदत्त जी और मैं तुरन्त देहरादून पहुँचे। हमारे पहुँचने से पूर्व वे अचेत हो चुके थे। मुझ से उनकी अवस्था देखी न गई। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती विद्याधरी जी ने उन्हें झकझोर कर जगाया। उन्होंने आँखें खोलीं तो मैं उनके समक्ष खड़ा था। कुछ सेकण्ड मेरी ओर देखते रहे। बहिन विद्याधरी ने पूछा कि "ये कौन हैं?" तो उन्होंने बड़ी कठिनाई से 'भाई' का शब्द कहा। उसके पश्चात् उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर ली और ऐसी बन्द की कि फिर न खुली।

आचार्य रामदेव जी की वस्तुतः अकाल मृत्यु हुई। वे चाहते तो आर्यसमाज की सेवा करते हुए भी अधिक जी सकते थे। किन्तु आर्यसमाज की सेवा में उन्होंने दिन देखा न रात देखी। जिसका परिणाम हुआ कि रोगी हो गये। इस अवस्था में भी वे सावधानी से काम लेते तो कुछ वर्ष और जीवित रहते किन्तु उनका आर्यसमाज से प्रेम इतना बढ़ा हुआ था कि उन्हें अपने जीवन की भी परवाह न थी। मेरा यह विश्वास है कि आर्यसमाज की स्वर्ण जयन्ती भी उनकी अकालमृत्यु का कारण बनी। जिन अवस्थाओं में उन्होंने स्वर्णजयन्ती के लिए धन एकत्र किया उसका एक दृष्टान्त प्रस्तुत करता हूँ—

जम्मू से उन्हें पिंड दादनखाँ जाना था। रात का सफर था। गाड़ी वजीराबाद आकर रुक जाती थी। दो घण्टे के पश्चात् उन्हें दूसरी गाड़ी लेनी थी। वजीराबाद पहुँचे तो इन्होंने जेब से Adaline निकाली और खाकर प्लेटफार्म पर लेट रहे। गाड़ी आई तो कुली ने जगाया। कुली को क्या मालूम था कि वे इस समय संसार शून्य हैं। उसका सहारा लेकर वे दूसरे प्लेटफार्म पर पहुँच तो गए किन्तु गाड़ी में चढ़ते-चढ़ते प्लेटफार्म और गाड़ी के पायदानों के बीच ही खाली जगह पर गिर पड़े। वहाँ से उन्हें गाड़ी में लिटाया गया। वे पूर्ववत् बेहोश थे। पिण्डदादनखाँ जाने के लिए उन्हें लालामूसा फिर गाड़ी बदलनी थी। इससे आप अनुमान कर सकते हैं कि वे किस अवस्था में पिण्डदादनखाँ पहुँचे होंगे। बड़ी कठिनाई यह थी कि वे कभी भी सेकण्ड या फर्स्ट क्लास में सफर करने को तैयार न होते थे। वे अपने को आर्यसमाज का उपदेशक समझते थे और तप तथा त्याग का जीवन व्यतीत करना चाहते थे।

जो कुछ मैंने लिखा है इसके आधार पर क्या मैं यह कहने का अधिकारी नहीं कि—

आचार्य रामदेव जी शहीद थे।

"मेरे गुरु प्रो. रामदेव जी"

(ले० —पं०सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
W-77A, ग्रेटर कैलाश-I, नई दिल्ली)

एक फरवरी 1991 को डा० धर्मपाल जी का साढ़े छः बजे सायंकाल टेलीफोन आया कि प्रो० रामदेव जी पर एक लेख लिखूं। मैं अब ऐसी शारीरिक स्थिति में नहीं हूँ कि सीधी पंक्ति में कुछ लिख सकूं। जब लिखने बैठता हूँ तब टेढ़ी-मेढ़ी लाइनें लिखी जाती हैं। शब्द भी ठीक से नहीं लिखे जाते। जो कुछ लिखता हूँ, बच्चों की सी लिखावट होती है। इसलिए मैंने उन्हें कहा कि आप भूल गये कि मेरी आयु क्या है। और इस उम्र में मेरी लिखने की शक्ति क्या रह गई है। किसी को भेज दीजिए, मैं जो कुछ लिख सकता हूँ, लिखवा दूंगा। पहले भी सत्यकेतु जी के विषय में कुछ लिखा था। तब आपने श्री सुभाष जी को भेज दिया था। ऐसा ही कुछ अब आपको करना होगा, मैं बोलता जाऊँगा, वे सज्जन लिखते जाएंगे। इस समझौते के बाद मैंने लिखना स्वीकार किया। परन्तु फिर मैं सोचने लगा, मुझे कुछ ही क्यों न हो, प्रो० रामदेव जी मेरे गुरु थे, जो कुछ स्वयं लिख सकता हूँ वह क्यों न लिखूं, इसलिए स्वयं कलम उठा कर लिखने बैठा हूँ।

मैं जब गुरुकुल में पढ़ता था तब हर तरह से होशियार होते हुए भी गणित में कमजोर था। दशवीं कक्षा में गणित पढ़ना आवश्यक था। दशवीं कक्षा पास किए वगैर विद्यार्थी कालेज में नहीं जा सकता था। कालेज में गए वगैर स्नातक नहीं बन सकता था। सिर्फ मुझे ध्यान में रखकर नहीं, परन्तु शायद गणित में कमजोर अनेक छात्रों को ध्यान में रखकर प्रोफेसर रामदेव जी ने गुरुकुल में एक नई योजना चलाई, जिसमें गणित का कोई स्थान नहीं था। इस योजना को चलाने का लक्ष्य यह था कि जो छात्र आर्यसमाज के उपदेशक बनना चाहें, वे इस योजना के अन्तर्गत आकर सिर्फ उन विषयों का अध्ययन करें जो उपदेशकों के लिए जरूरी है। गणित का उपदेशकों के लिए क्या उपयोग है? कुछ नहीं। उपदेशकों के लिए जरूरी है— वेदों का अध्ययन, भिन्न-भिन्न भाषाओं का अध्ययन, देश का कानून, गरीबों की चिकित्सा आदि आदि। इस विभाग का नाम "आर्य सिद्धान्त" रखा गया। जो इस विभाग में आते थे 'विद्यालंकार' कहाने के स्थान में "सिद्धान्तालंकार" कहलाते थे। मैंने यह विषय ले लिया और इसके लेने से गणित से मुझे छुटकारा मिल गया। इस योजना के अन्तर्गत मेरे अतिरिक्त पं० दीनानाथ, पं० विद्यानिधि आदि चार-पाँच विद्यार्थी ही आते थे जो गणित से छुटकारा चाहते थे। यह योजना प्रो० रामदेव जी की सूझ थी जिसके लिए मैं उनका आजीवन ऋणी रहूँगा इस योजना का परिणाम यह हुआ कि गुरुकुल में रहते हुए मुझे अन्य छात्रों की अपेक्षा निम्न विषयों का ज्ञान अन्यों से अधिक हुआ, वे विषय निम्न थे—

(क) वेद, वेदांग, दर्शन तथा उपनिषदों का ज्ञान तथा अध्ययन।

(ख) हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी, पाली आदि भाषाओं का विशेष ज्ञान।

(ग) आयुर्वेद, नेचुरोपैथी, एलोपैथी का ज्ञान।

(घ) अंग्रेजी में विशेष रुचि तथा गति।

(ङ) व्याख्यान देने की रुचि तथा हिन्दी, अंग्रेजी आदि में भाषण की योग्यता तथा अध्ययन एवं इन भाषाओं में व्याख्यान देने की शक्ति।

(च) संस्कृत भाषा में भाषण की योग्यता।

जहाँ तक अंग्रेजी भाषा का सवाल है, एक बार प्रो० रामदेव जी ने मुझे सुनाया कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर प्रो० के० के० मलहोत्रा ने उन्हें कहा कि गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक वैसे तो हर विषय में योग्य होते हैं, परन्तु अंग्रेजी भाषा बोलने और लिखने में कमजोर होते हैं। यह कहने का उनका विशेषाधिकार इसलिए था क्योंकि वे स्वयं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। इसका उत्तर देते हुए प्रो० रामदेव जी ने उनसे पूछा कि क्या आपने कभी पं० सत्यव्रत जी को अंग्रेजी में व्याख्यान देते हुए सुना है। प्रो० के० के० मलहोत्रा देहरादून के निवासी थे और मैं भी देहरादून ही रहा करता था। प्रो० रामदेव जी का प्रश्न सुनकर प्रो० मलहोत्रा बोल उठे—पं० सत्यव्रत जी तो Exception हैं। प्रो० रामदेव जी ने कहा —वे Exception नहीं उनके पढ़ाए हुए शिष्य हैं। और उनकी बोलने-चालने तथा भाषण देने की गति उनको उन द्वारा पढ़ाए जाने के कारण है। इस घटना के बाद एक दिन मेरी देहरादून में प्रो० के० के० मलहोत्रा से भेंट हो गई, तब मैंने प्रो० मलहोत्रा को कहा कि मैं सदा साधारण छात्रों में गिना जाता रहा, Exception तो पं० जयचन्द या पं० देवशर्मा माने जाते थे।

उस समय मैंने प्रो० मलहोत्रा को बतलाया मैंने प्रो० रामदेव जी से आर्य सिद्धान्त के कोर्स में फ्लिट की Theism तथा Anti-Theitic Theories पढ़ी थी, जिनके अनेक कोटेशन स्मरण कर लिए थे। जब मैं पहले-पहल कोल्हापुर गया तब पूना में मेरे अंग्रेजी में व्याख्यान हुए। जिनमें मैंने उक्त दोनों पुस्तकों से रटे हुए कोटेशनों का विशेष रूप से प्रयोग किया। उन दिनों कोल्हापुर का कालेज महाराजा ने उत्तर प्रदेश की आर्य-प्रतिनिधि सभा को प्रबन्धार्थ दिया हुआ था। उन व्याख्यानों में उत्तर प्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री हुकम सिंह जी उपस्थित थे। मेरे अंग्रेजी भाषा में दिए व्याख्यानों को सुनकर श्री हुकम सिंह जी जो कोल्हापुर कालेज के लिए आर्यसमाजी प्रोफेसर नियुक्त कर रहे थे। मुझे आर्य सिद्धान्तों का प्रोफेसर नियुक्त कर दिया और मेरा काम कालेज लगने से पहले सब प्रोफेसरों तथा विद्यार्थियों के सामने किसी आर्य-विषय पर अंग्रेजी में भाषण देना था। यद्यपि युनिवर्सिटी में यह विषय कोर्स में नहीं था। इस प्रकार गुरुकुल काँगड़ी से स्नातक होते ही अंग्रेजी के बल पर प्रोफेसर जैसे पद पर नियुक्त हो जाने का श्रेय प्रो० रामदेव जी को ही है।

और उनका कहना कि गुरुकुल का स्नातक हर विषयों में योग्य होता है। मेरे जीवन का सबसे बड़ा सर्टिफिकेट हो गया।

इस घटना का उल्लेख मैं यहाँ इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि प्रो० रामदेव जी ने ही गुरुकुल काँगड़ी में आर्य-सिद्धान्त जैसे एक नवीन विषय का समावेश किया और उसमें अंग्रेजी में भाषण देने को अन्य विषयों की भाँति एक विषय का स्थान दिया।

यद्यपि अंग्रेजी में विशेष गति होना कोई गर्व की बात नहीं है तो भी जिस समय की घटना का मैं यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ और प्रो० रामदेव जी का चलाया जिस 'आर्य सिद्धान्त' का मैं जिक्र कर रहा हूँ, उस समय यह गर्व की बात मानी जाती थी और इस सब का श्रेय प्रो० रामदेव जी को है।

मैंने अपने जीवन में पूना, कोल्हापुर, बैंगलोर, मैसूर, मद्रास आदि में कई वर्ष रह कर सैकड़ों भाषण अंग्रेजी में दिया। जिन सबकी प्रेरणा के स्रोत प्रो० रामदेव जी ही थे। मैंने उनसे जो सीखा वही बोला, वही लिखा। अब गुरुकुल में 'आर्य सिद्धान्त'' की क्या स्थिति है, मैं नहीं जानता, परन्तु जब तक मैं गुरुकुल में विद्यार्थी रहा तब जो स्थिति थी उसमें निःशंक कहा जा सकता है विदेशों से पत्र आ रहे हैं' गुरुकुल का ब्रह्मचारी हल-चल मचा रहा है। आजकल अरब आदि की क्या स्थिति है उसे देखते हुए यह तो नहीं कहा जा सकता कि 'अरब से कहाँ जाएँगे' परन्तु यह कहा जा सकता है जो मैंने ऊपर लिखा है।

गुरुकुल काँगड़ी के विश्वविद्यालय में पढ़ाए जाने वाले—विषयों में 'आर्य सिद्धान्त, को रखते हुए श्री प्रो० रामदेव जी का आशय यह था कि इस विभाग में पढ़े हुए छात्र इतने योग्य हों कि हर विषय में उनकी गति हो। इसलिए मैंने ऊपर वे विषय दिए हैं जो आर्य-सिद्धान्त पढ़ने वाले को पढ़ने होते थे। इस कोर्स को पढ़ने वाले छात्र अच्छे उपदेशक होते थे, अच्छे अध्यापक होते थे, अच्छे व्याख्याता, अच्छे लेखक— सब तरह उच्चकोटि के होते थे।

इस समय मुझे एक घटना याद आ रही है। एक समय था जब पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने दिल्ली में 'अर्जुन' पत्र चलाया था। इस पत्र में दो सिद्धान्तालंकार थे—एक थे पं० दीनानाथ जी सिद्धान्तालंकार तथा दूसरे थे पं० विद्यानिधि सिद्धान्तालंकार। पं० विद्यानिधि जी ने मुझे सुनाया कि 'अर्जुन' प्रेस के कम्पोजीटर्स आपस में चर्चा किया करते थे कि इन दोनों अलंकारों में क्या भेद है ? वे आपस में वाद-विवाद के बाद यह निर्णय किया करते थे कि इन दोनों में बड़ी डिग्री सिद्धान्तालंकार है क्योंकि वे विद्यालंकारों से अधिक योग्य प्रतीत होते हैं। मैं इस विवेचन से सहमत नहीं हूँ, परन्तु प्रिंटिंग प्रेस में कार्य करने वालों का यह मत था। इस सारे वातावरण का श्रेय प्रो० रामदेव जी को है।

प्रो० रामदेव जी योगी न होते हुए भी एक प्रकार से योगी ही थे। योगी किसे कहते हैं ? जो व्यक्ति भौतिक-सागर में रहते हुए भी न रहने के समान हो वही योगी कहा जा सकता है। इस समय उनके सम्बन्ध में कुछ घटनायें मेरे सामने उभर

रही है, जिन्हें मैं यहाँ लिखना चाहता हूँ, जो एक योगी के जीवन में ही घट सकती है। सामान्य व्यक्ति के जीवन में नहीं। घटनाऐं तो अनेक हैं, परन्तु कुछ का ही यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ।

(क) जब गुरुकुल कांगड़ी, गंगा की बाढ़ में नष्ट-भ्रष्ट हो गया था, गुरुकुल के भवनों के नवनिर्माण के लिए प्रभूत राशि की आवश्यकता थी, तब उन्होंने अफ्रीका जाने का प्रोग्राम वनाया। उस समय उन्होंने मुझे अपने साथ लिया। हम दोनों पानी के खंडाला नामक जहाज से गए। दो-तीन महीने अफ्रीका रहे। प्रो० रामदेव जी की आदत थी कि वे किताब पढ़ते हुए हाथ ऊपर उठाकर और टांग हिलाकर पढ़ा करते थे। एक दिन एक पंजाबी उनके दर्शन के लिए आया वे नियमानुसार पढ़ते रहे, हाथ हिलाते रहे, टाँग भी हिलाते रहे, उस सज्जन की तरफ उन्होंने ध्यान भी नहीं दिया। वह घंटा भर बैठा रहा, पर जब उसने देखा कि प्रोफेसर साहब अपने में ही मस्त हैं, तब यह कहता हुआ चला गया कि इन्हें बादाम खिलाऊँगा तब इनका दिमाग दुनियाँ की तरफ भी झुकेगा। अगले दिन वह एक बोरी बादाम ले आया और कहता हुआ चला गया प्रोफेसर इन्हें खायेगा तब इसका ध्यान पुस्तकों से हट कर आदमियों की तरफ भी जायगा। वे बादाम प्रोफेसर रामदेव जी ने तो नहीं खाए, वे मेरे काम आए, एक और घटना भी याद आ रही है।

(ख) जब हम गुरुकुल में थे। तब प्रोफेसरों की एव मंडली शाम को घूमने निकला करती थी। उसमें मैं भी शरीक होता था। गंगा की बड़ी धार तक पहुँचने के लिए रास्ते में एक हल्के नाले में से गुजरना पड़ता था। प्रोफेसर रामदेव जी के पाँव में जूता होता था। हम लोग तो जूता हाथ में लेकर नाला पार करते थे, वे जूते समेत नाले में से गुजर जाते थे। एक दिन हमने देखा कि उनके एक पाँव में जूता है, दूसरा पाँव नंगा है। जय उनसे दूसरे जूते के बारे में पूछा तो पता लगा कि नाला पार करते समय दूसरा जूता पानी में बह गया, जिनका उन्हें पता ही नहीं चला।

(ग) मैं प्रोफेसर साहब का अतिप्रिय था। प्रायः वे जहाँ जाते मुझे साथ ले जाते। हम लोग गुरुकुल के लिए प्रायः धन संग्रहार्थ जाया करते थे। एक बार हम हैदराबाद गए। हैदराबाद वैसे तो मुस्लिम राज्य था। परन्तु उक्त पदों पर प्रायः हिन्दू हुआ करते थे। एक सायंकाल हम वहाँ के बड़े अफसर के पास बैठे बातें कर रहे थे। उनका भाई प्रोफेसर साहब के साथ घंटे भर किसी बात की चर्चा करता रहा। बातचीत समाप्त कर हम दोनों अपने टिकने के स्थान के लिए चले। रास्ते में अफसर का वही भाई उसी दिन कुछ समय बाद मिला। उसने 'नमस्ते' की। प्रोफेसर साहब मुझसे पूछने लगे—यह कौन था। मैंने कहा—इसी के साथ तो आप अभी वाद-विवाद में लीन थे।

(घ) एक बार की घटना है, मैं गुरुकुल में प्रोफेसर था वे रिटायर होकर गुरुकुल छोड़ चुके थे। एक दिन वे गुरुकुल पधारे और मेरे पास ठहरे। रात सवेरे 1 बजे उठे और स्नानादि करके हवन करने लगे। जब मैंने हवन की आवाज सुनी

तब मैं जागा और उनसे कहा कि अभी तो रात है। वे बोले—मैंने समझा सवेरा हो गया है।

मेरा प्रोफेसर रामदेव जी के साथ इतना गहरा सम्बन्ध रहा है कि घटनाओं पर घटनाएँ सामने आ रही हैं। और समझ नहीं आता कि— क्या लिखूं, क्या न लिखूं।

(ङ) विद्या के वे इतने धनी थे कि गुरुकुल पुस्तकालय की कोई पुस्तक नहीं छोड़ी जो उन्होंने न पढ़ी हो। जिस पुस्तक को वे पढ़ते थे उसकी मुख्य बात पर वे निशान ही नहीं बल्कि Imp. भी लिख देते थे। मैं जिस पुस्तक को पढ़ना चाहता था, उनके लगाए निशान से ही पुस्तक का सारांश जान जाता था।

(च) उनका व्याख्यान गुरुकुल के उत्सव का मुख्य भाग होता था जिस समय उत्सव में उनका व्याख्यान होता था उस समय प्लेटफार्म पर 15-20 पुस्तकों का ढ़ेर लग जाता था। प्राय: डार्विन के विकासवाद की वे धज्जियाँ उड़ाया करते थे। उनका व्याख्यान कोटेशनों से भरा होता था। अगर मैं कहूँ कि मेरा ज्ञान प्रोफेसर रामदेव जी के ज्ञान का डुप्लिकेशन है तो कोई अति-उक्ति न होगी।

(छ) प्रोफेसर रामदेव जी त्याग, तपस्या तथा ईमानदारी के जीते-जागते नमूने थे। उनके सम्बन्ध में एक घटना मैं भुलाए नहीं भूल सकता। यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि गुरुकुल के लिए धन संग्रहार्थ मैं उनके साथ जाया करता था। जब हम जाते तब गुरुकुल से कुछ रुपया अगाऊ ले जाते थे। रास्ते में अनेक खर्चे हो जाते हैं—गुरुकुल सम्बन्धी तथा अपने निजी भी। गुरुकुल आफ़िस के सुपरिटेंडेंट उस समय श्री अमरनाथ सप्रू हुआ करते थे। डेप्यूटेशन से लौटने पर वे सप्रू जी को घर बुलाते और अपना बटुआ उनके सामने रख देते और कहते कि इसे खोल कर हिसाब बना दें और इसमें जो कमी है वो उनके हिसाब में डालकर उनके नाम लिख दीजिये। सप्रू जी लाख कहते कि कुछ रुपया तो आपने गुरुकुल के लिए खर्च किया ही है, परन्तु वे अपनी बात के इतने पक्के थे कि जो रुपया गुरुकुल ने उनको देना होता था उसे भी वे अपने नाम लिखाकर गुरुकुल को देते थे।

(ज) प्रोफेसर रामदेव जी स्वयं ही त्यागी-तपस्वी तथा ईमानदार नहीं थे, अपने साथियों से भी यही उम्मीद करते थे। श्री गोखले के 'सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी' की तरह उन्होंने भी 'दयानन्द सेवा सदन' नामक संस्था की स्थापना की थी जिसमें उनके अतिरिक्त मैं, पं० बुद्धदेव, डा० राधाकृष्ण तथा पं० ज्ञानचन्द आजीवन सदस्य थे। उन्होंने तथा अन्य आजीवन सदस्यों ने 75/- मासिक के अतिरिक्त कोई धन राशि नहीं ली। प्रो० रामदेव जी का परिवार पुत्र-पुत्रियों से भरा-पूरा था। ऐसी स्थिति में गरीबों को जीवन का लक्ष्य वही बना सकता है जो स्वयं आदर्शवादी हो। प्रो० रामदेव जी 100% आदर्शवादी थे। वे इतने आदर्शवादी थे कि जीवन के मार्ग में चलते-चलते यह भी भूल जाते थे कि कुछ प्राणियों के भरण-पोषण की जिम्मेवारी भी उनके कंधे पर है।

(झ) जैसे लाला देवराज ने जालंधर में कन्या महाविद्यालय की स्थापना की, अगर कहा जाए कि वैसे ही प्रोफेसर रामदेव जी ने भी देहरादून में कन्या महाविद्यालय की स्थापना की वह लगभग कालेज सिस्टम पर थी, प्रो० रामदेव जी ने जिस कन्या गुरुकुल की स्थापना की वह गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के साथ सम्बन्ध जोड़े रखा। श्री देवराज जी की गतिविधि श्रीमती लज्जावती के ऊपर आश्रित थी। श्री रामदेव जी की गतिविधि का आधार श्रीमती विद्यावती जी रहीं। इस दृष्टि से प्रो० रामदेव जी को लाला देवराज का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। प्रो० रामदेव जी का कन्याओं का गुरुकुल जैसी शिक्षा के प्रति इतना लगाव था कि इन्होंने अपने घर में 5-1 कन्याएँ गुरुकुल जैसी शिक्षा देने के लिए रखी हुई थी जो गुरुकुल के ही विषयों का अपने जीवन में पालन करती थी। यही उनके घर का छोटा-सा गुरुकुल विस्तृत होकर पहले दिल्ली में, फिर देहरादून में चला गया। पहले इसकी आचार्य लांजवन्ती जी थीं फिर चन्द्रावती लखनपाल हुई और अब प्रो० रामदेव जी की पुत्री श्रीमती दमयन्ती देवी हैं। इस गुरुकुल को अब यू० जी० सी० (U.G.C.) ने भी मान्यता प्रदान कर दी है।

(ञ) प्रोफेसर रामदेव जी का मेरे साथ जो संबंध रहा उसके परिणामस्वरूप मेरा विवाह हुआ। वे प्रायः आर्यसमाज के अनुयायियों में जाया करते थे। एक बार वे बिजनौर के उत्सव में गए। बिजनौर में आर्यसमाज के एक मुख्य कार्यकर्त्ता थे जिनका नाम पं० जयनारायण शुक्ल था। वे वृन्दावन गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पं० शिवनारायण शुक्ल के बड़े भाई थे। उनकी ज्येष्ठ पुत्री का नाम चन्द्रावती शुक्ल था उस कन्या का विवाह नहीं हुआ था और इलाहाबाद में बी० ए० में पढ़ रही थी। पं० जयनारायण जी शुक्ल को वर की तलाश थी। उन्होंने प्रो० रामदेव जी से अपनी इस समस्या का जिक्र किया। प्रोफेसर साहब ने कहा—मेरे सामने एक स्नातक लड़का है, मैं गुरुकुल जाकर उससे बात करूँगा।

प्रोफेसर साहब ने बिजनौर से लौटकर मुझ से इस बात का जिक्र किया। मैंने कहा—कहाँ मैं गुरुकुल का स्नातक कहाँ वह कन्या अंग्रेजी स्कूलों में पढ़ी हुई बी० ए० पास। यह सम्बन्ध कैसे हो सकता है। तब से एक साल बाद मथुरा में शताब्दी होने वाली थी। यह तय किया गया कि हम दोनों परिवार इस शताब्दी में एक-दूसरे से मिलें और आपसी विचार विनिमय हो। दोनों परिवार कट्टर आर्यसमाजी थे। दोनों मिले पर किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके। इस बीच प्रोफेसर रामदेव जी दोनों परिवारों को एक-दूसरे के निकट लाने का यत्न करते रहे। प्रोफेसर साहब का कहना था कि इस संबंध में इसलिए दिलचस्पी ले रहे हैं क्योंकि अगर यह हो गया तो अन्तर्जातीय विवाह कहा जाएगा और भिन्न-भिन्न संस्कृति का संगम होगा। इनमें से एक गुरुकुल का पढ़ा होगा दूसरा स्कूल का पढ़ा होगा। प्रो० रामदेव जी को इस आदर्शवाद को हम उत्साह से नहीं देख रहे थे, हम चाहते थे कि हमें किसी निश्चय पर पहुँचने के लिए कम से कम एक वर्ष का समय चाहिए। शताब्दी के समय ही प्रो० रामदेव जी के प्रस्ताव से यह तय हो गया कि हम दोनों माता-पिता के माध्यम से साल भर तक विचार-विनिमय करते रहें, और साल के अन्त में अपने निर्णय की सूचना दें।

मेरा अनुभव है कि जब लड़के-लड़की को एक-दूसरे के निकट आने की सुविधा दी जाती है तब उनका विवाह हो ही जाता है। यही बात हम दोनों के बीच हुई। हम दोनों का पत्र व्यवहार प्रो० रायदेव जी और पं० जयनारायण जी के माध्यम से साल भर चलता रहा और 1925 में इस सम्बन्ध की विवाह में परिणति हुई। इस दृष्टि से मैं कहता हूँ कि मेरे वैवाहिक जीवन में प्रो० रामदेव जी का बड़ा हाथ रहा।

जब विवाह होकर श्रीमती चन्द्रावती मेरे घर आयीं तब प्रो० रामदेव जी के संपर्क से उनका आर्य समाजिक जीवन निखरने लगा और अन्त में वह समय भी आ गया जब श्रीमती विद्यावती जी के कन्या गुरुकुल से रिटायर होने पर प्रो० रामदेव जी ने कन्या गुरुकुल देहरादून की आचार्या श्रीमती चन्द्रावती जी को बना दिया। उनके गुरुकुल काँगड़ी जैसी राष्ट्रीय संस्था के साथ जुड़ जाने से उनका जीवन कांग्रेसी हो गया और अन्त में हम दोनों पार्लियामेंट के सदस्य बनाए गए।

आर्थिक दृष्टि से उस समय के प्रो० रामदेव जी जैसे कार्यकर्त्ताओं तथा आज के स्कूलों एवं कालेजों के कार्यकर्त्ताओं में यह भेद है। आज जगह-जगह स्कूलों-कालेजों के कार्यकर्त्ताओं पर गबन के आरोप हो रहे हैं। उस समय के प्रो० रामदेव जैसे कार्यकर्त्ता संस्था पर स्वयं दिये धन पर भी अपनी तरफ देय राशि के रूप में जाना करते थे। मुझे इस बात का गर्व है कि यद्यपि इस समय मेरे अनेक शिष्य अब गुरु बनकर गए हैं, परन्तु प्रो० रामदेव जी इस गुरु के भी गुरु हैं, इसलिए उन पर लेख लिखते हुए इस लेख का नामशीर्ष मैंने—"मेरे गुरु प्रोफेसर रामदेव जी" यह दिया है।